राव बीका

परम पितृभक्त

अदम्य साहसी

बीकानेर राज्य के संस्थाप

वीरवर राव बीका

की

पवित्र स्मृति को

सादर समर्पित

भूमिका

इतिहास के द्वारा हमें किसी देश अथवा जाति की अतीत कालीन संस्कृति और उसके उत्थान एव पतन के क्रमिक विकास का ज्ञान होता है। इतिहास सभ्यता और उन्नति का द्योतक तथा पूर्वजो की कीर्ति का अमर स्तभ है। वह अतीत का आभास देकर वर्तमान का निर्माण और भविष्य का पथ प्रदर्शन करता है। जिस देश अथवा जाति मे जितनी अधिक जागृति है, उसका इतिहास भी उतना ही अधिक उन्नत एव पूर्ण होना चाहिए। थोडे शब्दो मे कह सकते हैं कि इतिहास जीवन और जागृति का प्रमाण है।

विशाल महाद्वीप एशिया के दक्षिणी भाग में स्थित भारतवर्ष सभ्यता और सस्कृति की दृष्टि से ससार के इतिहास में बडा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस देश ने प्राचीन काल मे कितनी ही जातियों का उदय और अन्त देखा है। इसके वक्ष स्थल पर कितने ही राष्ट्र बने और बिगड़ चुके हैं। राजपूताना इसी देश का एक प्रसिद्ध प्रदेश है, जिसका इतिहास की दृष्टि से अपना अलग स्थान है। इसे हम भारत की वीरभूमि कहें तो अयुक्त न होगा। कर्नल टॉड के शब्दो में "राजस्थान मे कोई छोटा सा राज्य भी ऐसा नही है, जिसम 'थर्मापिली' जैसी रणभूमि न हो और न कोई ऐसा नगर है, जहाँ 'लियोनिडास' जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो।" यहाँ की भूमि का अणु अणु वीरों के रक्त से सिंचित है और अपने प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाता है। यहा का इतिहास जिस प्रशसनीय वीरता, अनुकरणीय आत्मोत्सर्ग, पवित्र त्याग और आदर्श स्वातन्त्र्य प्रेम की शिक्षा देता है, वैसा अन्य किसी स्थान का नहीं। यह वस्तुत. खेद का विषय है कि परिस्थिति वश अथवा राजपूताने के निवासियों में इतिहास प्रेम की कमी होने के कारण यहा का इतिहास पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं रह सका, जिससे बहुधा प्राचीन शृखलाबद्ध इतिहास बहुत कम मिलता है।

एक समय था, जब भारतवासी अपने देश के इतिहास के प्रति उदासीन रहते थे। सत्य वृत्त के अभाव में सुनी सुनाई अतिरंजित कहानियां ही इतिहास का स्थान लिये हुए थीं, पर गत शताब्दी में इस दिशा में विशेष उन्नति हुई है। 'राजस्थान' का विस्तृत गौरव प्रकाश में लाने का श्रेय कर्नल टॉड को ही है। उसके बहुमूल्य ग्रन्थ 'राजस्थान' के द्वारा क्रमश यूरोप एव भारत के अनेक विद्वानों का ध्यान राजपूताने की ओर आकृष्ट हुआ। उनके अनवरत उद्योग, अपूर्व अध्यवसाय तथा विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धानों के फलस्वरूप इस वीर भूमि का प्राचीन गौरव-पूर्ण इतिहास, जो पहले अन्धाकारावृत था अब बहुत कुछ प्रकाश में आ गया और आता जाता है। शनै शनै लोगों की रुचि भी इतिहास की ओर बढ़ती जा रही है। फलत आज हमारे साहित्य की श्री वृद्धि करने के लिए छोटे बडे कई इतिहास ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनके द्वारा ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ हमें अपने पूर्वजों के वीरतापूर्ण कार्यों, रहन सहन, आचार विचार और रीति रिवाज आदि का परिचय मिलता है।

राजपूताने में इस समय सब मिलाकर छोटी बडी इक्कीस रियासतें हैं। इनमें से सात प्रमुख रियासतों का इतिहास कर्नल टॉड के ग्रन्थ में आया है। मेवाड के सीसोदियों के पश्चात् राजपूताने में रणबका राठोडों का गौरवपूर्ण स्थान है। अब भी उनका राज्य राजपूताने के एक बड़े भाग में फैला हुआ है। वर्तमान राठोडों का मूल पुरुष राव सीहा कन्नौज की तरफ से वि० स० की १४ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे इधर आया और उसके वशजों ने पीछे से धीरे धीरे इधर अपना राज्य स्थापित किया। उसके वशधर राव जोधा ने राठोड राज्य को दृढ़ किया और जोधपुर बसाया, जिससे उस राज्य का नाम जोधपुर हुआ। बीकानेर राज्य का सस्थापक राव जोधा का पुत्र बीका था, जो आदर्श पितृभक्त होने के साथ ही अत्यन्त वीर, नीतिज्ञ और कुशल शासक था। उसने अपने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर जोधपुर राज्य से अपना स्वत्व त्याग दिया और उत्तर की तरफ जाकर अपने लिए जागल देश विजय किया। अपने बाहुबल से जिस विशाल

राज्य की स्थापना उसने की, उसका गौरव अब तक अक्षुण्ण बना हुआ है और उसके वशधर अब तक उसके स्वामी हैं।

यह राज्य राजपूताने के उस भाग मे बसा हुआ है, जहा रेगिस्तान अधिक है और पानी की बहुधा कमी रहती है। यही कारण है कि प्राचीन काल मे विदेशियो का ध्यान इस ओर कम ही गया और उन्होंने इसे विजय करने मे विशेष उत्साह न दिखलाया। मरहटों के प्रभुत्व का काल राजपूताने के लिए बडे सकट का समय था। मरहटों के आतक से राजपूताना के कितने ही राज्य भयभीत रहते थे और उन्हे उनके आक्रमणों से बचने के लिए धन आदि की उनकी मागे सदा पूरी करनी पड़ती थी, परन्तु अपनी अनुकूल प्राकृतिक बनावट के कारण बीकानेर राज्य मरहटों के आक्रमण से सदा बचा रहा और यहा के शासकों को कभी उन्हे चौथ (खिराज) आदि कर देना न पडा। उन्होंने मुसलमान बादशाहो को कभी खिराज न दिया और इस समय भी अग्रेज सरकार उनसे किसी प्रकार का खिराज नही लेती, जब कि भारत के अधिकाश राज्यों को प्रतिवर्ष निश्चित रकम देनी पडती है।

मुगल शासको ने इस राज्य को विजय करने की अपेक्षा यहा के शासकों से मेल रखना ही अच्छा समझा। उनके साथ का बीकानेर के राजाओं का मैत्री सम्बन्ध बडे ऊचे दर्जे का था, जो उन(मुगलों)के पतन तक वैसा ही बना रहा। अग्रेजों का अधिकार भारतवर्ष म स्थापित होने पर बीकानेर के शासको ने इस प्रबल शक्ति से मेल करना उचित समझ उनसे सन्धि करली, जिसका पालन अब तक होता है।

यह राज्य सदा से उन्नतिशील रहा है। वैसे तो पिछली कई पीढ़ियों से ही यहा उन्नति के लक्षण दृष्टिगोचर होते रहे हैं, पर वर्तमान बीकानेर नरेश के राज्यारम्भ से ही इस राज्य मे जो परिवर्तन एव उन्नति हुई है वह विशेष उल्लेखनीय है। इनके उद्योग से नहरो का प्रबन्ध होकर बीकानेर राज्य का बहुतसा उत्तर-पश्चिमी भाग सरसब्ज हो गया है। जगत्प्रसिद्ध 'गगा नहर' के निर्माण को हम बीकानेर राज्य के वर्तमान

इतिहास की एक युगान्तरकारिणी घटना और महाराजा साहब का भगीरथ प्रयत्न कह सकते हैं। इसके द्वारा राज्य को आर्थिक लाभ होने के साथ ही प्रजा की स्थिति मे भी बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। पहले बीकानेर राज्य में गमनागमन के मार्ग सुगम न थे। सफर ऊटो द्वारा होता था, जिसमे खतरा विशेष था और समय भी अधिक लगता था। अब राज्य के प्राय प्रत्येक प्रधान भाग मे रेल्वे लाइन बन गई है और मोटरे तो हर जगह आती जाती हैं। फलत आवागमन मे बडी सुविधा हो गई है, जिससे राज्य की बहुत कुछ व्यापारिक, आर्थिक और राजनैतिक उन्नति हुई है।

इस उन्नतिशील राज्य का इतिहास विलक्षण क्राति और वीरों के त्याग एव बलिदान की गाथाओ से पूर्ण है, जिनके बल पर भारतवासी आज भी अपना मस्तक उन्नत कर सकते हैं। अग्रेजो के भारत मे आने के पूर्व यहा का कोई क्रमबद्ध इतिहास न था। आज से लगभग सौ से अधिक वर्ष पूर्व कर्नल जेम्स टॉड ने 'राजस्थान' नामक बृहद् ग्रन्थ लिखा, जिसमें इस राज्य का सक्षिप्त इतिहास दिया है, पर उसमे कितनी ही घटनाए सुनी सुनाई बातो के आधार पर लिखी होने से सत्य की कसौटी पर खरी नही उतरती। जोनाथन स्कॉट्, बोइलो, विलियम फ्रैंकलिन, एल्फिन्स्टन, हर्बर्ट कॉम्प्टन, जॉर्ज टॉमस आदि विदेशी विद्वानो ने यथाप्रसग अपने ग्रन्थों में बीकानेर राज्य का कुछ परिचय दिया है, पर उससे किसी घटना विशेष पर ही प्रकाश पड़ता है। हाँ, पाउलेट और अर्स्किन के गैजेटियरों से यहा के इतिहास का अच्छा परिचय मिलता है।

बीकानेर के नरेशो मे अधिकाश स्वय विद्वान् और विद्याप्रेमी हुए हैं। उनके रचे हुए अनेक ग्रन्थ अब भी उपलब्ध हैं और उनके आश्रय मे बने हुए सस्कृत और भाषा के ग्रन्थो का मैंने इतना बृहद् सग्रह बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय मे देखा कि मैं मुग्ध हो गया। इस सग्रह के कई ग्रन्थो मे सवत् सहित बीकानेर के राजाओं से सम्बद्ध ऐतिहासिक वृत्त दिये हैं, जो इतिहास के लिए बहुमूल्य हैं। इनमे बीठू सूजा रचित 'राव जैतसी रउ छन्द' (भाषा) तथा 'कर्मचन्द्रवशोत्कीर्तनक

काव्यम्' (संस्कृत) प्राचीनता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। पहले मे राव बीका से लगाकर राव जैतसी और दूसरे मे राव बीका से महाराजा रायसिंह तक की घटनाओ का वर्णन है।

इस राज्य की सब से पहली क्रमबद्ध ख्यात महाराजा रत्नसिंह के आदेशानुसार उसके समय मे सिंढायच दयालदास ने लिखी थी जिसमे राव बीका से लेकर महाराजा सरदारसिंह के राज्यारोहण तक का सविस्तर इतिहास दिया गया है। दयालदास बडा योग्य और विद्वान् व्यक्ति था। उसे इतिहास से बहुत प्रेम था। उसने बडे परिश्रम से पुरानी वशावलियो, पट्टे, बहियो, शाही फरमानो और राजकीय पत्र व्यवहारो आदि के आधार पर अपनी ख्यात की रचना की, जिससे यह बीकानेर के इतिहास की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। इसमे कई फारसी फरमानो की नागरी अक्षरो मे प्रतिलिपि तथा अंग्रेजी मुरासिलों के अनुवाद भी दिये हैं। दयालदास का लिखा हुआ दूसरा तद्विषयक ग्रन्थ 'आर्याख्यान कल्पद्रुम' है। यह निर्विवाद है कि इन दोनो ग्रन्थो को लिखते समय दयालदास ने बहुत छान बीन की, पर बीकानेर के राजाओ के स्मारक एव अन्य संस्कृत लेखो का उपयोग उसने बिलकुल न किया, जिससे कहीं-कही सवतो मे गलती रह गई है। 'देश दर्पण', 'जोधपुर राज्य की बृहद् ख्यात' और कविराजा बाकीदास के 'ऐतिहासिक बातें' नामक ग्रन्थों में भी बीकानेर राज्य का बहुत कुछ इतिहास मिलता है। इनमें कही कही विभिन्नता पाई जाती है, जो स्वाभाविक ही है, क्योकि ख्यातो आदि मे उनके लेखकों के आश्रयदाताओ का ही अधिक प्रशसात्मक वर्णन रहता है। बीदावतों की ख्यात मे भी बीकानेर राज्य का इतिहास है, पर इसम बीदावतों का ही वर्णन अधिक विस्तार से लिखा गया है और कही कही कई बातों का अनुचित श्रेय भी उन्ही को दिया है।

बाहर के लेखको में मुहणोत नैणसी की ख्यात दयालदास की ख्यात आदि से अधिक प्राचीन है और वह इतिहास क्षेत्र में अधिकाश प्रामाणिक मानी जाती है, पर उसमें बीकानेर के पहले नरेशो का कुछ विस्तृत वर्णन

और शेप महाराजा गजसिंह तक के केवल नाम, राज्यारोहण और मृत्यु के सवत् तथा उनकी राणियो और पुत्रो के नाम ही मिलते है, जिनमें से बहुतसा अश पीछे से बढाया गया है। महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास कृत 'वीर विनोद' नामक बृहद् ग्रन्थ म शिलालेखों, ताम्रपत्रो, प्रशस्तियों, फरमानो, फारसी तवारीखों आदि से सहायता ली गई है, जिससे उसकी उपयोगिता स्पष्ट है। स्वर्गीय मुशी देवीप्रसाद ने बीकानेर के कुछ राजाओं के जीवन चरित्र लिखे थे जो अलग अलग प्रकाशित हुए हैं। मुशी सोहनलाल के 'तवारीख़ बीकानेर' और कुवर कन्हैयाजू के 'बीकानेर राज्य का इतिहास' मे बीकानेर के राजाओं का वर्तमान समय तक का इतिहास दिया है, जो सक्षिप्त होते हुए भी उपयोगी है। उर्दू भाषा में लिखे हुए पिछले इतिहासों मे उपयोगिता की दृष्टि से 'वक़ाये राजपूताना' का उल्लेख किया जा सकता है।

फारसी तवारीख़ो मे भी बीकानेर राज्य का इतिहास यथा प्रसग आया है, परन्तु उनमें कही कही जातीय एव धार्मिक पक्षपात की मात्रा देख पडती है। तारीख़ फिरिश्ता, अकबरनामा, मुतख़बुत्तवारीख़, जहागीरनामा बादशाह नामा, मआसिरे आलमगीरी, औरगजेबनामा आदि फारसी ग्रन्थों मे यथा प्रसग बीकानेर के महाराजाओ का हाल दर्ज है। इस सम्बन्ध में शाही फरमानों और निशानों का उल्लेख, जो मेरे देखने में आये हैं और जिनकी सख्या ८३ है, आवश्यक है। इनसे कितनी ही ऐसी घटनाओ का पता चलता है, जिनका ख्यातों अथवा फारसी तवारीखो में उल्लेख तक नहीं है। बीकानेर के इतिहास मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

अग्रेजी भाषा की अन्य पुस्तको मे एचिसन की 'ट्रीटीज एगेज्मेंट्स एण्ड सनद्ज' तथा मुशी ज्वालासहाय की 'लॉयल राजपूताना' से क्रमश अग्रेज सरकार के साथ की बीकानेर के राजाओं की सधियो और गदर के समय किये गये उनके वीरता पूर्ण कार्यों पर अच्छा प्रकाश पडता है। स्वर्गीय डॉक्टर टेसिटोरी ने थोडे समय मे ही इस राज्य मे भ्रमणकर जो जो प्राचीन वस्तुए सग्रह की और जो-जो शिलालेख पढ़े, वे भी इस राज्य

के इतिहास के लिए बडे महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

किसी भी राज्य का प्रामाणिक इतिहास लिखने में वहा के प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रो और सिक्कों से सब से अधिक सहायता मिलती है परन्तु खेद का विषय है कि यही साधन यहा सब से कम उपलब्ध हुए। शिलालेखो मे यहा अधिकाश मृत्यु स्मारक लेख ही मिले हैं, जिनसे मृत्यु सवत् ज्ञात होने के अतिरिक्त और कुछ भी ऐतिहासिक वृत्त नही जान पडता। राज्य भर में कुछ छोटी प्रशस्तिया तो मिली, किन्तु बीकानेर दुर्ग के एक पार्श्व में लगी हुई महाराजा रायसिंह की विशाल प्रशस्ति जैसी अन्य कोई प्रशस्ति यहा नही मिली। सभवत इस अभाव का कारण यहा पत्थरों की कमी हो। ताम्रपत्र और सिक्के भी यहा से कम ही मिले हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे, जो दो भागो मे समाप्त होगा, बीकानेर राज्य के सक्षिप्त भौगोलिक परिचय के अतिरिक्त, राव बीका से लेकर वर्तमान समय तक के बीकानेर के राजाओं का विस्तृत और सरदारो आदि का सक्षिप्त इतिहास है। राव बीका से पूर्व का इस प्रदेश का जो इतिहास शोध से ज्ञात हुआ, वह भी सक्षिप्त रूप से प्रारभ मे लिखा गया है। इसकी रचना मे मैंने शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्को, ख्यातों, प्राचीन वशावलियों, सस्कृत, फारसी, मराठी और अग्रेजी पुस्तको, शाही फरमानों तथा राजकीय पत्र व्यवहारो का पूरा पूरा उपयोग किया है। मेरा विश्वास है कि इसके द्वारा बीकानेर राज्य का प्राचीन गौरव प्रकाश मे आयगा और यहा का वास्तविक इतिहास पाठको को ज्ञात होगा।

यह इतिहास सर्वांगपूर्ण है, यह तो मैं कहने का साहस नहीं कर सकता, पर इसमें आधुनिक शोध को पूरा पूरा स्थान देने का भरसक प्रयत्न किया गया है। जिन व्यक्तियों आदि के नाम प्रसगवशात् इतिहास में आये, उनका जहा तक पता लगा आवश्यकतानुसार कही सक्षेप में और कही विस्तार से परिचय (टिप्पण में) दिया गया है। अनीराय सिंहदलन जैसे प्रसिद्ध वीर व्यक्ति का, जिसका इतिहास में अन्यत्र विशद वर्णन आने की सभावना नहीं है, परिचय कुछ अधिक विस्तार से दिया गया है।

भूल मनुष्य-मात्र से होती है और मैं भी इस नियम का अपवाद नहीं हू। फिर इस समय मेरी वृद्धावस्था है और नेत्रो की शक्ति भी पहले जैसी नही रही है, जिससे, सभव है, कुछ स्थलो पर त्रुटियॉ रह गई हों। आशा है, उदार पाठक उनके लिए मुझे क्षमा करेंगे और जो त्रुटिया उनकी दृष्टि मे आवें उनसे मुझे सूचित करेगे तो दूसरी आवृत्ति मे उचित सुधार किया जा सकेगा।

अन्त में मैं वर्तमान बीकानेर नरेश मेजर जेनरल राजराजेश्वर नरेन्द्र शिरोमणि महाराजाधिराज श्रीमान् महाराजा सर गगासिंहजी साहब बहादुर की उदारता एव इतिहासप्रेम की प्रशसा किये बिना नहीं रह सकता। वस्तुत यह आपकी ही उदारतापूर्ण सहायता का फल है कि यह इतिहास अपने वर्तमान रूप मे पाठको के समक्ष प्रस्तुत है। श्रीमान् महाराजा साहब ने न केवल शाही फरमानो एव निशानों के अनुवाद मुझे भिजवाने की कृपा की, बल्कि बीकानेर बुलाकर बृहद् राजकीय पुस्तकालय का भी पूरा पूरा उपयोग करने का मुझे अवसर प्रदान किया। इससे मुझे प्रस्तुत इतिहास तैयार करने में बड़ी सहायता मिली और कई एक इतिहास सम्बन्धी नये और महत्वपूर्ण वृत्त ज्ञात हुए, जिनका अन्यत्र पता लगना अति कठिन था। इस उदारता के लिए मैं श्रीमानों का बहुत आभारी हू।

मैं उन ग्रन्थकर्ताओं का, जिनके ग्रन्थों से इस पुस्तक के लिखने में मुझे सहायता मिली है, अत्यन्त अनुगृहीत हू। उनके नाम यथाप्रसग टिप्पण में दे दिये गये हैं। विस्तृत पुस्तक सूची दूसरे भाग के अत में दी जायगी। इस पुस्तक के प्रणयन में मुझे अपने पुत्र प्रो० रामेश्वर ओझा, एम० ए० तथा निजी इतिहास विभाग के कार्यकर्ता चिरजीलाल व्यास एव नाथूलाल व्यास से पर्याप्त सहायता मिली है, अतएव इनका नामोल्लेख भी करना आवश्यक है।

अजमेर,
जन्माष्टमी
वि० स० १९९४

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

विषय-सूची

पहला अध्याय

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

दूसरा अध्याय

राठोड़ों से पूर्व का प्राचीन इतिहास

तीसरा अध्याय

राव बीका से पूर्व के राठोड़ो का संक्षिप्त परिचय

चौथा अध्याय

राव बीका से राव जैतसी तक

पांचवां अध्याय

राव कल्याणमल से महाराजा सूरसिंह तक

विषय पृष्ठांक

विषय | पृष्ठांक

छठा अध्याय

महाराजा कर्णसिंह से महाराजा सुजानसिंह तक

विषय	पृष्ठांक

सातवां अध्याय

महाराजा जोरावरसिंह से महाराजा प्रतापसिंह तक

विषय	पृष्ठांक

चित्र-सूची

राजपूताने का इतिहास

पांचवीं जिल्द, पहला भाग

बीकानेर राज्य का इतिहास

पहला अध्याय

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

बीकानेर राज्य का पुराना नाम 'जागलदेश'[1] था। इसके उत्तर में कुरु और मद्र देश थे, इसलिए महाभारत में जागल नाम कहीं अकेला[2] और नाम कहीं कुरु और मद्र देशों के साथ जुड़ा हुआ मिलता है। महाभारत में बहुधा ऐसे देशों के नाम समास में दिये हुए पाये जाते

---

(१) जागलदेश के लक्षण ये बतलाये गये हैं—

जिस देश में जल और घास कम होती हो, वायु और धूप की प्रबलता हो और अन्न आदि बहुत होता हो उसको जागल देश जानना चाहिये (स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवात प्रचुरातप. । स ज्ञेयो जागलो देशो बहुधान्यादिसयुत॰ ॥)
(शब्दकल्पद्रुम, काण्ड २, पृ॰ ५२६)।

भावप्रकाश में लिखा है—जहां आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षों की कमी हो और शमी (खेजड़ा), कैर, बिल्व, आक, पीलु और बैर के वृक्ष हों उसको जागल देश कहते हैं (आकाशशुभ्रउच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः । शमीकरीरबिल्वार्कपीलुकर्कंधुसङ्कुलः ॥ देशो वातालो जागल स्मृतः)
वही, पृ॰ ५२६)।

इन लक्षणों से सामान्य रूप से राजपूताना के बालूवाले प्रदेश का नाम 'जागलदेश' होना अनुमान किया जा सकता है।

(२) कच्छा गोपालकच्चाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णका ।

हैं, जो परस्पर मिले हुए होते हैं, जैसे 'कुरुपाचाला [१]', 'माद्रेयजागला [२]', 'कुरुजागला [३]' आदि। इनका आशय यही है कि कुरु देश से मिला हुआ 'पाचाल देश,' मद्र देश से मिला हुआ 'जागल देश [४]' कुरु देश से मिला हुआ 'जागल देश' आदि। बीकानेर के राजा जागल देश के स्वामी होने के कारण अब तक 'जगलधर बादशाह' कहलाते हैं, जैसा कि उनके राज्य चिह्न के लेख से पाया जाता है [५]।

(महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय ६, श्लोक ५६—कुभकोण सस्करण)।

पैत्र्य राज्य महाराज कुरुवस्ते स जाङ्गला ॥

(वही, उद्योगपर्व, अध्याय ५४, श्लो० ७)।

(१ और २) तत्रेमे कुरुपाञ्चाला॰ शाल्वा माद्रेयजाङ्गला ॥

(वही, भीष्मपर्व, अ० ६, श्लो० ३६)।

(३) तीर्थ यात्रामनुक्रामन्प्राप्तोस्मि कुरुजांगलान् ॥

(वही, वनपर्व, अ० १०, श्लो० ११)।

तत कुरुश्रेष्ठमुपेत्य पौरा॰ प्रदक्षिण चक्रुरदीनसत्वाः।
त ब्राह्मणाश्चाभ्यवदन्प्रसन्ना मुख्याश्च सर्वे कुरुजाङ्गलानाम् ॥
स चापि तानभ्यवदत्प्रसन्न सहैव तैर्भ्रातृभिर्धर्मराज ।
तस्थौ च तत्राधिपतिर्महात्मा दृष्ट्वा जनौघ कुरुजाङ्गलानाम् ॥

(वही, वनपर्व, अ० २३, श्लो० ५-६)।

(४) मद्र देश—पजाब का वह हिस्सा, जो चनाब और सतलज नदियों के बीच में है।

(इडियन ऐंटिक्वेरी, जि० ४०, पृ० २८)।

इस समय बीकानेर राज्य (जांगल) का उत्तरी हिस्सा मद्र देश से नहीं मिलता, परन्तु सभव है कि प्राचीनकाल में या तो मद्र देश की सीमा दक्षिण मे अधिक दूर तक हो या जांगल की उत्तरी सीमा उत्तर में मद्र देश से जा मिलती हो।

(५) बीकानेर राज्य के राज्यचिह्न में 'जय जगलधर बादशाह' लिखा रहता है।

राठोड़ों के अधिकार से पूर्व बीकानेर का दक्षिणी हिस्सा, जो वर्त्तमान जोधपुर राज्य के उत्तर में है, 'जागलू' नाम से प्रसिद्ध था, वह साखले परमारों के अधीन था और उसका मुख्य नगर 'जागलू' कहलाता था तथा अब तक वह स्थान उसी नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीनकाल में जागल देश की सीमा के अन्तर्गत सारा बीकानेर राज्य और उसके दक्षिण के जोधपुर राज्य का बहुत कुछ अंश था। मध्यकाल में उस देश की राजधानी अहिच्छत्रपुर[1] थी, जिसको इस समय नागोर[2] कहते हैं और जो

---

(१) अहिच्छत्रपुर नाम के एक से अधिक नगरों का होना हिन्दुस्तान में पाया जाता है। उत्तरी पांचाल देश की राजधानी अहिच्छत्र थी, जिसका वर्णन चीनी यात्री हुएन्त्संग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सी-यु-की' में किया है (बील, बुद्धिस्ट रेकर्ड्स ऑव् दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जि० १ पृ० २००)। जैन लेखक जागलदेश की राजधानी अहिच्छत्र बतलाते हैं (इ० ऐं०, जि० ४०, पृ० २८)। कर्नल टॉड के गुरु यति ज्ञानचन्द्र के संग्रह (मांडल, मेवाड़) में मुझे एक सूची २५ देशों तथा उनकी राजधानियों की मिली, जिसमें भी जागलदेश की राजधानी अहिच्छत्र लिखी है। भैरवामत्ति के शिलालेख में सिंधुदेश में अहिच्छत्रपुर नामक नगर का होना लिखा है (एपि० इं०, जि० ३, पृ० २३५)। इसी तरह और भी अहिच्छत्र नाम के नगरों का उल्लेख मिलता है (बंबई गैज़ेटियर, जि० १, भा० २, पृ० ५६०, टिप्पण ११)।

(२) जोधपुर राज्य के नागोर नगर को जागलदेश की राजधानी अहिच्छत्रपुर मानने का पहला कारण तो यह है कि नागोर 'नागपुर' का प्राकृत रूप है। नागपुर का अर्थ—'नाग का नगर' और अहिच्छत्रपुर का अर्थ—'नाग है छत्र जिस नगर का'—है। 'नाग' और 'अहि' दोनों एक ही आशय (सांप) के सूचक हैं। संस्कृत लेखक नामों का उल्लेख करने में उनके पर्याय शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से करते हैं। पुराणों में विशेषकर हस्तिनापुर नाम मिलता है, परन्तु भागवत में उसके स्थान में 'गजसाह्वयपुर' (भागवत, १। ८। ४५, ४। ३१। ३०, १०। ५७। ८) या 'गजाह्वय-पुर' (भागवत, १। ६। ४८, १। १५। ३८) नाम भी है। महाभारत में हस्तिनापुर के लिए 'नागसाह्वयपुर' (७। १। ८, १४। ६५। २०) और 'नागपुर' ५। १४७। ५। नामों का प्रयोग मिलता है, क्योंकि हस्ती, नाग और गज तीनों एक ही अर्थ के सूचक हैं। दूसरा कारण यह है कि चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० ११७० ता० ५ फरवरी) के बीजोल्यां (उदयपुर राज्य) के चट्टान पर के लेख में चौहान राजा सामंत का अहिच्छत्रपुर में राज करना लिखा है (विप्र-

अब जोधपुर राज्य के अन्तर्गत है। जांगलदेश के उत्तरी भाग पर राठोड़ों का अधिकार होने के बाद जब से उसकी राजधानी बीकानेर स्थिर हुई तब से उक्त राज्य को बीकानेर राज्य कहने लगे।

स्थान और क्षेत्रफल

बीकानेर राज्य राजपूताने के सब से उत्तरी हिस्से में २७° १२′ और ३०° १२′ उत्तर अक्षांश और ७२° १२′ से ७५° ४१′ पूर्व देशांतर के बीच फैला हुआ है। इसका कुल क्षेत्रफल २३३१७ वर्ग मील है[1]।

सीमा

बीकानेर राज्य के उत्तर में पंजाब का फ़ीरोज़पुर ज़िला, उत्तर-पूर्व में हिसार ज़िला और उत्तर पश्चिम में भावलपुर राज्य, दक्षिण में जोधपुर, दक्षिण पूर्व में जयपुर और दक्षिण पश्चिम में जैसलमेर राज्य, पूर्व में हिसार और लोहारू के परगने तथा पश्चिम में भावलपुर राज्य है। इसकी सबसे अधिक लम्बाई खक्खा (Khakhan) से सारूंडा तक और चौड़ाई रामपुरा से बल्लर के कुछ आगे तक बराबर अर्थात् लगभग २०८ मील है।

पर्वत-श्रेणियां

इस राज्य में केवल सुजानगढ़ को छोड़कर और कहीं पर्वत श्रेणियां नहीं हैं। ये पर्वत श्रेणियां दक्षिण में जोधपुर और जयपुर की सीमाओं के निकट स्थित हैं। इनमें से मुख्य गोपालपुरा के पास की पहाड़ी समुद्र की सतह से

श्रीवत्सगोत्रेभूदहिछत्रपुरे पुरा। सामंतोनंतसामंत: पूर्णतल्ले नृपस्तत:) ॥ (श्लोक १२)। पृथ्वीराजविजयमहाकाव्य से पाया जाता है—'वासुदेव (सामंत का पूर्वज) शिकार को गया जहां एक विद्याधर की कृपा से शाकंभरी (सांभर) की झील उसको नज़र आई (सर्ग ४)।' इससे पाया जाता है कि सांभर की झील चौहानों की मूल राजधानी अहिच्छत्रपुर से बहुत दूर न थी, ऐसी दशा में नागोर ही अहिच्छत्रपुर हो सकता है।

(१) पाउलेट ने क्षेत्रफल २३,५०० (पा० गै०, पृ० ६१) और अर्सकिन ने २३३११ (बीकानेर राज्य का गैज़ेटियर, पृ० ३०६) वर्गमील दिया है। इस अन्तर का कारण यह है कि गुनाल का हिस्सा दो मील मुरब्बा और दक्षिण के तीन गांवों के बदले में दो नवीन गांव बीकानेर राज्य में मिल जाने से वर्ग मीलों की संख्या बढ़ गई है।

१६५१ फ़ुट ऊची है अर्थात् आसपास की समतल भूमि से इसकी ऊचाई केवल ६०० फ़ुट के क़रीब ही है ।

राज्य का दक्षिणी और पूर्वीभाग वागड[1] नाम की विशाल मरुभूमि का और कुछ उत्तरी और उत्तर पश्चिमी भाग भारत की मरुभूमि का अश है।

ज़मीन की बनावट

राज्य का केवल उत्तरपूर्वी भाग ही उपजाऊ है। राज्य का अधिकाश हिस्सा रेत के टीलों से भरा है, जो २० फ़ुट से लेकर कहीं कही सौ फ़ुट तक ऊचे हो जाते हैं। यह कहा जा सकता है कि एक प्रकार से यहा की भूमि सूखी और किसी प्रकार ऊजड ही है। वर्षा ऋतु मे घास उग आने पर यहा का प्राकृतिक सौन्दर्य देखने योग्य होता है। एलफिन्स्टन ने, जो ई० स० १८०८ में काबुल जाते समय इस राज्य से गुजरा था, लिखा है—"राजधानी (बीकानेर) से थोडी दूर पर ही भूमि का ऐसा सूखा भाग मिलता है जैसा कि अरेबिया के सबसे ऊजड़ हिस्सो मे। लेकिन बरसात में या ठीक उसके बाद ही इसकी काया पलट हो जाती है। यहा कि भूमि उस समय उत्तम हरी घास से ढककर एक विशाल चरागाह बनजाती है।"

यहा पर सालभर बहनेवाली नदी एक भी नही है। केवल दो नदिया

नदिया

ऐसी हैं, जो वर्षा ऋतु मे बीकानेर राज्य में प्रवेशकर इसके कुछ हिस्सों मे जल पहुचाती हैं।

काटली—यह वास्तव में जयपुर राज्य की सीमा मे बहती है। उक्त राज्य के खडेला के पास की पहाडियों से निकलकर उत्तर की तरफ शेखावाटी में लगभग साठ मील तक बहती हुई यह नदी बीकानेर राज्य में प्रवेश करती है। अच्छी वर्षा होने पर यह राजगढ़ तहसील के दक्षिणी हिस्से में १० से १६ मील (वर्षा न्यून या अधिक होने के अनुसार) तक बहकर रेतीले प्रदेश में लुप्त हो जाती है।

(१) 'वागड़' शब्द गुजराती भाषा के 'वगड़ा' से मिलता हुआ है, जिसका अर्थ 'जगल' अथात् कम आबादीवाला प्रदेश होता है। अब भी डूगरपुर और बासवाड़ा राज्य तथा कच्छ का एक भाग 'वागड़' कहलाता है।

घग्गर (हाकड़ा)—इसका उद्गम स्थान सिरमोर राज्य के अन्तर्गत हिमालय पर्वत के नीचे का ढलुआ भाग है। पटियाला राज्य और हिसार ज़िले में बहकर यह टीबी के निकट बीकानेर राज्य में प्रवेश करती है। यह प्राचीन काल में इस राज्य के उत्तरी भाग में बहती हुई सिन्धु (Indus) नदी से जा मिलती थी[1], पर अब यह वर्षा ऋतु को छोड़कर सदा सूखी रहती है और इस समय भी यह हनुमानगढ़ के पश्चिम एक दो मील से अधिक आगे नहीं जाती।

जब सदर्न पंजाब रेल्वे के जरवाल नामक स्टेशन के पास बांध बांधकर इस नदी से एक नहर निकाली गई तो बीकानेर राज्य में इसका पानी आना बन्द हो गया। राज्य द्वारा इसकी कई बार शिकायत होने पर ई० स० १८९६ में अंग्रेज सरकार और राज्य के सम्मिलित खर्चे से धनूर झील के निकट ओटू (Otu) नामक स्थान में बांध बांधकर उससे दोनों तरफ़ नहरें ले जाने का प्रबन्ध हुआ। ये नहरें ई० स० १८९७ में बनकर सम्पूर्ण हुई। बीकानेर की सीमा के भीतर उत्तर एवं दक्षिण की तरफ़ की नहरों की लम्बाई ५३⅞ मील है। इन नहरों के बनवाने में कुल छः लाख रुपये ख़र्च हुए, जिसमें से लगभग आधा बीकानेर राज्य को देना पड़ा। अधिकांश पानी अंग्रेज़ी अमलदारी में ले लिये जाने से राज्य के भीतर की सिंचाई का औसत कम रहा। फिर भी बार बार लिखा पढ़ी होने के फल-स्वरूप ई० स० १९३१ में राज्य की पहले से अधिक अर्थात् ७११२ एकड़ भूमि घग्गर नहर द्वारा सींची गई थी।

नहरें

राजपूताने के राज्यों में केवल बीकानेर में ही नहरों द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध किया गया है। घग्गर (हाकड़ा) की नहर का उल्लेख ऊपर आ चुका है।

पश्चिमी यमुना नहर—पहले इस नहर का एक अंश 'फ़ीरोज़शाह

(१) इसके प्राचीन सूखे मार्ग का अब भी पता चलता है। पहले यह राज्य में प्रवेश करने के बाद सूरतगढ़, अनूपगढ़ आदि स्थानों के पास से होती हुई भावलपुर राज्य के मिनचिनाबाद इलाके से गुज़रकर सिन्धु से जा मिलती थी।

गग नहर

नहर' के नाम से प्रसिद्ध था, जिससे बीकानेर राज्य मे २० मील तक सिंचाई का कार्य होता था। बीच मे इस राज्य मे इस नहर का पानी आना बन्द कर दिया गया। बहुत प्रयत्न करने के बाद भाद्रा तहसील की ४६० एकड़ भूमि इससे सींची जाने की अनुमति पजाब सरकार ने दी है।

गग नहर—कई वर्षों की लिखा पढी के बाद पजाब, भावलपुर और बीकानेर राज्यों के बीच सतलज नदी से नहर काटकर बीकानेर राज्य में लेजाने के सम्बन्ध मे ई० स० १६२० ता० ४ सितम्बर (वि० स० १६७७ भाद्रपद वदि ६) को एक इक़रारनामा हुआ, जिसके अनुसार नहर बनकर सम्पूर्ण होने पर ई० स० १६२७ ता० २६ अक्टोबर (वि० स० १६८४ कार्तिक सुदि १) को भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड इर्विन द्वारा बड़े समारोह के साथ इसका उद्घाटन करवाया गया।

गगनहर फीरोजपुर कैंटोन्मेंट के पास सतलज से निकाली गई है और पजाब में होती हुई खक्खा के पास यह बीकानेर राज्य मे प्रवेश करती है। राज्य में प्रवेश करने के बाद शिवपुर, गगानगर, जोरावरपुर, पद्मपुर, रायसिंहनगर और सरूपसर के पास होती हुई यह अनूपगढ तक आई है तथा इसकी शाखा प्रशाखाएं पश्चिमी भाग मे दूर दूर तक फैली हुई हैं। मुख्य नहर की लम्बाई फीरोजपुर से शिवपुर तक ८५ मील है और राज्य के भीतर की प्रमुख नहर तथा इसकी शाखा प्रशाखाओं की कुल लम्बाई ५६६ मील है। इसके बनवाने में राज्य के लगभग ३ करोड रुपये खर्च हुए हैं। आरम्भ की पाच मील की लम्बाई को छोडकर शिवपुर तक (८० मील) यह नहर सीमेंट से पक्की बनी हुई है। सीमेंट से पक्की बनी हुई इतनी लम्बी नहर ससार में दूसरी कोई नहीं है। ई० स० १६३०-३१ मे खरीफ और रबी की सम्मिलित फसलों मे ३५१२४७ एकड भूमि इसके द्वारा सींची गई थी। इसके बन जाने से राज्य का कितना एक उत्तरी प्रदेश उपजाऊ हो गया है, जिससे राज्य की आय मे भी पर्याप्त वृद्धि हो गई है। वर्तमान नरेश महाराजा सर गगासिंहजी का यह भगीरथ प्रयत्न राज्य के लिए बड़ा लाभदायक हुआ है, क्योंकि इससे प्रजा का हित होने के साथ

ही राज्य को प्रति वर्ष अनुमान तीस लाख रुपये खर्च निकालकर आय बढ़ी है। नहर द्वारा सींची जानेवाली पड़त भूमि का मालिकाना हक आदि बेंचने की आय अनुमान साढ़े पांच करोड़ रुपये कूती गई है, जिसमें से ई० स० १९३१ तक ढाई करोड़ से कुछ अधिक रुपये वसूल हो चुके हैं।

झीलें

बीकानेर राज्य में बड़ी झील कोई नहीं है। मीठे और खारे पानी की छोटी छोटी झीलें नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—गजनेर—बीकानेर से २० मील दक्षिण-पश्चिम में यह मीठे पानी की झील उल्लेखनीय है। इसमें पश्चिम के ऊंचाईवाले प्रदेश से आया हुआ वर्षा का पानी जमा होता है और इसकी लंबाई चौड़ाई क्रमश $\frac{1}{2}$ और $\frac{1}{4}$ मील है। इसका जल रोगोत्पादक है। ऐसा प्रसिद्ध है कि महाराजा गजसिंह के समय जोधपुरवालों की चढ़ाई होने पर उस (गजसिंह) ने इसमें विष डलवा दिया था, जिसका प्रभाव अब तक विद्यमान है और लगातार कुछ दिनों तक इसका जल सेवन करने से लोग बीमार पड़ जाते हैं। इसके पास ही महाराजा साहब के भव्य महल, मनोहर उद्यान और शिकार की ओदिया (Shooting Boxes) बनी हुई हैं। यहां भड़ तीतर आदि पक्षियों की शिकार अधिकता से होती है। इस तालाब से कुछ दूर दूसरा बांध बांधा गया है, जिसमें से आवश्यकता होने पर जल इस झील में लेने की व्यवस्था की गई है।

२—कोलायत—गजनेर से १० मील दक्षिण पश्चिम में कोलायत नामक पवित्र स्थान में एक और छोटी झील है, जो पुष्कर के समान पवित्र मानी जाती है। यह भी वर्षा के जल पर निर्भर है और कम वर्षा होने पर सूख भी जाती है। इसके किनारों पर मंदिर, धर्मशालाएं और पक्के घाट बने हुए हैं। यहां पर कपिलेश्वर मुनि का आश्रम था ऐसा माना जाता है और इसी से इसका माहात्म्य अधिक बढ़ गया है। कार्तिकी पूर्णिमा के अवसर पर होनेवाले मेले में नेपाल आदि दूर दूर के स्थानों के यात्री यहां आते हैं।

३—छापर—सुजानगढ़ ज़िले की इस खारे पानी की झील से पहले नमक बनाया जाता था, जो अंग्रेज़ सरकार के साथ के ई० स० १८७९

(वि० सं० १९३५) के इकरारनामे के अनुसार अब बंद कर दिया गया है। यह लगभग छ मील लम्बी और दो मील चौड़ी झील है, परन्तु इसकी गहराई इतनी कम है कि उष्णकाल के प्रारम्भ मे ही बहुत कुछ सूख जाती है।

४—लूणकरणसर—राजधानी से पचास मील उत्तर पूर्व मे खारे पानी की यह दूसरी झील है। यहा भी पहले नमक बनता था, पर अब वह बन्द है।

इनके अतिरिक्त दक्षिण पश्चिमी हिस्से मे मढ़ गाव के पास एक तालाब थोड़े समय पूर्व ही बनाया गया है, जिससे ५५० एकड भूमि की सिंचाई हो सकती है। पिलाप गाव के पास भी नया तालाब बनाया गया है, जो गगसरोवर कहलाता है। इस झील से कई हजार बीघा ज़मीन की सिंचाई होती है और वहा वर्तमान महाराजा साहब के नाम पर गगापुरा नामक नवीन गाव बस गया है। कोडमदेसर के तालाब का बाध नये सिरे से ऊचा बनाया गया है और उसमे दो जगहो से जल लाने की नई व्यवस्था की गई है तथा वहा सुन्दर महल भी है।

यहा की जल वायु सूखी, परन्तु अधिकतर आरोग्यप्रद है। गर्मी में अधिक गर्मी और सर्दी में अधिक सर्दी पड़ना यहां की विशेषता है।

जल वायु

इसी कारण मई, जून और जुलाई मास मे यहा 'लू' (गर्म हवा) बहुत जोरो से चलती है, जिससे रेत के टीले उड उड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर लग जाते हैं। उन दिनों सूर्य की धूप इतनी असह्य हो जाती है कि यहा के देशवासी भी दोपहर को घर से बाहर निकलते हुए भय खाते हैं। कभी कभी गर्मी बहुत बढ़ने पर लोगो की अकाल मृत्यु भी हो जाती है। बहुधा लोग घरों के नीचे के भाग में तहखाने बनवा लेते हैं, जो ठढे रहते हैं और गर्मी की विशेषता होने पर वे उनमे चले जाते हैं। कड़ी जमीन की अपेक्षा रेता शीघ्रता से ठढा हो जाता है, इसलिए गर्मी के दिनों मे भी रात के समय यहा ठढक रहती है।

शीतकाल मे यहा इतनी सर्दी पड़ती है कि पेड़ और पौधे बहुधा

पाले के कारण नष्ट हो जाते हैं। ई० स० १८०८ के नवम्बर (वि० स० १८६५ मार्गशीर्ष) मास मे जब मॉनस्टुअर्ट एल्फिन्स्टन काबुल जाता हुआ इधर से होकर गुजरा था, उस समय सर्दी के कारण उसका बहुत नुक़सान हुआ। केवल एक दिन में नाथूसर मे उसके तीस सिपाही बीमार पड़ गये और बीकानेर मे एक सप्ताह मे ४० आदमी अकाल मृत्यु के शिकार हुए। इसी प्रकार लेफ्टिनेंट बोइलो (Boileaw) ने, जो ई० स० १८३५ (वि० स० १८९१-९२) में यहा आया था, शीतकाल मे कडी सर्दी का अनुभव किया। उसने देखा कि फरवरी मास मे भी तालाबों की सतह पर बरफ़ जम गई थी और उसके खेमे के बर्तनों का पानी भी जम गया था। मई में उसने तथा उसके साथियो ने कडी गर्मी का अनुभव किया, परन्तु इस अवस्था मे भी उसके साथ का एक भी आदमी बीमार न पडा।

उष्णकाल मे बीकानेर राज्य मे गर्मी कभी कभी १२३° डिगरी तक पहुच जाती है और सर्दी मे ३१° डिगरी तक घट जाती है।

कुएं

बीकानेर मे रेगिस्तान की अधिकता होने से कुए और छोटे छोटे तालाबों का महत्व बहुत अधिक है। जहा कहीं कुआ खोदने की सुविधा हुई अथवा पानी जमा होने का स्थान मिला, आरम्भ में वहा पर ही बस्ती बस गई। यही कारण है कि बीकानेर के अधिकाश स्थानों के नामो के साथ 'सर' जुडा हुआ मिलता है, जैसे कोड़मदेसर, नौरगदेसर, लूणकरणसर आदि। इससे आशय यही है कि उन स्थानों मे कुए अथवा तालाब हैं। कुओं के महत्व का एक कारण यह भी है कि पहले जब भी इस देश पर आक्रमण होता था, तो आक्रमणकारी कुओं के स्थानों पर अपना अधिकार जमाने का सर्व प्रथम प्रयत्न करते थे। अधिकतर कुए यहा ३०० या उससे अधिक फुट गहरे हैं, जिनका पानी बहुधा सुस्वादु और स्वास्थ्यकर है। डाक्टर मूर को नाटवा नामक गाव मे कुआ खुदवाते समय ४०० फुट नीचे पानी मिला था। कुछ स्थानों में कुए बहुत कम गहरे अर्थात् २० फुट गहरे हैं। जयपुर राज्य की सीमा की तरफ़ पानी बहुधा अच्छा और आरोग्यप्रद मिलता है।

जैसलमेर को छोडकर राजपूताने के अन्य राज्यो की अपेक्षा बीकानेर राज्य मे सब से कम वर्षा होती है, जिसका कारण राज्य मे पहाड़ों का अभाव है। ई० स० १९१२-१३ से लगाकर १९३१-३२ के बीच राज्य की वर्षा का औसत १० इच से कुछ अधिक रहा है। सब से अधिक जलवृष्टि बीकानेर के पूर्वी और दक्षिण पूर्वी भागों में भादरा, चूरू और सुजानगढ के आस पास होती है। यहा का औसत १३ और १४ इच के बीच है। इनके निकटवर्ती नौहर, राजगढ, रतनगढ़ आदि स्थानों मे औसत ११ और १२ इच के बीच रहता है। राजधानी तथा राज्य के मध्यवर्ती भाग में वर्षा का औसत १० और ११ इच के बीच है। सुदूर पश्चिमी हिस्से मे अनूपगढ़ के आस पास वर्षा सब से कम होती है। अधिक से अधिक यहा वर्षा ७ और ८ इच के बीच होती है। शेष स्थानो मे औसत ९ और १० इच के बीच है। ई० स० १९१२ और १९३२ के बीच सब से अधिक वर्षा ई० स० १९१६-१७ मे सुजानगढ में क़रीब ४० इच और सब से कम वर्षा ई० स० १९१७-१८ में अनूपगढ़ में आधे इच से कुछ अधिक हुई थी।

वर्षा

वर्षाकाल में बीकानेर राज्य का प्राकृतिक सौन्दर्य बढ़ जाता है। पानी बरस जाने पर अधिकाश स्थानों मे हरियाली हो जाती है, जो देखते ही बनती है।

राज्य का अधिकांश हिस्सा अर्वली पर्वत के उत्तर और उत्तर-पश्चिम मे फैली हुई अनुपजाऊ तथा जलविहीन मरुभूमि का ही एक अश है। इसी प्रकार दक्षिणी, मध्यवर्ती एव पश्चिमीय भाग रेतीली भूमि का मैदान है, जिसके बीच में जगह-जगह रेत के टीले हैं, जो कही-कही बहुत ऊचे हो गये हैं। राजधानी के दक्षिण पश्चिम मे मगरा नाम की पथरीली भूमि है जहा अच्छी वर्षा हो जाने पर किसी प्रकार अच्छी पैदावार हो जाती है। इसके उत्तर अर्थात् अनूपगढ़ के दक्षिण पश्चिम मे एक विशाल भू भाग है, जिसे 'चितरग' कहते हैं। कुदरती क्षार बहुतायत से होने के कारण यह भूमि भी खेती के

भूमि और पैदावार

योग्य नहीं है। फिर भी यहा सज्जी और राख के पौधे अधिकता से होते हैं। घग्गर से परे राज्य का सब से उपजाऊ भाग मिलता है, क्योकि उधर की भूमि क्रमश उत्तर की तरफ अधिक समतल और कम रेतीली होती गई है। अनूपगढ़ और सूरतगढ़ के उत्तर की भूमि एक प्रकार की चिकनी मिट्टी की बनी है, जिसको लोग 'बग्गी' कहते हैं। 'काठी' भूमि हनुमानगढ़ के ऊपरी भाग से हिसार तक फैली हुई है। इसका रग कुछ पीलापन लिये हुए है और जल सोखने मे अच्छी होने के कारण ठीक सिंचाई होने पर यहा उत्तम पैदावार हो सकती है। नौहर और भादरा तहसीलो की भूमि काफी समतल और उपजाऊ है। राज्य के पश्चिम और दक्षिण पश्चिम मे मुख्य रेगिस्तान है।

राज्य के अधिकाश भागो मे केवल एक ही फसल खरीफ की होती है और मुख्यत बाजरा, मोठ, जवार, तिल और कुछ रुई की खेती की जाती है। रबी की फसल अर्थात् गेहू, जौ, चना, सरसो आदि की पैदावार पहले सूरतगढ निजामत के उत्तरी और रिणी निजामत के पूर्वी भागों मे ही सीमित थी, परन्तु अब हाकडा तथा गगनहर के आ जाने से उधर दोनों फसले होने लगी हैं। नहर से सींची जानेवाली भूमि में पजाब की भाति गन्ना, रुई, गेहू, मक्का आदि भी अब पैदा होने लगे हैं।

खरीफ की फसल यहा प्रमुख गिनी जाती है, क्योकि अन्न इत्यादि के लिए लोग इसी पर निर्भर रहते हैं और इस फसल का औसत भी रबी की फसल से कई गुना अधिक है। यहा के गाव एक दूसरे से काफी दूरी पर बसने के कारण एक बार खरीफ की फसल न होने से विशेष नुक़सान नहीं होता, जब तक कि उसके पहले भी लगातार कई बार कहत न पड़ चुका हो।

बाजरा यहा की मुख्य पैदावार है, जो यहा बहुतायत से और अच्छी जात का होता है। इसके बाद मोठ है। गेहू सुजानगढ़ के आस पास वर्षा के जल से तर होजानेवाली 'नाली' मे और नहरों के क्षेत्रों में

जलाकर अर्क निकालने से सज्जी बनती है। उससे निकला हुआ सोडा निम्न श्रेणी का होता है।

थोडी सी वर्षा हो जाने पर भी यहा घास अच्छी उग आती है। हनुमानगढ एव सूरतगढ मे घास अच्छी, बड़ी और कई प्रकार की होती है, जिनको 'सेवण', 'धामन' आदि कहते हैं। सुजानगढ़ मे 'गठील' घास अधिक होती है। राज्य भर में, प्रधानतया दक्षिणी भाग मे, 'भुरट' नाम की चिपटनेवाली घास बहुतायत से उत्पन्न होती है। इसी 'भुरट' नाम की घास की अधिकता के कारण पिछली फारसी तवारीखो आदि मे कही कहीं बीकानेर के नरेशों को 'भुरटिया' भी लिखा मिलता है। इसका कारण यह है कि बादशाह औरगजेब महाराजा कर्णसिंह से नाराज था, जिससे वह उसे 'भुरटिया' कहा करता था। अतएव यह शब्द कुछ समय तक बीकानेर के राजाओं के लिए प्रचलित हो गया था। अकाल के दिनो में लोग इसके बीजो को पीसकर उनसे रोटी बनाते हैं। राज्य मे और भी कई प्रकार की घास होती है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। वर्षा ऋतु में तरह-तरह की घास उग आने के कारण ही बीकानेर के प्राकृतिक सौन्दर्य में अभिवृद्धि हो जाती है।

घास

इस राज्य मे पहाड और जगल न होने के कारण शेर, चीते, रींछ आदि भयङ्कर जन्तु तो नहीं हैं, पर जरख, रोझ (नीलगाय) आदि प्राय मिल जाते हैं। राज्य भर मे घास अच्छी होती है, जिससे गाय, बैल, भैंस, घोड़े, ऊट, भेड़, बकरी आदि चौपाये सब जगह अधिकता से पाले जाते हैं। ऊट यहा का बड़े काम का जानवर है और सवारी, बोझा ढोने, जल लाने, हल चलाने आदि का कार्य उससे लिया जाता है। जगली पशुओं में अनूपगढ़ और रायसिंह-नगर के तहसीलो में कभी कभी गोरखर (जगली गधा) भी मिल जाते हैं। हिरन यहा बहुतायत से पाये जाते हैं। छापर, सुजानगढ़, सूरतगढ़ और हनुमानगढ़ तहसीलों मे अथवा जहा कहीं भी पानी सुलभ है, वहा इनकी

जगली जानवर और पशु पक्षी

सख्या अधिक है। इनकी दो जातिया—चीखले और काले—हैं। चीखले सब ही जगह होते हैं और काले उपरोक्त स्थानो मे। इनका शिकार करना राज्य की ओर से वर्जित होने के कारण ही इनकी तादाद दिन दिन बढ़ती जा रही है। घग्गर के बहाव तथा गजनेर के पास दोनो जातियो के हिरन और चीतल भी मिलते हैं। बीकानेर राज्य में सूअर और भेडिये भी पाये जाते हैं, जो कभी कभी बहुत हानि पहुचाते हैं। भेडिये को मारनेवाले को राज्य की तरफ से इनाम भी दिया जाता है। छोटे जानवरो मे लोमडी, खरगोश, साप आदि अधिक सख्या मे हैं।

पक्षियों मे भूरे रग के तीतर, गोडावण (Bustard), बटबड़ (Sand grouse) आदि पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त बडी बटबड़ (Imperial Sand grouse), बटेर (Quail), चाय (Snipe), कुज, तिलोर (Houbara) आदि पक्षी भी मिल जाते हैं। सर्दी के मौसिम में कोलायत और गजनेर के तालाबो मे दूर दूर से जगली बतखे आ जाती हैं। तहसील हनुमानगढ़ में नाली के किनारे कुज (क्रौंच) आदि कई प्रकार के पक्षी होते हैं, जिनका शिकार किया जाता है।

खानें

प्राय समस्त देश कच्छ की खाड़ी से उड़कर आनेवाले रेत के टीलों से भरा हुआ है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। यहा पहाडियों का अभाव है तथापि कोलायत और गजनेर की रेतीली सतह के नीचे से पत्थरों के बड़े बडे टुकड़े, चूने के ककड तथा कई प्रकार की मिट्टी मिल जाती है, जो मकान बनवाने के काम मे आती है। मीठा चूना भी रियासत के बहुत से भागों मे मिल जाता है। इसके लिए सरदारशहर, जामसर आदि स्थान उल्लेखनीय हैं तथा यह राजधानी के आस-पास भी मिलता है। यह वहा मिलनेवाली एक प्रकार की चिकनी मिट्टी को जलाकर बनाया जाता है। दक्षिण पश्चिम के मढ़ और पलाना नामक गाव मे तथा गजनेर के पास मुल्तानी मिट्टी पाई जाती है। इसकी उत्पत्ति यहा लगभग १००० टन है, जिसमे से ८५० टन पजाब आदि स्थानों में बिक्री के लिए भेज दी जाती है। लोग इसे सिर

धोने के काम मे लाते हैं। पजाब मे इसके सुन्दर बर्तन आदि भी बनते हैं। कहते हैं कि एक शताब्दी पूर्व कच्छ की औरते अपने सौन्दर्य की वृद्धि के लिए कभी कभी इसे खाया करती थी। राजधानी से १४ मील दक्षिण पश्चिम मे पलाना मे कोयला निकाला जाता है। ई० स० १८९६ (वि० सं० १९५३) मे वहा एक कुआ खोदते समय इस खान का पता लगा था और ई० स० १८९८ (वि० स० १९५५) मे यहा से कोयला निकालने का कार्य प्रारम्भ हुआ। तब से इस व्यवसाय की उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रही है। यहा का कोयला हलकी जाति का होता है और प्रधानतया राज्य के 'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट' द्वारा काम मे लिया जाता है तथा कुछ पजाब को भी भेजा जाता है। इस खान से लगभग २५० मनुष्यों की जीविका चलती है।

राजधानी से ४२ मील पूर्वोत्तर मे दुलमेरा नामक स्थान के निकट लालरग का अत्युत्तम पत्थर पाया जाता है, जिसके मुलायम होने के कारण इसपर खुदाई का काम अच्छा होता है। राज्य के लालगढ नामक भव्य महल, 'विक्टोरिया मेमोरियल क्लब' आदि कई भवनों तथा शहर के भीतर के श्रीमतो के कई सुन्दर मकानो का निर्माण इसी पत्थर से हुआ है। यह पत्थर भावलपुर, भटिंडा आदि स्थानों को भी भेजा जाता है। सुजानगढ तहसील मे भी एक प्रकार का पत्थर निकलता है, परन्तु उतना अच्छा न होने के कारण वह केवल स्थानीय व्यवहार मे ही आता है।

महाराजा गजसिंह के राजत्वकाल (ई० स० १७५३=वि० स० १८१०) मे बीदासर के निकट दड़ीबा गाव मे ताबे की खान का पता चला था,[1] जिसकी खुदाई उसी समय आरम्भ कर दी गई थी, परन्तु यह खान लाभदायक सिद्ध न होने के कारण बाद मे बन्द कर दी गई।

---

(१) टॉड ने दो ताबे की खानों का राज्य में पता चलना लिखा है। एक वीरमसर में तथा दूसरी बीदासर में। इनमे से पहली लाभदायक न होने से और दूसरी तीस वर्ष में खत्म हो जाने पर बन्द कर दी गई।

किले

बीकानेर और हनुमानगढ यहा के प्रधान किले हैं। इनके अतिरिक्त राज्य मे और भी कई जगह छोटे छोटे क़िले (गढ) हैं।

रेल्वे

राज्य के सुदूर उत्तरी भाग में बडे नाप की 'सदर्न पजाब रेल्वे' केवल तीन मील तक बीकानेर राज्य की सीमा मे होकर निकली है। जोधपुर और बीकानेर के बीच ई० स० १८९१ (वि० स० १९४८) के दिसम्बर मास मे अग्रेज सरकार के साथ किये गये इक़रारनामे के अनुसार छोटे नाप की रेल बनाकर खोली गई थी। ई० स० १९२४ (वि० स० १९८१) से बीकानेर स्टेट रेल्वे जोधपुर स्टेट रेल्वे से अलग हो गई है। जोधपुर स्टेट रेल्वे के स्टेशन मेडता रोड[1] से उत्तर में चीलो जक्शन से बीकानेर स्टेट रेल्वे शुरू होती है और यह चीलो जक्शन से बीकानेर, दुलमेरा, सूरतगढ और हनुमानगढ होती हुई भटिंडा तक चली गई है। इसकी कुल लम्बाई लगभग २५० मील है, जिसमे से क़रीब ३२ मील पजाब की सीमा मे पडती है। हनुमानगढ जक्शन से एक शाखा गगानगर, रायसिंहनगर और सरूपसर होती हुई सूरतगढ़ को गई है। सरूपसर से एक टुकडा अनूपगढ को गया है। इस हिस्से की रेल की लबाई लगभग १६३ मील है। बीकानेर से दूसरी लबी लाइन रतनगढ़, चूरु और सादुलपुर होकर हिसार तक गई है। रतनगढ़ से एक शाखा सुजानगढ़ तक जाकर जोधपुर स्टेट रेल्वे से मिल गई है एव रतनगढ़ से दूसरी शाखा सरदारशहर तक गई है। हनुमानगढ़ से एक शाखा नोहर और भाद्रा होती हुई सादुलपुर मे हिसार जानेवाली लाइन से मिली है। इस लाइन की लबाई लगभग १११ मील है। बीकानेर से एक शाखा गजनेर होकर श्रीकोलायतजी तक बनवा दी गई है। बीकानेर राज्य के भीतर छोटे नाप की रेल्वे लाइन की कुल लबाई लगभग ८२० मील है। इस समय सादुलपुर से रेवाडी तक १२५ मील लबी रेल्वे लाइन निकालने

(१) फुलेरा जक्शन से कुचामन रोड तक बी० बी० एण्ड० सी० आई० और वहां से मेड़ता रोड तक जोधपुर स्टेट रेल्वे है।

का राज्य का और भी विचार है। रेल गाड़िया बनाने और उनकी मरम्मत के लिए राजधानी बीकानेर में एक बड़ा कारखाना है, जिसमें १००० आदमी काम करते हैं।

सड़कें

राजधानी के आस पास और शहर से गजनेर तथा उसके आगे श्रीकोलायतजी के समीप एव शिवबाड़ी व देवीकुड तक पक्की सड़कें बनी हुई हैं। कच्ची सडके बहुधा राज्य भर में सर्वत्र हैं, जो चौमासे को छोडकर अन्य मौसमों मे मोटर तथा अन्य गाड़ियों की आमद रफ्त के लिए काम देती हैं।

जनसख्या

इस राज्य में मनुष्य गणना अब तक छ बार हुई है। यहा की जन-सख्या ई० स० १८८१ मे ५०९०२१, ई० स० १८९१ में ८३१९५५, ई० स० १९०१[1] में ५८४६२७, ई० स० १९११ में ७००९८३, ई० स० १९२१ मे ६५९६८५ और ई० स० १९३१ में ९३६२१८ थी, जिसमे ५०११५३ मर्द और ४३५०६५ औरते थी। इस हिसाब से प्रत्येक वर्ग मील पर ४१ मनुष्यो की आबादी का औसत आता है।

धर्म

यहा मुख्यत वैदिक (ब्राह्मण), जैन, सिक्ख और इस्लाम धर्म के माननेवालों की सख्या अधिक है। ईसाई, आर्यसमाजी और पारसी धर्म के अनुयायी भी यहा थोडे बहुत हैं। वैदिक धर्म के माननेवालो मे शैव, वैष्णव, शाक्त आदि अनेक भेद हैं, जिनमे से यहा वैष्णवो की सख्या अधिक है। जैन धर्म मे श्वेताम्बर, दिगम्बर और थानकवासी (ढूढिया) आदि भेद हैं, जिनमें थानकवासियों की संख्या ज्यादा है। इस्लाम धर्म के अनुयायियों के दो भेद शिया और सुन्नी हैं। इनमे से इस राज्य मे सुन्नियों की सख्या अधिक है। मुसल-मानों मे अधिकाश राजपूतों के वशज हैं, जो मुसलमान हो गये हैं और उनके यहा अब तक कई हिन्दू रीति रिवाज प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त

(१) इस वर्ष में जन सख्या मे इतनी कमी होने का कारण ई० स० १८९९–१९०० (वि० स० १९५६) का भीषण अकाल था।

यहां अलखगिरि[1] नाम का नवीन मत भी प्रचलित है तथा विसनोई[2] नाम का दूसरा मत भी हिन्दुओं में विद्यमान है।

---

(१) यह धर्म लालगिरि नाम के एक चमार व्यक्ति ने चलाया था, जो बीकानेर राज्य के सुलखनिया स्थान का रहनेवाला था। पांच वर्ष की अवस्था में इसे एक नागा ने लेजाकर धोखे से अपना चेला बना लिया था। पन्द्रह वर्ष बाद लौटने पर जब उसे उसके नीच जाति के होने का प्रमाण मिला तो उसने लालगिरि का परित्याग कर दिया। ई० स० १८३० (वि० स० १८८७) में लालगिरि बीकानेर आया और वह क़िले के पश्चिमी फाटक के पास कुटी बनाकर बारह वर्ष तक वहां रहा। महाराजा रत्नसिंह के तीर्थ यात्रा के लिए जाने पर वह भी उसके साथ गया। वहां से लौटने पर उसने अपनी जन्म भूमि में एक अच्छा कुआं खुदवाया और उसके बाद बीकानेर में आकर 'अलख' की उपासना का प्रचार करने लगा। कुछ ही दिनों में उसके अनुयायियों की सख्या बढ़ने लगी। उसका प्रधान शिष्य लच्छीराम था, जिसने बीकानेर में 'अलख सागर' नाम का कुआं बनवाया। उपासना के सम्बन्ध में महाराजा की आज्ञा न मानने के कारण लालगिरि राज्य से निकाल दिया गया, तब वह जयपुर जाकर रहने लगा और उसके शिष्य उसकी आज्ञानुसार भगवा वस्त्र पहनने लगे। महाराजा सरदारसिंह ने जब इस धर्म का प्रचार बहुत बढ़ता देखा तो उसने इसके माननेवालों को राज्य से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी, जिसपर बहुतों ने इस मत का परित्याग कर दिया, परन्तु लच्छीराम दृढ़ रहा। ई० स० १८६६-६७ (वि० स० १९२३) में लच्छीराम के पुत्र मानमल के मंत्री पद पर नियुक्त होने पर इस धर्म का फिर ज़ोर बढ़ा और लालगिरि भी बीकानेर लौटकर स्वतन्त्रता के साथ इसका प्रचार करने लगा। अलखगिरि मत के अनुयायी बहुधा साधु के वेष में रहते और भिक्षा से जीवन निर्वाह करते हैं, परन्तु कई गृहस्थ भी हैं। ये जैन तीर्थंकरों की उपासना तो नहीं करते पर अपना धर्म उससे मिलता-जुलता होने के कारण अपने को जैनों की शाखा मानते और जैन तीर्थंकरों का आदर करते हैं।

(२) बिसनोई मत के प्रवर्त्तक जाभा नामक सिद्ध का वि० स० १५०८ (ई० स० १४५१) में पीपासर में जन्म होना माना जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि उसको जंगल में गुरु गोरखनाथ मिला, जिससे उसको सिद्धि प्राप्त हुई। वह परमार जाति का राजपूत था। उसने अकाल के समय बहुतसे जाटों आदि का अन्न देकर पोषण किया। उसने बीस तथा नव (उन्तीस) बातों की अपने अनुयायियों को शिक्षा दी, जिससे वे 'बिसनोई' कहलाने लगे।

उसके शिष्य सिद्धान्तरूप से उसकी बतलाई हुई बीस और नव (उन्तीस)

ई० स० १९३१ (वि० स० १९८७) की मनुष्यगणना के अनुसार भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियो की सख्या नीचे लिखे अनुसार है—

हिन्दू ७९४३२६; इनमे ब्राह्मण धर्म को माननेवाले ७२१९२९, आर्य (आर्यसमाजी) ३१२५, ब्राह्मो और देवसमाजी ३३, सिक्ख ४०४६९

बातों को मानते हैं, जिनमे से मुख्य ये हैं—

रजस्वला होने पर स्त्री पाच दिन तक अलग रहे।

प्रसव होने पर पुरुष स्त्री से एक मास तक दूर रहे और स्त्री आग, जल आदि को न छुए।

परस्त्री गमन और लालच न करे।

रसोई अपने हाथ की बनाई हुई खावे और जल छानकर पिये।

झूठ कभी न बोले। चोरी न करे। हरा वृक्ष न काटे। किसी प्रकार की जीव हिंसा न करे। मद्य न पिये और नशामात्र न करे।

अमावास्या का व्रत रक्खे। विष्णु की भक्ति करे। प्रतिदिन अग्नि में घी डालकर हवन करे। पाच समय ईश्वर का स्मरण करे और सध्या समय आरती करे। नील से रगा हुआ वस्त्र न पहने आदि।

उसके उपदेशों का फल यह हुआ कि जाटों के अतिरिक्त इतर जातियों के बहुत से लोग भी आकर उसके अनुयायी होने लगे। गुरु नानक की भाति उसने भी हिन्दू और मुसलमानो मे ऐक्य स्थापित करने के लिए मुसलमानी धर्म की कुछ बातें अपने यहा जारी कीं, यथा—

मरने पर शव को गाड़ा जावे।

सारा सिर मुडावे और चोटी न रक्खे।

मुह पर दाढी रक्खे।

जाम्भा की मृत्यु वि० स० १५८३ (ई० स० १५२६) में होना बतलाते हैं। बीकानेर राज्य के तालवे गाव में उसकी मृत्यु होने पर रेत के धोरे मे (जहा वह रहता था) उसके शव को गाड़ा गया। उस जगह उसकी स्मृति में एक मदिर बना है और प्रति वर्ष फाल्गुन वदि १३ के आस पास वहा मेला होता है, जिसमें दूर-दूर से बिसनोई आकर सम्मिलित होते है। वे लोग वहा हवन करते हैं और अपनी जाति के झगड़ों को भी वहीं मिटाते है। बीकानेर राज्य के अतिरिक्त जोधपुर, उदयपुर आदि राज्यों मे भी बिसनोई रहते हैं और उनमे विधवा स्त्री का पुनर्विवाह भी होता है।

और जैन २८७७३ हैं। मुसलमान १४१५७८, ईसाई २९८ और पारसी १६ हैं।

हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, खत्री, कायस्थ, जाट, चारण, भाट, सुनार, दरोगा, दर्जी, लुहार, खाती (बढ़ई), कुम्हार, तेली, माली, नाई, धोबी, गूजर, अहीर, वैरागी, गोसाई, स्वामी, डाकोत, कलाल, लखेरा, छीपा, सेवक, भगत, भडभूजा, रैगर, मोची, चमार आदि कई जातिया हैं। ब्राह्मण, महाजन आदि कई जातियों की अनेक उपजातिया भी बन गई हैं, जिनमे परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। ब्राह्मणो की कई उपजातियो मे तो परस्पर भोजन व्यवहार भी नही है। जगली जातियों मे मीणे, बावरी, थोरी आदि हैं। ये लोग पहले चोरी और डकेती अधिक किया करते थे, पर अब खेती और मजदूरी करने लगे हैं, तो भी दुष्काल में अपना पुराना पेशा नहीं छोड़ते। मुसलमानो मे शेख़, सैयद, मुगल, पठान, कायमख़ानी,[1] राठ[2],

जातिया

(१) कायमख़ानी पहले चौहान राजपूत थे और शेखावाटी के आस पास के निवासी थे। मुहणोत नैणसी ने लिखा है—"हिसार का फौजदार सैयद नासिर उन (चौहानों) पर चढ आया और दद्देरा को लूटा। वहा की प्रजा भागी और केवल दो बालक (एक चौहान राजपूत और दूसरा जाट) उस गाव में रह गये, जिनको उसने अपने साथ ले लिया। फिर उस(नासिर)ने उनकी परवरिश की। सैयद नासिर की मृत्यु होने पर वे दोनो लड़के दिल्ली के सुलतान बहलोल लोदी के पास उपस्थित किये गये। इसपर उक्त सुलतान ने उस राजपूत लड़के (करमसी) को मुसलमान बनाकर क़ायमखा नाम रक्खा (ख्यात, प्रथम भाग, पृ० ११६)।" जयपुर राज्य के शेखावाटी में झूझणू और फ़तहपुर पर बहुत दिनों तक कायमखा के वशजो का अधिकार रहा तथा अब भी वहा उसके वशज निवास करते हैं, जो क़ायमख़ानी कहलाते हैं। उनके बहुतसे रीति-रिवाज हिन्दुओं के समान हैं और पुरोहित भी ब्राह्मण हैं, परन्तु अब वे अपने प्राचीन हिन्दू सस्कारों को मिटाते जाते हैं।

(२) राठ या राट भी एक बहुत प्राचीन जाति है, जिसको प्राचीन काल में 'आरट्ट' कहते थे। इसका दूसरा नाम 'बाह्लीक' (वाहिक) भी था। इस जाति के स्त्री पुरुषो के रहन सहन, आचार विचार आदि की महाभारत मे बड़ी निंदा की है—

आरट्टा नाम बाह्लीका एतेष्वार्यो हि नो वसेत् ॥ ४३ ॥

जोहिया[1], रंगरेज, भिश्ती और कुंजड़े आदि कई जातिया हैं।

यहा के लोगो मे से अधिकाश खेती करते हैं, शेष व्यापार, नौकरी, दस्तकारी, मजदूरी, अथवा लेन देन का कार्य करते हैं। राज्य के उत्तरी भाग मे अनूपगढ़ के पश्चिम के लोग बहुधा पशु पालन करके अपना निर्वाह करते हैं। पीरजादे और राठ जाति के मुसलमानो का यही मुख्य पेशा है। व्यापार करनेवाली जातियों मे प्रधान महाजन हैं, जो कलकत्ता, बबई, कराची बर्मा, सिंगापुर, आदि दूर दूर के स्थानो मे जाकर व्यापार करते हैं और उनमे से बहुत से

पेशा

आरट्टा नाम बाह्लीका वर्जनीया विपश्चिता ॥ ४८ ॥

आरट्टा नाम बाह्लीका नतेष्वार्यो व्यह वसेत् ॥ ५१ ॥

महाभारत, कर्णपर्व, अध्याय ३७ (कुभकोण सस्करण)।

मुसलमानो के राजत्वकाल मे इन लोगो को मुसलमान बनाया गया, जो अब 'राठ' कहलाते है। वस्तुत य लोग पजाब के एक प्रदश के निवासी थे और महा प्रतापी दक्षिण के राठोड़ो से बिल्कुल ही भिन्न थे।

(१) जोहियो के लिए प्राचीन लेखो मे 'यौधेय' शब्द मिलता है। प्राचीन क्षत्रिय राजवशों में यह बड़ी वीर जाति थी। यौधेय शब्द 'युध्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'लड़ना' है। मौर्य राज्य की स्थापना से भी कई शताब्दी पूर्व होनेवाले प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने भी अपने व्याकरण में इस जाति का उल्लेख किया है। इनका मूल निवासस्थान पजाब था। इन्हीं के नाम से सतलज नदी के दोनो तटो पर का भावलपुर राज्य के निकट का प्रदेश जोहियावार' कहलाता है। जोहिये राजपूत अब तक पजाब के हिसार और मोटगोमरी (साहिवाल) जिलों मे पाये जाते हैं। प्राचीन काल मे ये लोग सदा स्वतन्त्र रहते थे और गण-राज्य की भाति इनके अलग अलग दलों के मुखिये ही इनके सेनापति और राजा माने जाते थे। महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार के लेख से पाया जाता है कि क्षत्रियों में वीर का खिताब धारण करनेवाले यौधेयों को उसने नष्ट किया था। उसके पीछे गुप्तवशी राजा समुद्रगुप्त न इनको अपने अधीन किया। पजाब से दक्षिण मे बढते हुए ये लोग राजपूताने मे भी पहुच गये थे। ये लोग स्वामिकार्तिक के उपासक थे, इसलिए इनके जो सिक्के मिलते हैं, उनमें एक तरफ़ इनके सेनापति का नाम तथा दूसरी तरफ छ मुखवाली कार्तिकस्वामी की मूर्त्ति हैं। भरतपुर राज्य क बयाना नगर के पास विजयगढ के क़िले से वि० स० की छठी शताब्दी के आस पास की लिपि में इनका एक टूटा हुआ लेख मिला है। वर्त्तमान

बडे सपन्न भी हो गये हैं। ब्राह्मण विशेषकर पूजा पाठ तथा पुरोहिताई करते हैं, परन्तु कोई कोई व्यापार, नौकरी और खेती भी करते हैं। कुछ महाजन भी कृषि से ही अपना निर्वाह करते हैं। राजपूतो का मुख्य पेशा सैनिक सेवा है, किन्तु कई खेती भी करते हैं।

शहरो मे पुरुषों की पोशाक बहुधा लबा अगरखा या कोट, धोती और पगडी है। मुसलमान लोग बहुधा पाजामा, कुरता और पगडी, साफा या टोपी पहनते हैं। सम्पन्न व्यक्ति अपनी पगड़ी का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं, परन्तु धीरे धीरे अब पगडी के स्थान में साफे या टोपी का प्रचार बढ़ता जा रहा है। राजकीय पुरुषो मे कुछ अब पाजामा अथवा ब्रिचिज, कोट और अग्रेजी टोप का भी व्यवहार करने लगे हैं। ग्रामीण लोग अधिकतर मोटे कपड़े की धोती, बगलबन्दी और फेटा काम में लाते हैं। स्त्रियो की पोशाक लहँगा, चोली और दुपट्टा है पर अब तो कलकत्ता आदि बाहरी स्थानों में रहने के कारण कई हिन्दू स्त्रिया केवल धोती और काचली (कचुकी) पहनने लगी हैं और ऊपर दुपट्टा डाल लेती हैं। मुसलमान औरतों की पोशाक चुस्त पाजामा, लम्बा कुरता और दुपट्टा है। उनमे से कुछ तिलक भी पहनती हैं।

पोशाक

यहा के अधिकाश लोगो की भाषा मारवाडी (राजस्थानी) है, जो राजपूताने मे बोली जानेवाली भाषाओ मे मुख्य है। यहा उसके भेद थली,

---

बीकानेर राज्य के कुछ भाग में भी पहले जोहियों का ही निवास था और एक लड़ाई में मारवाड़ का राठोड़ राव वीरम सलखावत (जो राव चूडा का पिता था) इन जोहियों के हाथ से मारा गया था। राव बीका द्वारा बीकानेर का राज्य स्थापित होने के पीछे बीकानेर के राजाओं से जोहियों ने कई लड़ाइया लड़ी थी, जिनका उल्लेख यथा प्रसङ्ग किया जायगा। मुसलमानो का भारत में आक्रमण पजाब के मार्ग से ही हुआ था। उस समय उन्होंने वहा के निवासियो को बल पूर्वक मुसलमान बना लिया। तब जोहियों ने भी अपना सामूहिक बल टूट जाने व मुसलमानों के अत्याचारो से तग हो कर इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। अब बीकानेर राज्य मे जोहिये राजपूत नहीं रहे केवल मुसलमान ही हैं।

भाषा

बागडी तथा शेखावाटी की भाषायें हैं। उत्तरी भाग के कुछ लोग मिश्रित पजाबी, जिसको 'जाटकी' अर्थात् जाटों की भाषा कहते हैं, बोलते हैं।

यहा की लिपि नागरी है, जो बहुधा घसीट रूप में लिखी जाती है। राजकीय दफ्तरों मे अंग्रेजी का बहुत कुछ प्रचार है।

लिपि

भेडों की अधिकता के कारण यहा ऊन बहुत होता है, जिसके कम्बल, लोइया आदि ऊनी सामान बहुत अच्छे बनते हैं। यहा के गलीचे और दरिया भी प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त हाथी दात की चूडिया, लाख की चूडिया, लाख से रगे हुए लकडी के खिलौने तथा पलग के पाये, सोने-चादी के जेवर, ऊट के चमडे के बने हुए सुनहरी काम के तरह तरह के सुन्दर कुप्पे, ऊटों की काठिया, लाल मिट्टी के बर्तन आदि यहा बहुत अच्छे बनाये जाते हैं। बीकानेर शहर मे बाहर से आनेवाली शक्कर से बहुत सुन्दर और स्वच्छ मिस्री तैयार की जाती है, जो बाहर दूर दूर तक भेजी जाती है। सुजानगढ़ में चुनडी की बधाई का काम भी अच्छा होता है।

दस्तकारी

एक समय बीकानेर का बाहरी व्यापार बहुत बढ़ा चढा था और राजगढ़ मे दूर दूर से कारवा (काफिले) आकर ठहरते थे। यहा हासी और हिसार से होती हुई पजाब तथा काश्मीर की वस्तुएं; पूर्वीय प्रदेशों से दिल्ली तथा रेवाडी होकर रेशम, महीन कपडे, नील, चीनी, लोहा और तमाकू, हाडोती और मालवा से अफीम, सिन्ध और मुलतान से गेहू, चावल, रेशम तथा सूखे फल, तथा पाली से मसाले, टिन्, दवाइया, नारियल और हाथीदात व्यापार के लिए आते थे। इनमे से कुछ सामान तो राज्य में ही खप जाता था और शेष उधर से गुजरकर अन्य देशों मे चला जाता था, जिससे राहदारी में राज्य को काफी धन मिलता था। ई० स० की अट्ठारहवीं शताब्दी में कई कारणों से यह व्यापार नष्ट हो गया। अब रेल के खुल जाने, मार्गों के सुरक्षित हो जाने

व्यापार

और राहदारी के नियमो मे परिवर्तन हो जाने से व्यापार में पुन वृद्धि हो गई है। यहा से बाहर जानेवाली वस्तुओ मे ऊन, कबल, दरी, गलीचे, मिस्री, सज्जी, सोडा, शोरा, मुलतानी मिट्टी, चमड़ा, तथा पशुओ मे ऊट, गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी आदि मुख्य हैं। बाहर से आनेवाली वस्तुओं मे पजाब, सिन्ध, आगरा और जयपुर से गल्ला, बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली से कपड़ा, सिन्ध और अमृतसर से चावल, भिवानी, कानपुर, चदौसी और गाजीपुर से चीनी, जयपुर, जोधपुर और सिन्ध से रुई, कोटा और मालवा से अफीम, सिन्ध और जयपुर से तमाकू, बम्बई, कलकत्ता, कराची और पजाब से लोहा तथा अन्य धातुए मुख्य हैं। सब सामान रेल-द्वारा आता जाता है। भिवानी और हिसार के बीच तथा राज्य के उन विभागों में, जहा रेल निकट नही है, ऊट भी माल ढोने के काम में आता है।

राजधानी को छोड़कर व्यापार के मुख्य केन्द्र गगानगर, कर्णपुर, रायसिंहनगर, गजसिंहनगर, विजयनगर, सादूलशहर, सगरिया-मडी, नौखा मडी, भाद्रा, बीदासर, चूरू, डूगरगढ़, नौहर, राजलदेसर, राजगढ़, रतनगढ़, सरदारशहर, सुजानगढ़ और सूरतगढ़ हैं। व्यापार का पेशा बहुधा अग्रवाल, माहेश्वरी और ओसवाल महाजनों, खत्रियों, ब्राह्मणो एव शेख मुसलमानो के हाथ मे है।

त्योहार

यहा हिन्दुओ के त्योहारों मे शील सतमी, अक्षयतृतीया, रक्षाबधन, दशहरा, दिवाली और होली मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त गनगौर और तीज (श्रावणी तथा कजली) स्त्रियो के मुख्य त्योहार हैं। रक्षाबधन विशेषकर ब्राह्मणों का तथा दशहरा क्षत्रियों का त्योहार है। दशहरे के दिन बड़ी धूम धाम के साथ महाराजा की सवारी निकलती है। मुसलमानो के प्रमुख त्योहार, मुहर्रम, दोनों ईदें (ईदुलफितर और ईदुलजुहा) एव शबेबरात हैं।

यहा का सब से प्रसिद्ध मेला प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्लपक्ष के अतिम दिनों में श्रीकोलायतजी मे होता है और पूर्णिमा का दिन मुख्य माना जाता

मेले

है। यहां कपिलेश्वर मुनि का आश्रम माना जाने से इस स्थान का महत्त्व अधिक बढ़ गया है और मेले के दिन हजारों यात्री दूर दूर से यहां आते हैं। उस समय ऊंट, बैल आदि की बिक्री बहुत होती है। श्रावण में शिवबाड़ी और भाद्रपद में देवीकुंड पर भी बड़े मेले लगते हैं, जो राजधानी के निकट हैं। इनके अतिरिक्त कोडमदेसर, जैसुला तालाब, हरसोला तालाब और सुजानदेसर में भी मेले लगते हैं, पर वहां विशेष व्यापार नहीं होता। राजधानी बीकानेर में नागणेचीजी और धूणीनाथ के मेले प्रतिवर्ष लगते हैं। नौहर तहसील मे गोगामेड़ी स्थान में प्रसिद्ध चौहान सिद्ध गोगा की स्मृति में प्रतिवर्ष भाद्रपद वदि ९ को और सूरपुरा तहसील मे मुकाम स्थान में जांभाजी नामक सिद्ध का मेला लगता है, जहां ऊंट-बैल आदि का व्यापार भी होता है।

प्राचीन काल मे चिट्ठी एक स्थान से दूसरे स्थान मे पहुंचाने का कार्य क़ासिद (हलकारा) करते थे। सर्वप्रथम अंग्रेजी डाकखाने चूरू, रतनगढ़ तथा सुजानगढ़ में खुले, जो ई० स० १८७२ में विद्यमान थे। अब तो अनूपगढ़, अनूपशहर, बीकानेर (यहां पर—लालगढ महल, शहर, कचहरी तथा मंडी जकात—चार अलग डाकखाने हैं), बीकासर (मोकलिया), भूकरका, बीदासर, बिग्गा, भाद्रा, भीनासर, विजयनगर, चाहड़वास, छापर, देशणोक, धोलीपाल, श्रीडूंगरगढ, डाभली, गजसिंहपुर, गंगाशहर, गजनेर, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ, हिम्मतसर, जैतपुर, जैतसर, जामसर, केसरीसिंहपुर, कालू, लूणकरणसर, महाजन, मोमासर, नापासर, नौहर, पलाना, पदमपुर, पीलीबंगान, पड़िहारा, रायसिंहनगर, रावतसर, रतननगर, राजलदेसर, रिणी, लालगढ़, सादूलशहर, सूडसर, सूरपुरा, संगरिया, सरदारगढ़, सरदारशहर, सीदमुख, श्रीकर्णपुर, सूरतगढ़, सुजानगढ़, श्रीकोलायतजी, सादूलपुर, रतनगढ़, नरवासी, चूरू, चाक, हिन्दुमलकोट, टीबी और उदैरामसर में भी अंग्रेज़ सरकार के डाकखाने

डाकखाने

स्थापित हो गये हैं, तथा चूरू, दुलमेरा, हडियाल, हनुमानगढ़, पृथ्वीराजपुर एव रामसिंहपुर के रेल्वे स्टेशनों पर भी सरकारी डाकखाने हैं।

तारघर

राजधानी मे तीन तथा रतनगढ़, सरदारशहर, बीदासर, चूरू, नौहर, सुजानगढ़, छापर, श्रीगगानगर, गगाशहर, हनुमानगढ़, रिणी, सादुलपुर और सूरतगढ़ मे एक-एक तारघर हैं। इन स्थानो के अतिरिक्त प्राय प्रत्येक रेल्वे स्टेशन पर भी तारघर बना हुआ है। बीकानेर, रतनगढ़, सरदारशहर, चूरू और सुजानगढ़ मे बेतार के तारघर भी हैं।

टेलीफोन

टेलीफोन सर्वप्रथम ई० स० १६०५ (वि० स० १६६२) मे बीकानेर और गजनेर मे लगाया गया था तथा अब यह गगाशहर में भी लगा दिया गया है।

बिजली

बिजली का प्रवेश राज्य मे पहले पहल महाराजा डूगरसिंह के समय में हुआ। ई० स० १८८६ (वि० स० १६४३) मे उसने पुराने महलों मे बिजली की मशीन लगवाई। फिर तो क्रमश इसका प्रचार बढता ही गया और अब राजधानी तथा कोडमदेसर एव गजनेर के राजमहलों के अतिरिक्त रतनगढ़, चूरु, सरदारशहर, सुजानगढ़, छापर, बीदासर, मोमासर, राजलदेसर, डूगरगढ़, नापासर आदि में बिजली का प्रचार है, जो राजधानी के पावरहाउस से पहुचाई जाती है। बिजली आ जाने से अब बीकानेर में बहुत से कुओं का पानी भी इसी की सहायता से निकाला जाता है और प्रेस तथा रेल्वे वर्कशॉप आदि भी इसी से चलते है।

शिक्षा

पहले यहा राज्य की ओर से शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। खानगी पाठशालाओं में प्रारम्भिक शिक्षा और कुछ हिसाब किताब की पढ़ाई होती थी। सस्कृत पढ़नेवाले पडितों के यहा और फारसी तथा उर्दू पढ़नेवाले विद्यार्थी मौलवियों के घरू मकतबो में पढ़ते थे। राज्य की तरफ से महाराजा डूगरसिंह के

राजत्वकाल मे ई० स० १८७२ (वि० स० १६२६) मे सर्वप्रथम एक स्कूल खोला गया, जिसमे हिन्दी, सस्कृत, फारसी और देशी तरीके के हिसाब की पढाई होती थी और विद्यार्थियो की सख्या २७५ थी। ई० स० १८८२ में उर्दू की और ई० स० १८८५ मे पहले पहल अग्रेजी की पढ़ाई भी इसी स्कूल मे आरभ हुई। तीन वर्ष बाद राजधानी मे एक स्कूल लड़कियों के लिए खोला गया। ई० स० १८६१-६२ (वि० स० १६४८) में राज्य द्वारा सचालित स्कूलों की सख्या १२ थी, जिनमे ६६४ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। ई० स० १८६३ मे राज्य के सरदारो के लडकों की पढ़ाई के लिए कर्नल सी० के० एम० वाल्टर के नाम पर 'वाल्टर नोबल्स स्कूल' की स्थापना हुई। अब इसमे शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियो की सख्या पहले से अधिक हो गई है, जिससे यह हाईस्कूल कर दिया गया है। महाराजा डूगरसिंह के नाम पर बीकानेर मे 'डूगरकालेज' है, जहां बी० ए० तक की पढ़ाई होती है। कुछ वर्ष पूर्व ही इसके लिए एक भव्य भवन निर्माण करवा दिया गया है। इनके अतिरिक्त राजधानी मे 'सादूल हाईस्कूल' के सिवाय और दूसरे दो हाईस्कूल भी हैं। चूरू और रतनगढ में भी एक-एक हाईस्कूल उन विद्यार्थियों की सुविधा के लिए, जो राजधानी मे पढने नही आ सकते, खोला गया है। प्राय प्रत्येक बड़े शहर में ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल हैं, जिनकी सख्या इस समय ६० से अधिक है। राजधानी मे 'लेडी एल्गिन गर्ल्स स्कूल' लडकियों का प्रमुख स्कूल है और प्राय हर बड़े शहर मे लडकियों के लिए पाठशाला विद्यमान है। राजपूत बालिकाओं की शिक्षा के लिए 'महाराणी भटि-यानीजी नोबल्स गर्ल्स स्कूल' है। ऐसी सस्था राजपूताने में अब तक कहीं नही है। लार्ड विलिंग्डन के नाम पर राजधानी मे टेक्निकल इन्स्टीट्यूट (कला भवन) बनाया गया है, जिससे भविष्य मे बेरोजगारी का प्रश्न हल होकर जीविका निर्वाह का साधन सरलता से हो जायगा। सस्कृत शिक्षा के लिए राज्य की ओर से 'गगा सस्कृत पाठशाला' है, जिसमें कई विषयों की शिक्षा दी जाती है। परलोकवासी श्रीमान् किंग जॉर्ज की

रजत जयन्ती (Silver Jubilee) के उपलक्ष्य मे राज्य की ओर से राज धानी में एक बृहत् पुस्तकालय तथा वाचनालय खोला गया है, जिससे सर्वसाधारण को ज्ञानशक्ति बढाने का पूर्ण साधन हो गया है। राज्य के प्रसिद्ध नगर चूरू, रतनगढ़ आदि मे भी पुस्तकालय स्थापित हैं, जिनसे जनता का लाभ होता है।

बीकानेर राज्य में वहा के निवासियों को शिक्षा नि शुल्क दी जाती है।

महाराजा साहब का शिक्षा विभाग की वृद्धि मे बडा अनुराग है, जिससे इन्होंने विद्यार्थियों की रुचि पढाई मे प्रवृत्त कराने के लिए कितनी ही छात्रवृत्तिया नियत कर दी हैं। ई० स० १९२८-२९ (वि० स० १९८५) मे प्रारभिक शिक्षा का प्रचार करने के लिए वहा 'अनिवार्य प्रारभिक शिक्षा' नामक कानून का निर्माण हो गया है।

पहिले यहा प्राचीन पद्धति के वैद्यों तथा हकीमों के इलाज का ही प्रचार था, किंतु अब डाक्टरी इलाज का प्रचार बढ गया है। ई० स० १८४८ (वि० स० १९०५) म महाराजा रत्नसिंह के कुवर सरदारसिंह के स्वास्थ्य का निरीक्षण करने के लिए कोलरिज नामक प्रसिद्ध अग्रेज डाक्टर नियुक्त हुआ। पहले लोग अग्रेजी औषधिया लेने मे हिचकते थे, पर धीरे धीरे यह ग्लानि मिटती गई। ई० स० १८७० (वि० स० १९२७) में बीकानेर नगर में पहली बार अग्रेज़ी ढग से लोगों का इलाज करने के निमित्त एक अस्पताल खोला गया। अग्रेजी दवाइयों के इस्तेमाल मे वृद्धि होने के साथ ही अस्पतालो की सख्या में भी क्रमश उन्नति होती गई। इस समय राजधानी के अतिरिक्त चूरू और गगानगर में अस्पताल तथा रिणी, सुजानगढ़, सूरतगढ़, भादा, नौहर, राजगढ, रतनगढ, सरदारशहर, डूगरगढ़, हनुमानगढ, गगाशहर, देशणोक, अनूपगढ़, विजयनगर, छापर, गजनेर, हिम्मतनगर, कर्णपुर, लूणकरणसर, नापासर, नोखा, पदमपुर, पलाना, राजलदेसर, रायसिंहनगर एव सगरिया में डिस्पेन्सरिया हैं। इनके अतिरिक्त रेल्वे के कर्मचारियों के लिए

अस्पताल

राजधानी मे 'रेल्वे वर्कशॉप डिस्पेन्सरी' तथा चूरू और हनुमानगढ़ में भी शफाखाने हैं। गावो के लोगो मे औषधिया वितरण करने के लिए हनु मानगढ़ मे ऐसे डाक्टरो की नियुक्ति की गई है, जो हनुमानगढ़ से सूरतगढ तथा हनुमानगढ़ से सादुलपुर तक रेल मे सफर करके प्रत्येक छोटे स्टेशन पर रुककर गावो में जावे और रोगियो को देखकर उन्हें उचित औषधि दें। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को समुन्नत बनाने के लिए पाचू, फेफाना और रतननगर में आयुर्वेद-औषधालय खोले गये हैं।

राजधानी बीकानेर में पुरुषो और स्त्रियों के लिए पहले पृथक् पृथक् अस्पताल थे, जिनमे चीर फाड के सब प्रकार के आधुनिक औजारो के अतिरिक्त 'एक्सरे' यत्र भी लगाया गया था, किंतु स्थान की सकीर्णता के कारण, वे दोनो पर्याप्त नही जान पडे। इसलिए राजधानी मे नगर के बाहर खुले मैदान में अब स्वर्गीय महाराजकुमार विजयसिंह की स्मृति मे एक विशाल अस्पताल बनाया गया है, जिसमे पुरुष और स्त्रियो की चिकित्सा के पृथक् पृथक् बिभाग हैं। वहा चीर फाड के कई प्रकार के औजार रक्खे गये हैं तथा शरीर के भीतरी भाग की परीक्षा के लिए 'एक्सरे' यत्र भी लगा दिया गया है और कई रोगों का इलाज बिजली से भी होता है। बीमारो के रहने के लिए वहा पर्याप्त स्थान है तथा देहात से आनेवाले रोगियो के साथियो के ठहरने के लिए पास ही एक अच्छी धर्मशाला भी बनवा दी गई है। राजधानी मे सेना के लिए सादूल मिलिटरी हॉस्पिटल, लालगढ हॉस्पिटल तथा नगर निवासियों की सुविधा के लिए नगर के भिन्न भिन्न भागो मे तीन और शफाखाने हैं। कई स्थलो मे जहा शफाखानों की आवश्यकता है, वहा भी अब वे खोले जा रहे हैं।

शासनप्रबध की सुविधा के लिए राज्य के छ विभाग किये गये हैं, जिन्हें जिले अथवा निजामत कहते हैं। प्रत्यक निजामत म एक हाकिम रहता है, जिसे नाजिम कहते हैं। इन विभागो के उपविभागों में १६

जिले

तहसीले और ४ मातहत तहसीले हैं। तहसील का हाकिम तहसीलदार और मातहत तहसील का नायब तहसीलदार कहलाता है। इनको दीवानी, फौजदारी तथा माल के मुक़द्दमे तय करने के नियमित अधिकार प्राप्त हैं। इनके फैसलो की अपील नाजिम की अदालत में और उसके किये हुए मुकदमो की सुनवाई हाई कोर्ट मे होती है। प्राय सारी भूमि का बन्दोबस्त हो गया है और उसके अनुसार लगान (जमीजोत) की रकम स्थिर कर दी गई है। यहा भूमि का लगान इतना कम है कि लोग तीस, चालीस या इससे भी अधिक बीघे भूमि आसानी से जोत लेत हैं। इसमे से कुछ मे तो गल्ला बोदिया जाता है, जिसकी एक फसल की पैदावार तीन चार वर्ष तक काम देती है। पड़त भूमि मे घास अच्छी हो जाती है, जिससे पशु पालन में सुविधा रहती है।

राज्य की विभिन्न निजामतें नीचे लिखे अनुसार हैं—

सदर (बीकानेर) निजामत—यह राज्य के लगभग दक्षिण पश्चिमी भाग में है। इसमे बीकानेर, लूणकरणसर और सूरपुरा की तहसीले हैं। इसका मुख्य स्थान बीकानेर है तथा इसमे ५१० गाव हैं।

राजगढ़ निजामत—यह राज्य के पूर्व म है और इसके अन्तर्गत भाद्रा, चूरू, नोहर, राजगढ़ और रिणी की तहसीले हैं। इसका मुख्य स्थान राज गढ़ है तथा इसमे ६३२ गाव हैं।

सुजानगढ़ निजामत—यह राज्य के दक्षिण पूर्वी भाग मे है और इसके अन्तर्गत सरदारशहर, सुजानगढ़, रतनगढ़ तथा डूगरगढ़ तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान सुजानगढ़ है और इसमे ५०६ गाव हैं।

सूरतगढ़ निजामत—इसके अन्तर्गत राज्य के उत्तर पूर्वी हिस्से की ओर हनुमानगढ़ और सूरतगढ़ की तहसीले हैं। इसका मुख्य स्थान सूरतगढ़ है और गावो की सख्या २७७ है।

गगानगर निजामत—गगानहर के राज्य मे आ जाने के बाद से उधर की आबादी बहुत बढ़ जाने पर वहा के प्रबन्ध के सुभीते के लिए गगानगर निजामत अलग कर दी गई है। इसमे गगानगर, कर्णपुर और

पद्मपुर की तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान गगानगर है और गावों की सख्या ५३४ है।

रायसिंहनगर निजामत—माल विभाग का कार्य बढ़जाने के कारण गगानगर निजामत से रायसिंहनगर तहसील और सूरतगढ़ निजामत से अनूपगढ़ तहसील पृथक् कर यह निजामत बना दी गई है, जिसका मुख्य स्थान रायसिंहनगर है और गावों की सख्या २६८ है।

शासन प्रबध की सुव्यवस्था और प्रजा-हितकारी कानूनों की वृद्धि के लिए वर्तमान महाराजा साहब की इच्छानुसार नवम्बर ई० स० १९१३ (वि० स० १९७०) में 'रिप्रेजेन्टेटिव असेम्बली' (प्रतिनिधि सभा) की स्थापना की गई। उस समय इसके सदस्यों की सख्या ३५ थी। ई० स० १९१७ में इसका नाम बदलकर 'लेजिस्लेटिव असेम्बली' (व्यवस्थापक सभा) कर दिया गया। इसके सदस्यों की सख्या ४५ है, जिनमे से २५ सरकारी (१४ ऑफिशियल और ११ नॉन ऑफिशियल) और २० गैर-सरकारी हैं। सरकारी सदस्यों में ५ एक्स ऑफिशियो और २० राज्य-द्वारा चुनिंदा व्यक्ति होते हैं। इसके तीन प्रकार के कार्य हैं—क़ानून बनाना, निर्णय करना तथा सवाल पूछना। वार्षिक बजट इस सभा के समक्ष अर्थ मत्री द्वारा पेश किया जाता है।

लेजिस्लेटिव असेम्बली

व्यवस्थापक सभा की स्थापना के चार वर्ष पीछे ई० स० १९२१ (वि० सं० १९७८) में वहा एक ज़मींदार सभा की स्थापना हुई। ई० स० १९२९ (वि० स० १९८६) में एक के स्थान पर दो जमींदार सभायें कर दी गई और इन्हें सदस्य चुन कर व्यवस्थापक सभा में भेजने का स्वत्व प्रदान किया गया। ज़मींदार सभा की स्थापना से महाराजा साहब का किसानों से निकट का सम्बन्ध हो गया है, जिससे उनकी आवश्यकताओं की ओर विशेष रूप से ध्यान देने में सुविधा हो गई है।

जमींदार सभा

प्रजा तन्त्र शासन का प्रचार करने के लिए महाराजा साहब ने

बड़े बड़े नगरों मे म्यूनीसिपैलिटिया स्थापित की हैं, जिनकी व्यवस्था बहुधा प्रजा द्वारा निर्वाचित सदस्य करते हैं। अब तक बीकानेर, सुजानगढ, रतनगढ़, सरदार शहर, चूरू, डूगरगढ़, राजलदेसर, राजगढ, रिणी, नौहर, भाद्रा, रतननगर, सूरतगढ़, हनुमानगढ, सगरिया, गगानगर, छापर, रायसिंहनगर और करणीपुर में म्यूनिसिपैलिटिया खुल गई हैं, जो प्रजा के हाथ मे हैं। कुछ म्यूनीसिपै-लिटियों ने तो अपनी सीमा मे प्रारभिक शिक्षा भी अनिवार्य कर दी है।

म्यूनीसिपैलिटा

गावों में पचायतो की भी व्यवस्था है, जो गावो के झगड़ों आदि का फैसला करती हैं। ई० स० १९२८ (वि० स० १९८५) मे एक क़ानून पास करके इन्हें दिवानी और फौजदारी के कई अधिकार दे दिये गये हैं तथा इनके अधिकार का क्षेत्र भी बढा दिया गया है। अब तक सदर, सूरपुरा, लूणकरणसर, सुजानगढ़, डूगरगढ़, सरदारशहर, चूरू, नौहर, भाद्रा, रिणी, राजगढ़, हनुमानगढ़, सूरतगढ और गगानगर की तहसीलों में ग्राम पचायतें क़ायम हो गई हैं।

पचायतें

गावों में प्रजातत्र शासन की शिक्षा देने और स्थानीय मामलों की स्वय देख रेख करने की योग्यता उत्पन्न करने के प्रयोजन से जगह जगह जिला सभाओं (District Board) की स्थापना के लिए एक कानून हाल ही में पास किया गया है, जिसके अनुसार गगानगर मे जिला सभा की स्थापना भी हो गई है।

जिलासभायें

इमारती काम और सडकों आदि के लिए महकमा तामीर (Public Works Department) स्थापित है। अब तक पक्की सड़कें, महकमा खास का भवन, डूगर मेमोरियल कॉलेज और होस्टल, वाल्टर नोबत्स हाई स्कूल, कई अस्पताल, विक्टोरिया मेमोरियल क्लब आदि कई भव्य इमारतें बनाने के अतिरिक्त इस महकमे के द्वारा कई मनोहर उद्यानों का भी राज्य में निर्माण हुआ

महकमा तामीर

उससे अधिक अवधि की कैद की सजा की अपील महाराजा साहब के समक्ष की जा सकती है। बडे मुकदमो मे जूरी द्वारा न्याय करने की प्रथा भी प्रचलित है।

व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly) ने एक लीगल प्रैक्टिशनर्स एक्ट (Legal Practitioners Act) बना दिया है, जिसके अनुसार राज्य की अदालतों मे वकालत प्रारंभ करनेवालों को एक नियत परीक्षा पास करनी पड़ती है। वकीलों की सुविधा के लिए कानून की शिक्षा देनेवाले एक व्यक्ति की नियुक्ति भी कर दी गई है। राज्य मे वहा के बने हुए क़ानून चलते हैं, जिनका ज्ञान प्राप्त करना वकीलो के लिए आवश्यक है।

राज्य की भूमि तीन भागो–खालसा, जागीर और शासन (धर्मादा)– में बटी हुई है। राज्य के कुल २७४२ गावो और १५ नगरों मे से १२५८ गाव तथा १४ नगर खालसे में हैं। जागीर में १३०६ गाव एव १ शहर है। धर्मादा और माफी मे दिये हुए १७५ गाव हैं। खालसा गावो की भूमि राज्य की मानी जाती है और जब तक किसान बराबर निश्चित लगान अदा करता रहता है, तब तक वह अपनी ज़मीन का अधिकारी रहता है। जागीरें बहुधा जागीरदारों के पूर्वजो को उनकी सेवाओ के उपलक्ष्य में अथवा राजाओं के कुटुम्बियों को मिली हुई हैं। इनम से कुछ से तो ख़िराज नहीं लिया जाता, शेष से प्रतिवर्ष बधी हुई रकम ली जाती है। बिना ख़िराज की जागीरें राजकुटुबियो[1] और परसगियो (अन्यवशों के सरदारो)[2] तथा उन सरदारो की है, जिनका, महाराजा साहब ने ख़ास सेवाओ के कारण, ख़िराज माफ कर दिया है। महाराजाओ के सिंहासनारूढ़ होने के समय सरदारों को नियत रक़म नजर के रूप मे देनी पड़ती है, जिसे 'न्योता'

खालसा, जागीर और शासन

---

(१) यहा राजकुटुम्बियों को 'राजवी' कहते हैं, जो महाराजा साहब के निकट के रिश्तेदार हैं। उनका वर्णन आगे सरदारों के इतिहास मे किया जायगा।

(२) 'परसगी' वे राजपूत हैं, जिनके साथ राठोड़ो के विवाह सम्बन्ध होते हैं।

कहते हैं । इसके अतिरिक्त उनसे विवाह अथवा युवराज के जन्म आदि अवसरों पर भी कुछ रकम न्योते की ली जाती है । धर्मादे मे दी गई भूमि, जो मदिरो के प्रबन्ध के लिए अथवा चारणो, ब्राह्मणो आदि को दान मे दी गई है, 'शासन' कहलाती है । इनसे राज्य मे कोई रक़म नहीं ली जाती और न इनसे किसी प्रकार की सेवा ली जाती है । कुछ ऐसे भोमिये राजपूत भी हैं, जिनके पास अपनी जमींदारी है। ये राज्य को लगान नही देते, पर इन्हे कुछ अन्य कर देने पडते हैं।

जागीरदार (जिन्हे सरदार तथा उमराव भी कहते हैं) बहुधा राज्य के सरदार हैं । इनके दो विभाग—ताजीमी और गैरताजीमी—हैं । ताजीमी सरदारो की सख्या १३० है, जिनमे से कई सरदार राज्य के बड़े-बडे ओहदों पर भी नियुक्त हैं । इनमे से चार—महाजन, रावतसर, भूकरका और बीदासरवाले—अन्य ताजीमी सरदारो से ऊचे दर्जे के हैं और 'सरायत' कहलाते हैं। पहले सब सरदार घोडो, ऊटो अथवा पैदल सैनिको के साथ राज्य की सेवा करते थे, परन्तु महाराजा डूगरसिंह के समय से उसके बदले नकद रकम निश्चित हो गई है । बहुधा यह रकम जागीरों की आय की एक तिहाई निश्चित की गई है । सरायतों को भी नजराने, न्योते आदि की रकमें देनी पडती हैं। वे ठिकाने के मालिक होने के समय नजराने मे रेख के बराबर रकम और अवसर विशेष पर कुछ न्योते की रकम देते हैं। इसके बदले मे विवाह अथवा गमी के अवसरो पर राज्य की ओर से सरदारो को उचित सहायता दी जाती है ।

सेना

इस राज्य मे कवायदी सेना की सख्या १७६७ है, जिसमे २३६ गोलन्दाज और ४६५ ऊट सेना के सैनिक भी शामिल हैं। डूगरलैन्सर्स की सख्या, जिनमे महाराजा साहब के अगरक्षक भी शामिल हैं, ३४२ है तथा सादूल लाइट इन्फैन्ट्री में ६५४ सैनिक हैं। इनके अतिरिक्त मोटर मशीनगन सेक्शन में १०० सैनिक हैं। राज्य मे पुलिस की सख्या १७१५ है।

वर्तमान महाराजा साहब के सिंहासनारूढ़ होने के समय राज्य की

आय अनुमान सवा पन्द्रह लाख रुपये थी, जो इनको अधिकार मिलने के समय बीस लाख रुपये तक पहुंच गई और अब बढ़कर एक करोड़ तेतीस लाख के लगभग हो गई है। आमदनी के मुख्य सीगे—ज़मीन का हासिल, जागीरदारों का ख़िराज, सरकार से मिलनेवाले नमक के रुपये, रेल्वे की आमद, नहरों की आमद, पलाना के कोयले की खान की आमद, बिजली के कारखाने की आमद, आबकारी, चुंगी (दाण), स्टांप, कोर्ट फीस, दंड आदि—हैं। राज्य का व्यय लगभग एक करोड़ रुपये है। उसके मुख्य सीगे—सेना, पुलिस, हाथख़र्च, महलों का ख़र्च, अदालती ख़र्च, अस्तबल का ख़र्च, रेल, बिजली, नहरें सड़कें तथा इमारतें आदि—हैं।

आय व्यय

बीकानेर राज्य में पहले बिना लेखवाले चिह्नांकित (Punchmarked) सिक्के चलते थे। फिर यौधेयों के सिक्कों का प्रचार हुआ। उनके पीछे गुप्तों के, हूणों के चलाये हुए गधिये, प्रतिहारों में से भोजदेव (आदिवराह) के, चौहानों में से अजयदेव और उसकी राणी सोमलदेवी के तथा सोमेश्वर और अंतिम प्रसिद्ध चौहान पृथ्वीराज के सिक्के चलते रहे। मुसलमानों का राज्य भारतवर्ष में स्थापित होने के बाद दिल्ली के सुलतानों और बादशाहों के सिक्कों का यहां भी चलन हुआ। मुगल साम्राज्य के निर्बल होने पर राजपूताने के राजाओं ने बादशाह की आज्ञा से अपने अपने राज्यों में टकसालें खोलीं, परन्तु सिक्के बादशाह के नामवाले फ़ारसी लिपि के लेख सहित ही बनते रहे। सर्वप्रथम महाराजा गजसिंह ने बादशाह आलमगीर दूसरे (ई० स० १७५४-१७५६= वि० सं० १८११-१८१६) से अपने राज्य में सिक्के बनाने की सनद प्राप्त की। ई० स० १८५६ (वि० सं० १९१६) तक के सिक्कों पर केवल बादशाह शाह आलम (दूसरा) का नाम मिलता है, जो ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१६) में गद्दी पर बैठा था। इससे यह कहा जा सकता है कि सनद आलमगीर दूसरे के समय में प्राप्त हो जाने पर भी सिक्के शाह आलम के समय में बीकानेर में बनने शुरू हुए हों और दूसरे बादशाहों के गद्दी बैठने पर भी

सिक्के

यहां के सिक्कों पर उसी (शाह आलम) का नाम चलता रहा। ये सिक्के राज्य की टकसाल मे ही बनते थे। बीकानेर राज्य की टकसाल में पहले सोने की मुहरें भी बनती थीं[1]। जो मुहरें हमारे देखने में आईं, उनमें से कुछ का उल्लेख यहां किया जाता है—

कप्तान ए० डबल्यू० टी० वेब को सीकर के खजाने से दो मुहरें महाराजा रत्नसिंह के समय की मिलीं, जिनपर वही लेख और चिह्न हैं, जो उक्त महाराजा के चांदी के सिक्कों पर हैं।

राज्य के बड़े कारखाने के तोषाखाने से दो मुहरें महाराजा सरदारसिंह के समय की देखने मे आईं, जिनमे चांदी के सिक्कों के समान ही लेख हैं।

एक मुहर महाराजा डूंगरसिंह के समय की बीकानेर राज्य के बड़े कारखाने के तोषाखाने में देखने मे आई, जिसपर लेख उसके समय के रुपयों के अनुसार ही है। उसकी दूसरी तरफ 'जर्ब श्री बीकानेर' खुदा है। उसम पताका, त्रिशूल, छत्र, चवर और किरणिया भी हैं[2]।

---

(१) कप्तान डबल्यू० डबल्यू० वेब ने अपनी पुस्तक 'करेंसीज ऑव् दि हिन्दू स्टेट्स ऑव् राजपूताना' के पृष्ठ ४७ में लिखा है— बीकानेर राज्य की टकसाल में पहले कभी सोने का सिक्का नहीं बना', जो भ्रम ही है। उसके पास जिस पुरुष ने बीकानेर राज्य के चांदी के सिक्के भेजे उसको सोने की मुहरें नहीं मिलीं इसलिए उक्त कप्तान ने सोने के सिक्के न होने की बात लिख दी। यह भी निश्चित है कि उस (वेब) ने बीकानेर जाकर सिक्कों की छानबीन नहीं की, किन्तु रायबहादुर सोढी हुकुमसिंह लिखित वृत्तांत के आधार पर (जिसको उस समय ये मुहरें प्राप्त नहीं हुई थीं) बीकानेर में सोने की मुहरें न बनने का हाल लिख दिया, किन्तु खास उसी कप्तान वेब के पुत्र ए० डबल्यू० टी० वेब की सीकर से भेजी हुई दो सोने की मुहरों एवं बीकानेर के तोषाखाने से प्राप्त मुहरों के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि यहां सोने की मुहरें बनती थीं।

(२) यह मुहर आकृति में उक्त महाराजा के चांदी के सिक्कों से कुछ छोटी है, परन्तु एक तरफ के छोटे दायरे के अन्दर का लेख 'औरग आराय हिन्द व इग्लिस्तान क्वीन विक्टोरिया' ऐसे सुन्दर अक्षरों में है कि उसको देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है।

राज्य के खजाने मे ऐसी मुहरे बहुत थी, परतु ऐसा सुना जाता है कि वर्तमान महाराजा साहब की बाल्यावस्था के समय रीजेन्सी कौंसिल के शासन मे उन्हे गलवाकर सोना बनवा दिया गया।

साधारण रुपयों के साथ साथ यहा 'नजर' के लिए रुपये अलग बनाये जाते थे। इस राज्य के चादी के सिक्के राजपूताने के अच्छे सिक्कों में गिने जाते हैं। 'नजर' के सिक्के अधिक सुन्दर और पूरे वजन के होते थे तथा आकार में बडे होने के कारण उनपर ठप्पा पूरा आ जाता था। अन्य सिक्को के सम्बन्ध में इतनी सावधानी नहीं रक्खी जाती थी और आकार मे कुछ छोटे होने के कारण उनपर कभी कभी पूरा ठप्पा भी नहीं आता था। पहले तो केवल रुपया ही चादी का बनता था, परन्तु महाराजा सरदारसिंह और डूगरसिंह के समय मे अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी भी चादी की बनने लगी।

महाराजा गजसिंह के समय के नजर के रुपयों के एक ओर 'सिक्कह मुबारक साहब किरा सानी शाह आलम बादशाह गाजी' और दूसरी ओर 'सन् ११२१ जुलूस मैमनत मानूस' लेख फारसी मे है। साधारण सिक्कों पर एक ओर केवल 'सिक्का मुबारक बादशाह गाजी आलमशाह' और दूसरी ओर 'सन् जुलूस मैमनत मानूस' लिखा मिलता है। उस(गजसिंह)का चिह्न पताका था, पर किसी किसी सिक्के में त्रिशूल भी मिलता है। महाराजा सूरतसिंह के सिक्को पर भी क्रमश ऊपर जैसे ही लेख मिलते हैं। उसका चिह्न त्रिशूल था परतु किसी किसी सिक्के पर पताका का चिह्न भी मिलता है। महाराजा रत्नसिंह का चिह्न किरणिया था, लेकिन उसके सिक्को पर ऊपर जैसा ही लेख और कभी कभी किरणिया के साथ झडे का चिह्न भी मिलता है। महाराजा सरदारसिंह के सिपाही विद्रोह से पहले के सिक्कों पर एक ओर केवल 'मुबारक़ बादशाह गाजी आलम' और सन् तथा दूसरी ओर पूर्व जैसा ही लेख है। यहा यह कह देना आवश्यक है कि ग़दर के पूर्व के सभी सिक्कों पर हि० स० तथा बादशाहों के जुलूसी सनों (राज्यवर्षों) के अक अस्पष्ट या ग़लत लगे हैं। उसके ग़दर के बाद के सिक्कों पर एक तरफ़

'औरंग आराय हिन्द व इंग्लिस्तान क्वीन विक्टोरिया १८५६' तथा दूसरी तरफ 'जर्ब श्री बीकानेर १६१६' लेख फारसी लिपि मे हैं। उसका चिह्न छत्र था, पर उसके सिक्को पर ध्वजा, त्रिशूल, छत्र और किरणिया के चिह्न एक साथ भी मिलते हैं। महाराजा डूगरसिंह के सिक्को पर भी महाराजा सरदारसिंह के सिक्को जैसे ही लेख हैं। उसका चिह्न चॅवर था, पर उसके सिक्को पर उपर्युक्त सभी चिह्न अंकित मिलते हैं। महाराजा गगासिंहजी के पहले के सिक्को पर भी वही लेख है, जो महाराजा डूगरसिंह के सिक्को पर था, परन्तु उनपर उनका एक चिह्न मोरछल अधिक मिलता है। ई० स० १८६३ मे अंग्रेज सरकार के साथ बीकानेर राज्य का अंग्रेजी टकसाल से रुपये बनवाने के सम्बन्ध मे एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार अंग्रेजी राज्य में प्रचलित रुपयो जैसे रुपये ही बीकानेर राज्य के लिए भी बने, जिनके एक तरफ सम्राज्ञी विक्टोरिया का चेहरा और अंग्रेजी अक्षरों मे 'विक्टोरिया एम्प्रेस' तथा दूसरी तरफ बीच में ऊपर नीचे क्रमश नागरी और उर्दू लिपि मे 'महाराजा गगासिंह बहादुर' लिखा है। उर्दू लिपि मे सन् विशेष दिया है। किनारे के पास ऊपर 'वन रुपी' (One Rupee) और नीचे 'बीकानेर स्टेट' अंग्रेजी म है तथा मध्य में दोनों ओर किनारों के निकट एक एक मोरछल भी बना है। ई० स० १८६५ में तांबे के सिक्के—पाव आना और आधा पैसा (अधेला)—अंग्रेजी राज्य के जैसे ही बीकानेर राज्य के लिए भी बने, परन्तु उनमे दूसरी तरफ किनारे पर 'बीकानेर स्टेट' अंग्रेजी में है और मध्य मे दोनो ओर किनारे पर एक एक मोरछल बना है। ये सिक्के भी अंग्रेजी सिक्को के साथ ही चलते रहे, पर अब इनका बनना बद हो गया है और यहा अंग्रेजी सिक्को (कल्दार) का ही चलन है।

इस राज्य को अंग्रेज सरकार की तरफ से १७ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है। महाराजा साहब की जाती और स्थानीय तोपो की सलामी की सख्या १६ है। ये सम्मान वर्तमान महाराजा साहब को क्रमश ई० स० १६१८ और

तोपों की सलामी

० सं० १९७५ और १९७८) के आरंभ में प्राप्त हुए थे।

राज्य में प्राचीन एवं प्रसिद्ध स्थान बहुत हैं, जिनमें से कुछ
ासिद्ध स्थान का वर्णन नीचे किया जाता है—

ानेर—राज्य का मुख्य नगर 'बीकानेर' राज्य के दक्षिण पश्चिमी
छ ऊंची भूमि पर समुद्र की सतह से ७३६ फुट की ऊंचाई
आ है। किसी किसी स्थान से देखने पर यह नगर बहुत भव्य
र दिखलाई पड़ता है। मॉन्स्टुअर्ट एल्फिन्स्टन के साथियों को,
१८०८ (वि० सं० १८६५) में बीकानेर आये थे, इस नगर को
निर्णय करना कठिन हो गया था कि दिल्ली और बीकानेर में
ाक विस्तृत है। नगर के चारों ओर शहरपनाह है, जो घेरे में
ील है और पत्थर की बनी है। इसकी चौड़ाई ६ फुट और
धेक से अधिक तीस फुट है। इसमें पांच दरवाजे हैं, जिनके
कोट, जस्सूसर, नत्थूसर, सीतला और गोगा हैं तथा आठ
भी बनी हैं। शहर-पनाह का उत्तरी भाग वि० सं० १९५६ (ई०
१९००) में वर्तमान महाराजा साहब ने नया बनवा दिया है।
नगर आबादी की दृष्टि से राजपूताने में चौथा गिना जाता है
ो ढंग का बसा हुआ है। ई० सं० १९३१ (वि० सं० १९८७)
ाणना के अनुसार यहां की आबादी ८५९२७ थी। नगर के
श सी भव्य इमारतें हैं, जो बहुधा लाल पत्थर की बनी हैं तथा
ाई का उत्कृष्ट काम है। नगर के मध्य में एक जैन मंदिर है,
फट से पांच मार्ग निकले हैं, जो अन्य सड़कों से मिलते हुए
के किसी एक दरवाजे से जा मिलते हैं। कोट दरवाजे के बाहर
मतानुयायी लच्छीराम का बनवाया हुआ 'अलखसागर' नाम का
प्रा है, जो बीकानेर के सब कुओं में अच्छा गिना जाता है।
की संख्या १४ है, जो बहुधा बहुत गहरे हैं। उनमें से अधिकांश
ा सुस्वादु और पीने के योग्य है। महाराजा अनूपसिंह का
ुआ 'अनोपसागर' (चौतीना) कुआ भी उल्लेखनीय है। नगर
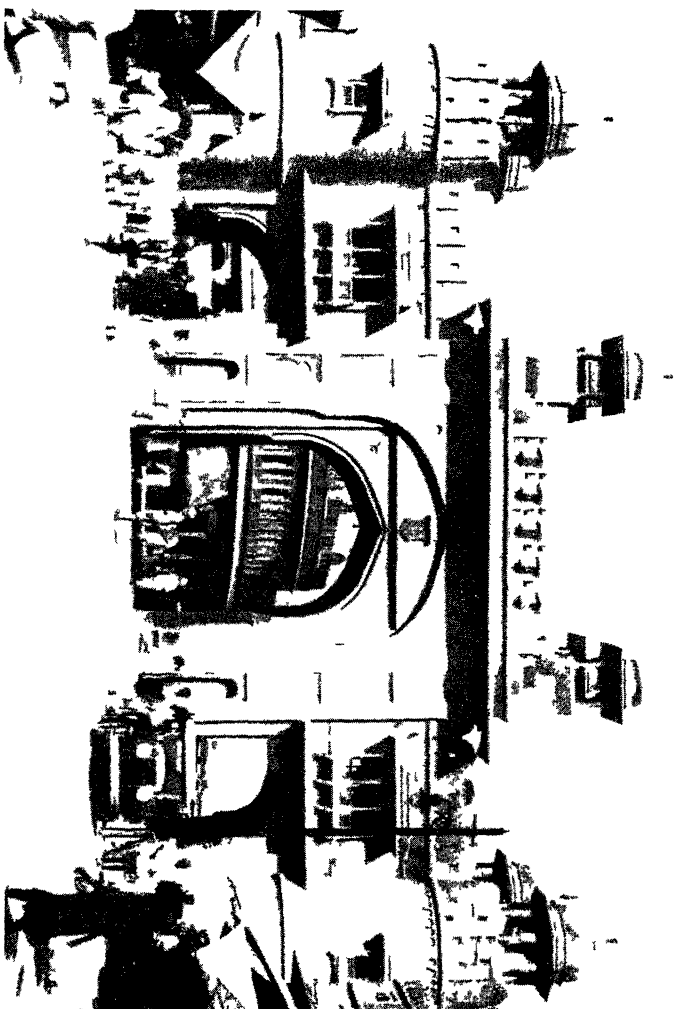
कोट-दरवाजा, बीकानेर
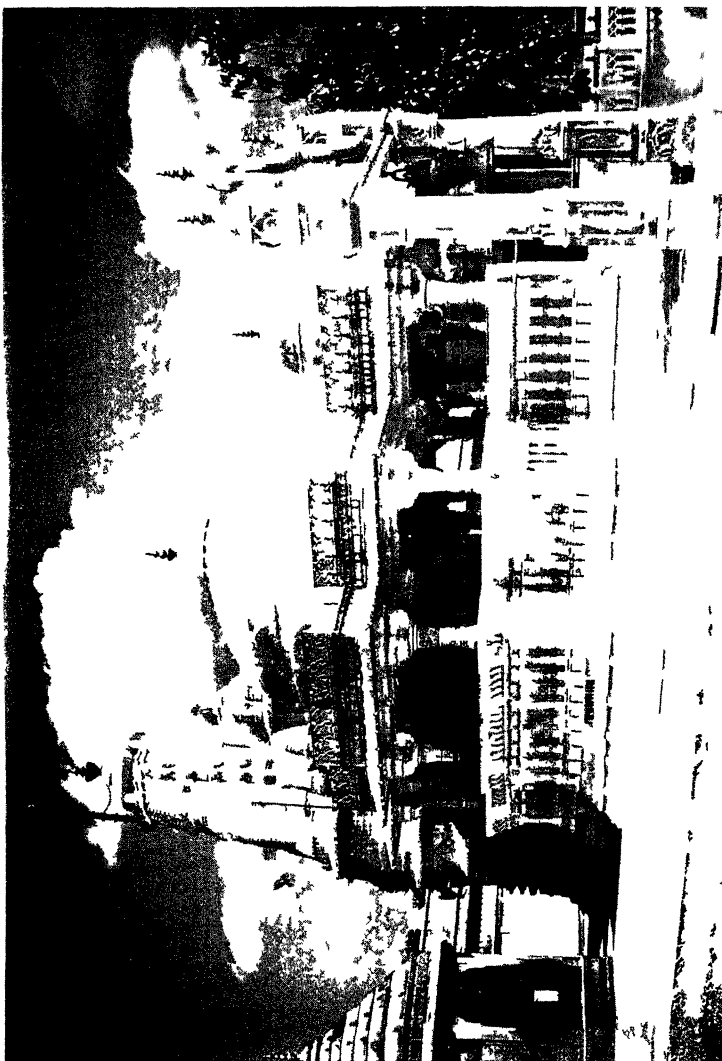
के बाहर के तालाबो मे महाराजा सूरसिंह का बनवाया हुआ 'सूरसागर' (पुराने किले के निकट) सब से अच्छा माना जाता है और इसमे छ सात मास तक जल भरा रहता है।

यहा के जैन मदिरो मे भाडासर का मदिर बहुत प्राचीन गिना जाता है। कहते हैं कि इसे भाडा नाम के एक ओसवाल महाजन ने वि० स० १४६८ (ई० स० १४११) के लगभग बनवाया था। यह बहुत ऊचा है, जिससे इसके ऊपर चढ जाने से सारे नगर का दृश्य बडा मनोहर दीख पडता है। इसके बाद नेमीनाथ के मदिर का नाम लिया जाता है, जो भाडा के भाई का बनवाया हुआ प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त और भी कई जैन मदिर हैं, पर वे उतने महत्वपूर्ण नही हैं। यहा के जैन उपासरो में सस्कृत आदि की प्राचीन पुस्तकों का बडा अच्छा सग्रह है, जो अधिकतर जैन धर्म से सबध रखती हैं।

वैष्णव मदिरों में लक्ष्मीनारायणजी का मदिर प्रमुख गिना जाता है, जो राव लूणकर्ण ने बनवाया था। वर्तमान महाराजा साहब ने इस मदिर के पास सर्व साधारण के उपयोग के लिए सुदर उद्यान लगवा दिया है। इसके अतिरिक्त वल्लभ मतानुयायियो के रतनबिहारी और रसिकशिरोमणि के मदिर भी उल्लेखनीय हैं। यहा भी महाराजा साहब ने सुदर बगीचे बनवा दिये हैं। रतनबिहारी का मदिर महाराजा रतनसिंह के राज्य-समय में बना था। धूनीनाथ का मन्दिर इसी नाम के योगी ने ई० स० १८०८ (वि० स० १८६५) में बनवाया था, जो नगर के पूर्वी द्वार के पास स्थित है। इसमे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य और गणेश की मूर्तिया स्थापित हैं। नगर से एक मील दक्षिण पूर्व में एक टीले पर नागणेची का मदिर बना हुआ है। अपनी मृत्यु से पूर्व ही महिषासुरमर्दिनी की यह अट्ठारह भुजावाली मूर्ति राव बीका ने जोधपुर से यहा लाकर स्थापित की थी।

नगर में कई मस्जिदे भी हैं, पर वे कारीगरी की दृष्टि से कुछ भी महत्व नहीं रखतीं।

नगर बसाने के तीन वर्ष पूर्व बनवाया हुआ राव बीका का प्राचीन किला शहरपनाह के भीतर दक्षिण पश्चिम मे एक ऊची चट्टान पर विद्यमान है। इसके पास ही बाहर की तरफ राव बीका, नरा और लूणकरण की स्मारक छत्रिया हैं। राव बीका की छत्री पहले लाल पत्थर की बनी हुई थी, परन्तु पीछे से सगमर्मर की बना दी गई है।

बडा किला अधिक नवीन है। यह महाराजा रायसिंह के समय बना था और शहरपनाह के कोट दरवाजे से लगभग तीन सौ गज की दूरी पर है। इसकी परिधि १०७८ गज है। भीतर प्रवेश करने के लिए दो प्रधान द्वार हैं, जिनके बाद फिर तीन या चार दरवाजे हैं। कोट में स्थान स्थान पर प्राय चालीस फुट ऊची बुर्ज है और चारों ओर खाई बनी हुई है, जो ऊपर तीस फुट चौडी होकर नीचे तग होती गई है। इस खाई की गहराई बीस से पचीस फुट तक है। प्रसिद्ध है कि इस क़िले पर कई बार आक्रमण हुए, पर शत्रु बलपूर्वक इसपर कभी अधिकार न कर सके।

क़िले का प्रवेश द्वार 'कर्णपोल' है। उसके आगे के दरवाजों में एक सूरजपोल है, जिसके दोनो पार्श्वों पर विशालकाय हाथी पर बैठी हुई दो मूर्तिया हैं, जो प्रसिद्ध वीर जयमल मेड़तिया (राठोड) और पत्ता चूडावत (सीसोदिया) की (जो चित्तोड मे बादशाह अकबर के मुक़ाबले मे वीरतापूर्वक लड़कर मारे गये थे) बतलाई जाती हैं। आगे बहुत बडा चौक है, जिसमे एक तरफ पक्तिबद्ध मरदाने और जनाने महल हैं, जो बडे भव्य और सुदृढ बने हुए हैं। इन महलो के भीतर कई जगह काच की पच्चीकारी और सुनहरी कलम आदि का बहुत सुन्दर काम है, जो भारतीय कला का उत्तम नमूना है। इन राजमहलो की दीवारों पर रगीन पलस्तर किया हुआ है, जिससे उनका सौन्दर्य बढ़ गया है। राज महलों के निर्माण में बहुधा अब तक के प्राय सभी महाराजाओ का हाथ रहा है। पहले के राजाओ के बनवाये हुए स्थानों मे महाराजा रायसिंह
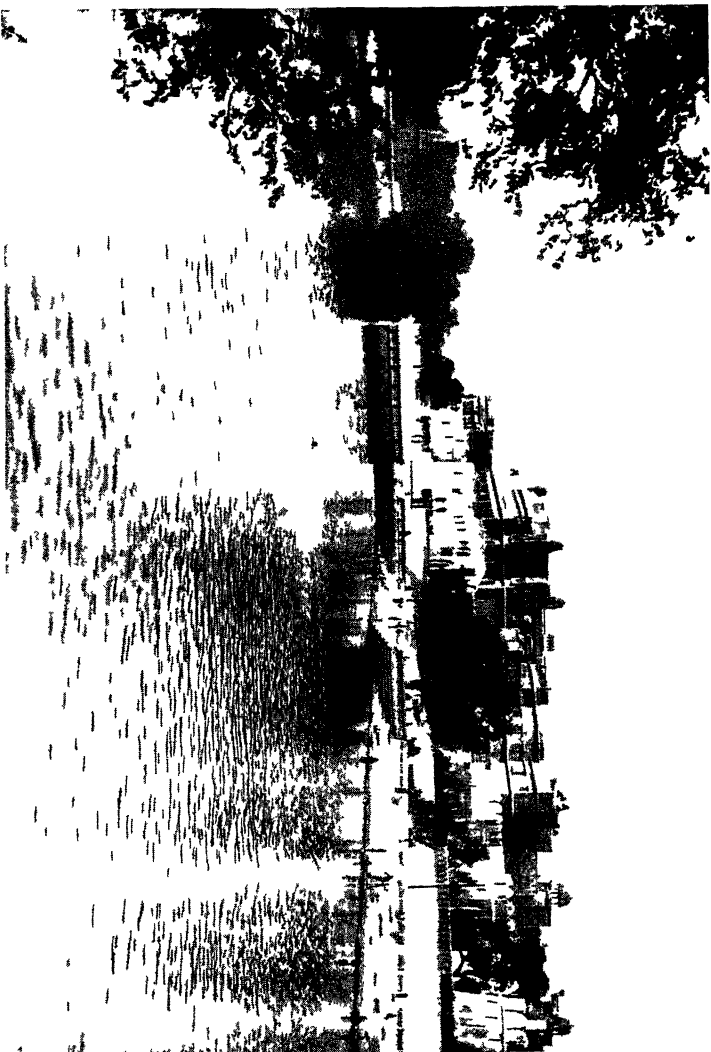
वीकानेर का किला और सूरसागर

अनूपमहल, बीकानेर

का चौबारा, महाराजा गजसिंह के फूलमहल, चद्रमहल, गजमदिर तथा कचहरी, महाराजा सूरतसिंह का अनूपमहल, महाराजा सरदारसिंह का बनवाया हुआ रतनविवास (रत्नमदिर) और महाराजा डूगरसिंह के छत्रमहल, चीनी भुर्ज (बुर्ज), गनपतनिवास, लालनिवास, सरदारनिवास, गगानिवास, सोहन भुर्ज, सुनहरी भुर्ज तथा कोठी शक्तनिवास हैं। वर्त्तमान महाराजा साहब ने समय समय पर इन राजमहलों मे कई नवीन भवन बनवाकर उनकी शोभा बढ़ा दी है, जिनमे दलेलनिवास और गगानिवास नामक विशाल हॉल मुख्य हैं। गगानिवास मे लाल रग के खुदाई के काम के पत्थर लगे हैं। छत की लकडी पर भी खुदाई का काम है और फर्श सगमर्मर का बना है। किले के भीतर फारसी सस्कृत, प्राकृत और राजस्थानी भाषा की हस्तलिखित पुस्तको का एक बडा पुस्तकालय है । इस पुस्तकालय म सस्कृत पुस्तकों का बडा भारी सग्रह है, जिनमें से कई तो ऐसी हैं जो अन्यत्र मिल ही नही सकती । इनमे से अधिकाश की विस्तृत सूची डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने ई० स० १८८० (वि० स० १९३७) म एक बडी जिल्द के रूप मे प्रकाशित की थी। मेवाड के महाराणा कुभा (कुभकर्ण) के सगीत ग्रन्थो का पूरा सग्रह भारतवर्ष मे केवल इसी पुस्तकालय मे है । किले के भीतर का शस्त्रागार भी देखने योग्य है, जहा प्राचीन अस्त्र शस्त्रों का अच्छा सग्रह है । वहीं एक कमरे मे कई पीतल की मूर्तिया रक्खी हुई हैं, जो तैंतीस करोड देवता के नाम से पूजी जाती हैं । ये मूर्तिया महाराजा अनूपसिंह ने दक्षिण मे रहते समय मुसलमानों के हाथ से बचाकर यहा पहुचाई थी।

किले के एक हिस्से में बीकानेर राज्य के उत्तरी भाग के रगमहल, बड़ोपल आदि गावो से प्राप्त पकी हुई मिट्टी की बनी बहुत प्राचीन वस्तुओ का बडा सग्रह है, जिसका श्रेय स्वर्गवासी डॉक्टर टैसिटोरी को है । इस सामग्री को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) खुदाई के काम की ईटे तथा पकी हुई मिट्टी के

बने हुए स्तम्भ आदि और (२) पकी हुई मिट्टी की सादी तथा उभरी हुई मूर्तिया आदि। खुदाई के काम की ईंटो मे हडजोरा (Acanthus) की बहुत ही सुन्दर पत्तिया बनी हैं। इसके अतिरिक्त उनपर मथुरा शैली और किसी किसी पर गाधार शैली की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है। इनमें से एक मे बैठे हुए दो बैलो की आकृतिया बनी हैं तथा दूसरे में एक राक्षस का सिर हडजोरा की पत्तियों के मध्य में बना है। इण्डोपार्सिपोलिटन शैली के शिरस्तम्भो मे हाथी एव गरुड तथा सिंह की सम्मिलित आकृतिया बनी हैं। पकी हुई मिट्टी के स्तभों के सिरे बनावट से बहुत प्राचीन जान पडते हैं और उनमे तथा अन्य आकृतियो में मथुरा शैली का अनुकरण पाया जाता है। इनमे कुछ वैष्णव मूर्तियों का भी सग्रह है। महिषासुरमर्दिनी की चार भुजावाली मूर्ति के अतिरिक्त विष्णु के वामनावतार और रुद्र की अजैकपाद की मूर्तिया उल्लेखनीय हैं। उभरी हुई खुदाई के काम की मूर्तियो में कृष्ण की गोवर्धन लीला, नाग लीला और राधा कृष्ण की मूर्तिया भी महत्वपूर्ण हैं, जिनको वर्त्तमान महाराजा साहब ने एक नवीन भवन (म्यूजियम्) बनवाकर वहा रखने की व्यवस्था कर दी है।

क़िले के भीतर एक घटाघर, दो बगीचे और चार कुए हैं, जो प्राय ३६० फुट गहरे हैं। इनमे से एक का जल बीकानेर मे सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।

क़िले की कर्णपोल के सामने सूरसागर के निकट विशाल और मनोहर गगानिवास पब्लिक पार्क (उद्यान) है। इस उद्यान का उद्घाटन तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड हार्डिंज के हाथ से ई० स० १६१५ (वि० स० १६७२) के नवम्बर मास में हुआ था। इसके प्रधान प्रवेशद्वार का नाम 'क्वीन एम्प्रेस मेरी गेट' है। किले के सामने पार्क के एक किनारे पर महाराजा डूगरसिंह की सगमर्मर की मूर्ति लगी है, जिसके ऊपर सगमर्मर का शिखर बना हुआ है। इसी उद्यान में एक तरफ वर्त्तमान महाराजा साहब के शिक्षक मि० एजर्टन के नाम पर 'एजर्टन टैंक' बना
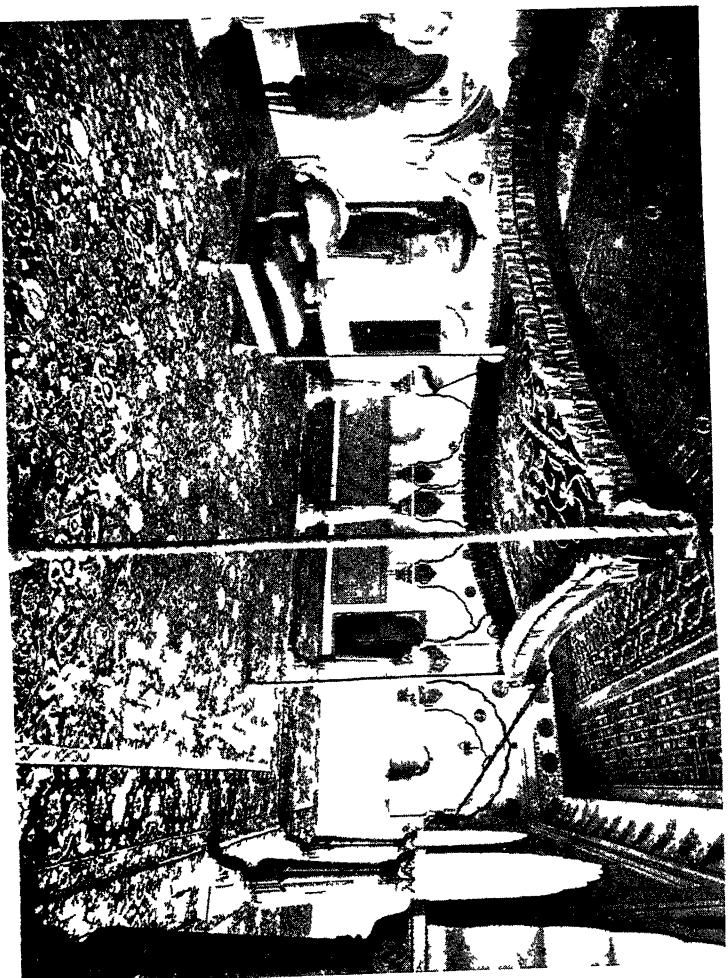
कर्णमहल, बीकानेर
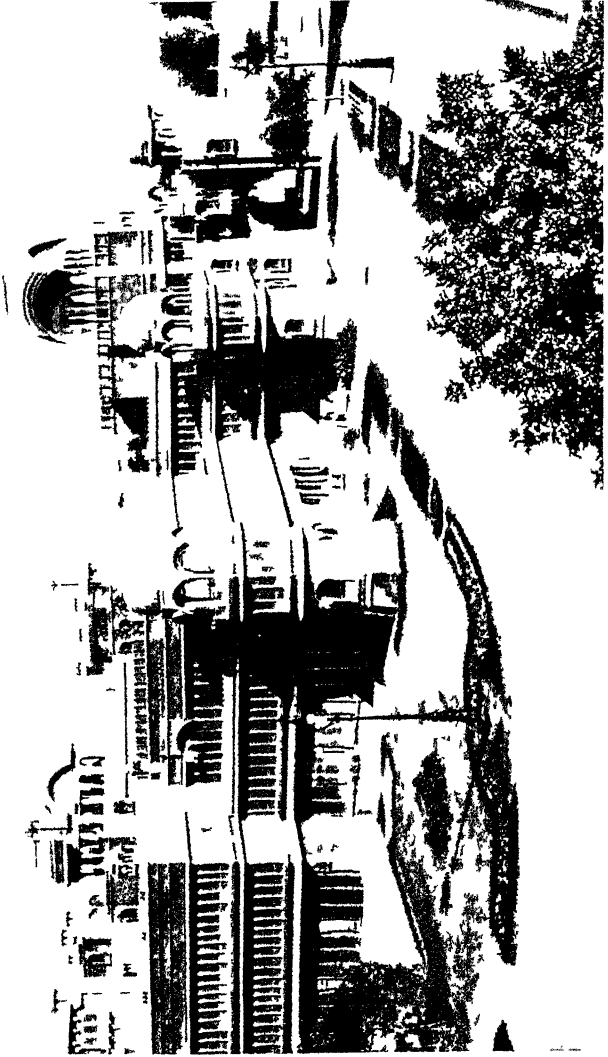
लालगढ़ महल

है। निकट ही महाराजा साहब की अश्वारूढ़ कांसे की मूर्ति (Bronze Statue) भी लगी है।

नगर के बाहर की इमारतों में लालगढ़ नामक महल बड़ा भव्य है। यह महल महाराजा साहब ने अपने पिता महाराज लालसिंह की स्मृति मे बनवाया है। सारा का सारा महल लालपत्थर का बना है, जिसपर खुदाई का बडा उत्कृष्ट काम है। भीतर के फर्श बहुधा सगमर्मर के हैं। महल इतना विशाल है कि यदि कई रईस एक साथ आवें, तो सब बड़े आराम से रह सकते हैं। महल के आहाते में मनोहर उद्यान बने हैं, जिनमे कही सघन वृक्षो, कही लताकुजो और कही रंग विरगे फूलों से भरी हुई हरियाली की छटा दर्शनीय है। इस (महल) के सामने महाराज लालसिंह की सुन्दर प्रस्तर मूर्ति (Statue) खडी है। महल के एक भाग में तैरने का स्थान (Swimming Bath) बना है तथा भीतर बाहर सर्वत्र बिजली की रोशनी लगी है।

इसके बाद विक्टोरिया मेमोरियल क्लब का उल्लेख किया जा सकता है। यह क्लब जनता के चन्दे से बना है और इसमे भाति भाति के खेलों की व्यवस्था के अतिरिक्त तैरने का स्थान (Swimming Bath) भी बना हुआ है।

यहा का बिजली का कारखाना बहुत बडा है, जहा से नगर के अतिरिक्त राज्य के कई दूरस्थ स्थानों मे भी रोशनी पहुचाने का उत्तम प्रबन्ध है। रेल्वे का कारखाना भी यहा बहुत बडा है जहा अब रेल्वे के काम की बहुधा सब वस्तुए बनने लगी हैं। यहा राज्य की तरफ से एक बड़ा छापाखाना भी है।

नगर मे धर्मशालाए और लोकोपकारी कई सस्थाए हैं। अब राज्य की ओर से यहा अपग आश्रम, अनाथालय और व्यायामशाला भी बना दी गई है एव एक बड़ा पुस्तकालय भी बनाया जा रहा है, जिससे भविष्य में बीकानेर के निवासियों को बहुत लाभ होगा। कला कौशल की वृद्धि की तरफ़ राज्य का पूरा ध्यान है। यहा के जेल में गलीचे, दरियें, आसन,

लोइया आदि सामान बडा सुन्दर और टिकाऊ बनता है । ग्लास फैक्टरी भी यहा स्थापित हुई, परन्तु इन दिनो उसका कार्य बद है ।

नगर के पाच मील पूर्व मे देवीकुड है, जहा बीकानेर के महाराजा और राजपरिवार के लोगो की दग्ध क्रिया की जाती है । यहा राव कल्याणसिंह से लगाकर महाराजा डूगरसिंह तक के राजाओं तथा उनकी राणियो और कुवरो आदि की स्मारक छत्रिया बनी हैं, जिनमे से कुछ तो बडी सुन्दर हैं । पहले के राजाओं आदि की छत्रिया दुलमेरा से लाये हुए लाल पत्थरो की बनी हैं, जिनके बीच मे लगे हुए मकराना के सगमर्मर पर लेख खुदे हैं, लेकिन पीछे की छत्रिया पूरी सगमर्मर की बनी हैं । कुछ छत्रियो के मध्य मे खडी हुई शिलाओं पर अश्वारूढ़ राजाओ की मूर्तिया खुदी हैं, जिनके आगे कतार म क्रमानुसार उनके साथ सती होनेवाली राणियो की आकृतिया बनी हैं । नीचे गद्य तथा पद्य मे उनकी प्रशसा के लेख खुदे हैं, जिनसे उनके कुछ कुछ हाल के अतिरिक्त उनके स्वर्गवास का निश्चित समय ज्ञात होता है । महाराजा राजसिंह की छत्री उल्लेखयोग्य है, क्योकि उसमें उसके साथ जल मरनेवाले सग्रामसिंह नामक एक व्यक्ति का उल्लेख है । इस स्थान पर सती होनेवाली अतिम महिला का नाम दीपकुवरी था, जो महाराजा सूरतसिंह के दूसरे पुत्र मोतीसिंह की स्त्री थी और अपने पति की मृत्यु पर वि० स० १८८२ (ई० स० १८२५) में सती हुई थी । उसकी स्मृति मे अब भी प्रति वर्ष भादो के महीने मे यहा मेला लगता है । उसके बाद और कोई महिला सती नहीं हुई, क्योकि सरकार के प्रयत्न से यह प्रथा उठ गई । राजपरिवार के लोगों के ठहरने के लिए तालाब के निकट ही एक उद्यान और कुछ महल बने हुए हैं ।

देवीकुड और नगर के मध्य में, मुख्य सडक के कुछ दक्षिण में महाराजा डूगरसिंह का बनवाया हुआ शिव मदिर है । इसके निकट ही एक तालाब, उद्यान और महल हैं । इस मदिर का शिवलिंग ठीक मेवाड़ के प्रसिद्ध एकलिंगजी की मूर्ति के सदृश है । यहा प्रति वर्ष श्रावण मास में भारी मेला लगता है । इस स्थान को शिवबाड़ी कहते हैं ।

नाल—बीकानेर से ८ मील पश्चिम मे इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के निकट यह गाव है। इसके चारो ओर झाडियो और वृक्षों से आच्छादित सात आठ छोटे छोटे तालाब हैं। इनमे से एक तालाब के किनारे, जिसे केशोलाय कहते हैं, एक लाल पत्थर का कीर्तिस्तभ लगा है, जो वि० स० की १७ वी शताब्दी का जान पड़ता है। इसके लेख से पाया जाता है कि यह तालाब प्रतिहार केशव ने बनवाया था। दूसरा उल्लेखनीय लेख यहा के वाघोडा जागीरदार के निवासस्थान के द्वार पर लगा है, जो वि० स० १७६२ ज्येष्ठ वदि ६ (ई० स० १७०५ ता० ६ मई) रविवार का है। इससे उक्त वश के इन्द्रभाण की मृत्यु तथा उसकी स्त्री अमृतदे के सती होने का पता चलता है।

नाल से दो मील दक्षिण मे एक स्थान है, जिसे नाल का कुआ कहते हैं। यहा सात लेख हैं, जिनमे से छ तो वि० स० की १६ वीं शताब्दी के और एक १७ वीं शताब्दी का है। उल्लेखनीय स्थलों में यहां के मदिरों, दो कुओं और एक तालाब का नाम लिया जा सकता है। मदिर सब एक ही स्थान मे एक दीवार से घिरे हुए हैं, जिनमें पार्श्वनाथ और दादूजी के मन्दिर उल्लेखयोग्य हैं। दोनों लाल पत्थर के और सम्भवत वि० स० की १७ वी शताब्दी के बने हैं। पार्श्वनाथ के मदिर की मूर्ति सगमर्मर की है, जिसके नीचे एक लेख खुदा है, जो पूरा पूरा पढ़ा नही जाता। इसके सामने जैसलमेर के पीले पत्थर की बनी हुई दो देवलिया हैं, जिनमें से एक पर अश्वारूढ़ व्यक्ति और सती की आकृति बनी है तथा वि० स० १६०३ फाल्गुन वदि १ (ई० स० १५४७ ता० ५ फरवरी) का टूटा फूटा लेख है। इससे कुछ दूर चार दीवारी के पास एक सादे लाल पत्थर का कीर्त्तिस्तम्भ लगा है। इसपर वि० स० १६८१ माघ सुदि १२ (ई० स० १६२५ ता० १० जनवरी) सोमवार का एक लेख है, जिससे पाया जाता है कि उस दिन महाराजा सूरसिंह के राज्यकाल में सूत्रधार देदा मींबावत ने यहा एक छत्री बनवाई थी। अब यह कीर्त्तिस्तम्भ यहा से हटा दिया गया है। दादूजी का मन्दिर साधारण है।

७

दोनों कुएं पास पास बने हैं और प्रत्येक के पास एक एक कीर्त्तिस्तम्भ लगा है। अधिक प्राचीन कुए के पास का कीर्त्तिस्तम्भ जैसलमेर के पीले पत्थर का है, जिसके चारों तरफ अर्थात् पश्चिम की ओर गणेश, उत्तर की ओर माता, दक्षिण की ओर सूर्य और पूर्व की ओर किसी देवता (शिव) की अस्पष्ट मूर्ति बनी है। इसके लेख से पाया जाता है कि यह कुआ महाराजा रायसिंह के राजत्वकाल मे वि० स० १६५० फाल्गुन सुदि ११ (ई० स० १५६४ ता० २१ फरवरी) गुरुवार को बनकर सपूर्ण हुआ था। कुए की दूसरी तरफ दुहरी छत्री बनी है, जिसपर कोई लेख नहीं है। दूसरे कुए का कीर्त्तिस्तम्भ लाल पत्थर का है, जिसके लेख से पाया जाता है कि उसे गोपाल के पुत्र इन्द्रभाण और उसकी स्त्रियों ने वि० स० १७५६ ज्येष्ठ सुदि ८ (ई० स० १६९९ ता० २६ मई) शुक्रवार को बनवाकर सम्पूर्ण किया था। यह इन्द्रभाण वाघोडा वश का था, जो सोनगरे चौहानों की एक शाखा है और जिसके पास अब तक नाल का इलाका जागीर में है। कुओं से थोडी दूर उत्तर में दो और देवलिया हैं, जो एक ऊचे चबूतरे पर बनी हैं और पीले पत्थर की हैं। इनमें से एक पर वि० स० १६५४ पौष सुदि १२ (ई० स० १५९८ ता० ९ जनवरी) और दूसरी पर वि० स० १६६७ फाल्गुन वदि ९ (ई० स० १६११ ता० २७ जनवरी) का लेख है। प्राचीन तालाब के पास एक छत्री बनी है, परन्तु उसपर कोई लेख नहीं है। उसके निकट का कीर्त्तिस्तम्भ लाल पत्थर का है और उसपर वि० स० १६५९ वैशाख वदि २ (ई० स० १६०२ ता० २९ मार्च) का लेख है, जिससे उसके निर्माण काल का पता चलता है।

कोड़मदेसर—बीकानेर से १५ मील पश्चिम मे यह एक छोटा सा गांव है, जो इसी नाम के तालाब और उसके किनारे पर स्थापित भैरव की मूर्ति के लिए प्रसिद्ध है। यह भैरव की मूर्ति जागलू में बसने के समय स्वय राव बीका ने मडोर से लाकर यहा स्थापित की थी।

यहा पर वि० स० १५१६ से १६३० तक के चार लेख हैं। इनमें से सब से प्राचीन लेख तालाब के पूर्व की ओर भैरव की मूर्ति के निकट के कीर्त्तिस्तम्भ की दो ओर खुदा है। यह कीर्त्तिस्तम्भ लाल पत्थर का है
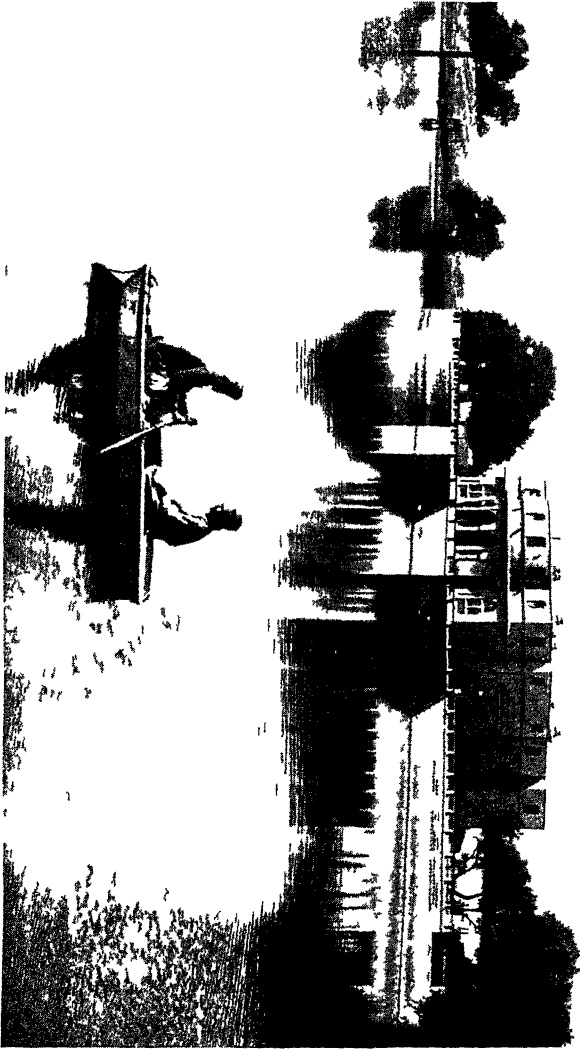
कोडमदेसर
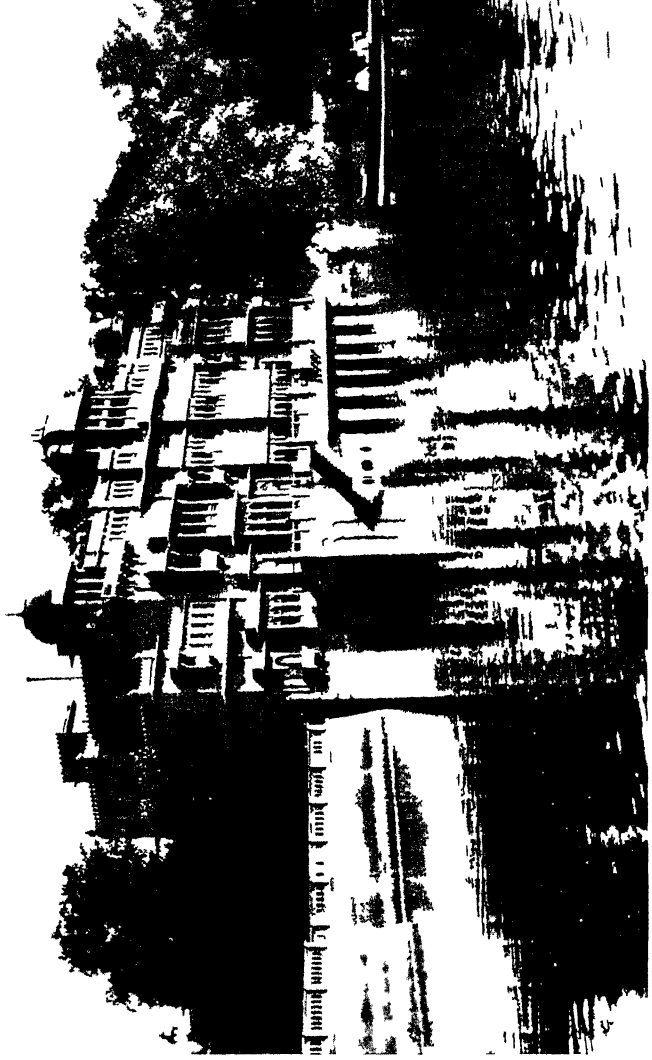
डूगरनिवास महल–गजनेर

और इसकी चारों ओर देवी देवताओं की मूर्तिया खुदी हैं। इसके लेख से पाया जाता कि वि० स० १५१६ (शक स० १३८१=ई० स० १४५९) भाद्रपद सुदि सोमवार को राव रिणमल के पुत्र राव जोधा ने यह तालाब खुदवाया और अपनी माता कोड़मदे के निमित्त कीर्तिस्तभ स्थापित करवाया। शेष तीनों लेखों में से सब से पुराना वि० स० १५२९ माघ सुदि ५ (ई० स० १४७३ ता० ३ जनवरी) का है, जिसमें साह रूदा के पुत्र साह कपा की मृत्यु होने और उसके साथ उसकी स्त्री के सती होने का उल्लेख है। दूसरा लेख एक देवली पर वि० स० १५४२ भाद्रपद सुदि ७ (ई० स० १४८५ ता० १७ अगस्त) सोमवार का है, जिसमें एक राठोड़ राजपूत की मृत्यु का उल्लेख है। तीसरा लेख वि० स० १६३० भाद्रपद वदि १३ (ई० स० १५७३ ता० २५ अगस्त) मगलवार का तालाब के किनारे पीले रग की देवली पर है। इसमें सघराव जीवा की मृत्यु और उसके साथ राठोड़ वश की उसकी स्त्री रुपाई के सती होने का उल्लेख है।

गजनेर—यह बीकानेर से लगभग २० मील दक्षिण पश्चिम में बसा है। यह महाराजा गजसिंह के समय आबाद हुआ था और बीकानेर राज्य के प्रसिद्ध तालाब गजनेर के नाम पर ही इसकी प्रसिद्धि है। यहा पर डूगर-निवास, लालनिवास, शक्तनिवास, गुलाबनिवास और सरदारनिवास नामक सुन्दर महल हैं। वर्तमान महाराजा साहब के प्रयत्न से यहां का सौन्दर्य्य बहुत बढ़ गया है और पुराने महलों मे परिवर्तन भी हो गया है। यहा सर्वत्र बिजली की रोशनी का प्रबन्ध है। शीतकाल में बतखों, भड़तीतरों आदि के आ जाने पर कुछ दिनों के लिए यह स्थान उत्तम शिकारगाह बन जाता है। गजनेर के उद्यान में नारगी और अनार के वृक्ष बहुतायत से हैं तथा कई प्रकार की सुन्दर लताएं आदि भी हैं। तालाब का जल आरोग्यप्रद न होने से लोग उसका व्यवहार कम ही करते हैं। ई० स० १९३३ के अगस्त (वि० सं० १९९०, भाद्रपद) में यहा केवल एक दिन में ही १२ इच वर्षा हुई, जिससे कई मकानों में पानी भर गया और सरदारनिवास में साढ़े चार फुट पानी चढ़ गया। इस वर्षा से यहा बडी क्षति हुई और कितने ही

मकान गिर गये। गत वर्ष ई० स० १९३६ के अगस्त मास की तारीख ११-१३ (वि० सं० १९९३ प्रथम भाद्रपद वदि ९-११) तक तीन दिन लगातार ६० घंटों मे १४ इंच वर्षा हुई, जिससे भी यहां के बहुत से कच्चे मकान गिर गये।

श्रीकोलायतजी—यह बीकानेर से करीब ३० मील दक्षिण पश्चिम में इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के निकट बसा है। यहां इसी नाम से प्रसिद्ध एक तालाब भी है, जिसके किनारे कपिल मुनि का आश्रम माना जाता है। प्रति वर्ष कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को यहां मेला लगता है, जिसमें नेपाल आदि बड़ी दूर दूर से लोग कपिल मुनि के आश्रम के दर्शनार्थ आते हैं। पास ही धूनीनाथ का बनवाया एक अन्य मंदिर है। पुष्कर के समान यहां के तालाब के किनारे बहुत से घाट और मंदिर बने हैं, जो सघन पीपल के वृक्षों की शीतल छाया से आच्छादित है। यहां राज्य की ओर से एक अन्न-क्षेत्र स्थापित है तथा कई महाजनों आदि की बनवाई हुई धर्मशालाएं एवं देवमन्दिर भी विद्यमान हैं। ई० स० १९३३ के अगस्त (वि० सं० १९९०, भाद्रपद) मास में एक दिन में ही बहुत अधिक वर्षा (१२ इंच) होने से तालाब का पानी ऊपर तक भर गया और सारी ज़मीन जलमग्न हो गई, जिससे यहां के अधिकांश मकान गिर गये।

श्रीकोलायतजी से करीब ५ मील दक्षिण में झझू नाम का गांव है। इन दोनों स्थानों के आस पास पहले पल्लीवाल ब्राह्मणों की बस्ती थी, जिनकी वि० सं० १५०० से १८०० तक की देवलियां (स्मारक) यहां बनी हैं।

देशणोक—बीकानेर से १६ मील दक्षिण में इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के पास बसा हुआ यह स्थान बीकानेर के महाराजाओं के लिए बड़ा पूज्य है। यहां पर राठोड़ों की पूज्य देवी करणीजी का मंदिर है। ऐसी प्रसिद्धि है कि इस देश पर करणीजी की कृपा और सहायता से ही राठोड़ों का अधिकार स्थापित हुआ था। अब भी कहीं यात्रा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व महाराजा साहब यहां आकर करणीजी का दर्शन करते
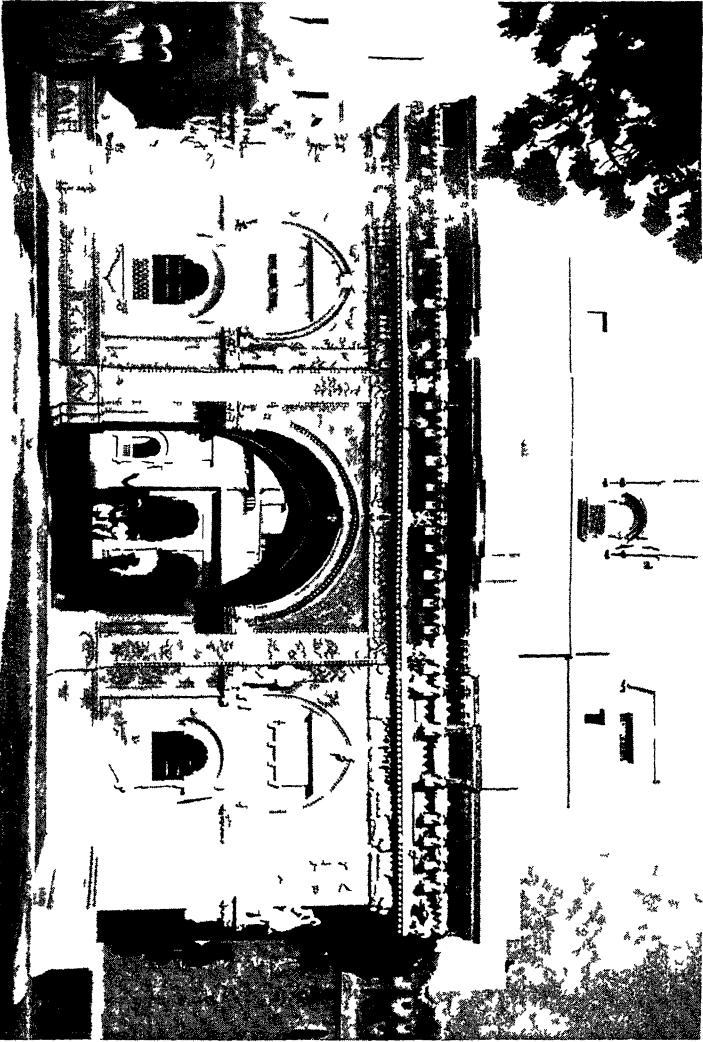
करणीजी का मन्दिर, देशणोक

हैं । यहा पर चारणों की ही बस्ती अधिक है और वे ही करणीजी के पुजारी हैं । इस स्थान पर चूहो की बहुलता है जो करणीजी के काबे कहलाते हैं, पर उन्हे मारने या पकडने की मनाही है । इसके विपरीत लोग उन्हें भोजन आदि देने में पुण्य मानते हैं । मन्दिर के आसपास बडी बड़ी झाडिया है, पर उन्हे भी कोई काट नही सकता । पहले ऐसा था कि राज्य का जो अपराधी यहा आकर शरण लेता था, वह जब तक यहा रहता, पकडा नही जाता था ।

पलाणा—बीकानेर से १४ मील दक्षिण मे इसी नाम के रेलवे स्टेशन के पास बसा हुआ यह स्थान कोयले की खान के लिए प्रसिद्ध है । प्राचीनता की दृष्टि से यहा वि० स० १५३६ (ई० स० १४८२) की एक देवली (स्मारक) उल्लेखनीय है, जिससे जागल देश मे प्रथम अधिकार करनेवाले राठोडों मे से राव बीका के चाचा रिणमल के पुत्र माडण की मृत्यु का पता चलता है ।

वासी बरसिंहसर—यह गाव बीकानेर से १५ मील दक्षिण में है । यहा पर एक कीर्त्तिस्तम्भ है, जिसपर पैंतीस पक्तियो का एक महत्व-पूर्ण लेख है । इससे पाया जाता है कि जगलकूप के स्वामी शखुकुल (साखला) के कुमारसिंह की पुत्री और जैसलमेर के राजा कर्ण की स्त्री दूलहदेवी ने यहा वि० स० १३८१ (ई० स० १३२४) में एक तालाब खुदवाया ।

रासी(रायसी)सर—यह बीकानेर से १८ मील दक्षिण मे पूर्व की तरफ बसा हुआ है । कहा जाता है कि रूण से चलकर रायसी साखला पहले यहीं ठहरा था । अनुमानत उसने ही यह गाव बसाया होगा ।

यहा के कुए के पास की तीन देवलियों पर लेख खुदे हैं, जिनमें से सब से प्राचीन वि० स० १२८८ ज्येष्ठ वदि अमावास्या (ई० स० १२३१ ता० ३ मई) शनिवार का है। इससे पाया जाता है कि उक्त दिन लाखण के पुत्र चौहान विक्रमसिंह का स्वर्गवास हुआ था । इस लेख के बल पर यह कहना अयुक्त न होगा कि वि० स० १२८८ से पूर्व ही यह गाव

बस गया था। दूसरे दो लेखों म साखला रायसिंह के प्रपौत्र राणा कवरसी (कुमारसी) के दो पुत्रो का उल्लेख है, जिनकी क्रमश वि० स० १३८२ और १३८६ (ई०स० ३२५ और १३२६) मे मृत्यु हुई थी। पहला लेख लाल पत्थर की देवली पर खुदा है जिसके ऊपर एक अश्वारूढ़ व्यक्ति और तीन सतियो की आकृतिया बनी हैं। दूसरी देवली भी ऐसी ही है, परन्तु उसमें केवल अश्वारूढ़ व्यक्ति की ही आकृति बनी है।

जेगला—यह बीकानेर से लगभग २० मील दक्षिण में है। यहा पर उल्लेख योग्य गोगली सरदारों की दो देवलिया हैं। इनमें से अधिक प्राचीन वि० स० १६ ७ आश्विन वदि ८ (ई० स० १५५० ता० ११ सितबर) की हैं और गोगली सरदार 'ससार' से सम्बन्ध रखती है। संसार के विषय में ऐसी प्रसिद्ध है कि वह बीकानेर के महाराजा रायसिंह और पृथ्वीराज की सेवा मे रहा था और बादशाह के समक्ष एक लडाई मे सिर कट जाने पर भी उसका धड बहुत देर तक लडता रहा था। गोगली वश के व्यक्ति अब भी जेगला में हैं और यहा का एक पट्टेदार भी इसी वश का है।

पारवा—यह स्थान बीकानेर से लगभग २० मील दक्षिण में जेगला से करीब चार मील पूर्व में है। यहा पर उल्लेखयोग्य केवल एक छत्री है, जिसपर बीकानेर के राव जैतसी के एक पुत्र राठोड़ मानसिंह की मृत्यु और उसके साथ उसकी स्त्री कछवाही पूनिमादे के सती होने के विषय का वि० स० १६५३ आषाढ़ सुदि ४ (ई० स० १५९६ ता० १९ जून) का लेख खुदा है। छत्री की बनावट साधारण है और उसका छज्जा तथा गुम्बज बहुत जीर्ण दशा में हैं।

जागलू—साखलों का यह प्राचीन किला जागलू नामक प्रदेश में बीकानेर से २४ मील दक्षिण मे है। ऐसा कहते हैं कि चौहान सम्राट् पृथ्वीराज की राणी अजादे (अजयदेवी) दहियाणी ने यह स्थान बसाया था। सर्व प्रथम साखले महिपाल का पुत्र रायसी रूण को छोड़कर यहा आया और गुढ़ा बाधकर रहने लगा एव कुछ समय के बाद यहां के स्वामी दहियों की

छल से हत्या कर उसने यहा अपना अधिकार जमा लिया। साखलों में नापा बडा प्रसिद्ध हुआ। उसके समय मे जब बिलोचों का उत्पात जागलू पर बहुत बढ़ा तो वह जोधपुर चला गया और वहा से राव जोधा के पुत्र बीका को लाकर उसने जागलू का इलाका उसके सुपुर्द करा दिया। तब से साखले राठोडों के विश्वासपात्र बन गये। बहुत समय तक गढ़ की कुंजिया तक उनके पास रहती थीं। नापा साखला बुद्धिमान और राजनीतिज्ञ होने के अतिरिक्त इतना सत्यवादी था कि अब भी यदि कोई बडी सच्चाई का प्रमाण देता है तो उसका उदाहरण दिया जाता है कि यह तो नापा साखला के जैसी बात है। वास्तव मे नापा ने राठोडों को उक्त (जागल) प्रदेश में राज्य विस्तार करने मे बड़ी सहायता पहुचाई थी।

यहा के प्राचीन स्थानों मे पुराना क़िला, केशोलाय और महादेव के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। पुराना किला वर्तमान गाव के निकट बना हुआ था, पर अब उसके कुछ भग्नावशेष ही विद्यमान रह गये हैं। चारों ओर चार दरवाजों के चिह्न अब भी पाये जाते हैं। बीच के ऊचे उठे हुए घेरे के दक्षिण पूर्व की ओर जागलू के तीसरे साखले स्वामी खींवसी के सम्मान में एक देवली (स्मारक) बनी है, जो देखने से नवीन जान पडती है।

किले के पूर्व मे केशोलाय तालाब है। इसके विषय मे ऐसी प्रसिद्धि है कि दहियों के केशव नामक उपाध्याय ब्राह्मण ने यह तालाब खुदवाया था। तालाब के किनारे एक पत्थर पर खुदे हुए लेख मे केशव का नाम आता है। यह लेख लाल पत्थर की देवली पर खुदा है और वि० स० १३४९ श्रावण सुदि १४ (ई० स० १२९२ ता० २९ जुलाई) का है। तालाब के निकट की अन्य पाच देवलिया पीछे की हैं, जिनमें से तीन के लेख अस्पष्ट हैं। ये लेख क्रमश वि० स० १६१८, १६३० और १६६४ (ई० स० १५६१, १५७३ और १६०७) के हैं। शेष दो देवलिया वि० स० १६९० और १६९६ (ई० स० १६३३ और १६३९) की हैं। इनमे जागलू के भाटी जागीरदारों की मृत्यु के उल्लेख हैं। अब भी जागलू के जागीरदार भाटी ही हैं।

पुराने क़िले की तरफ़ गाव के बाहर महादेव का मंदिर है, जो

नवीन बना हुआ है। इसके भीतर एक किनारे पर प्राचीन शिवलिंग की जलेरी पड़ी हुई है। मंदिर के अन्दर की दीवार पर संगमर्मर पर एक लेख खुदा है, जिससे पाया जाता है कि इस मंदिर का नाम पहले श्रीभवानी शंकरप्रासाद था और इसे राव बीका ने बनवाया तथा वि० सं० १६०१ (ई० स० १८४४) में महाराजा रत्नसिंह ने इसका जीर्णोद्धार करवाया था।

जागलू में तीन और मंदिर हैं, पर ये भी नये ही हैं। एक मंदिर जांभा नामक सिद्ध का है, जो पहले पवार राजपूत था और बाद में साधू हो गया था। इसकी उपासना बिस्नोई मतावलम्बी करते हैं। इस मंदिर के भीतर एक चोला रक्खा है, जो जांभा सिद्ध का बतलाया जाता है।

जागलू में दो कुए हैं, परंतु उनपर कोई लेख नहीं है। इनमें से एक की दीवार में एक देवली बनी है, जिसपर केवल वि० सं० ११७० फाल्गुन सुदि १ (ई० स० १११८ ता० ६ फरवरी) और 'पुत्र गासल' पढ़ा जाता है।

मोरखाणा—यह स्थान बीकानेर से २८ मील दक्षिण पूर्व में है। यहां का सुसाणीदेवी (सुराणों की कुलदेवी) का मंदिर उल्लेखनीय है। यह मंदिर एक ऊंचे टीले पर बना है और इसमें एक तहखाना, खुला हुआ प्रांगण तथा बरामदा है। यह सारा जैसलमेरी पत्थरों का बना है और इसके तहखाने की बाहरी दीवारों पर देवताओं और नर्तकियों की आकृतियां खुदी हैं। इसी प्रकार द्वारभाग भी खुदाई के काम से भरा हुआ है। तहखाने के ऊपर का शिखर खोखला बना है। इसके भीतर एक देवी की मूर्ति है। तहखाने के चारों तरफ एक नीची दीवार बनी है। प्रांगण पर छत है जो १६ खंभों पर स्थित है जिनमें से १२ तो चारों ओर एक घेरे में लगे हैं और शेष चार मध्य में हैं। मध्य के चारों स्तम्भ और तहखाने के सामने के दो स्तम्भ घटपल्लव शैली के बने हैं। घेरे में लगे हुए स्तम्भ श्रीधर शैली के हैं। मध्य के स्तम्भों में से एक पर बैठे हुए मनुष्य की आकृति खुदी है, जिसके विषय में कहा जाता है कि वह नागौर के नवाब की मूर्ति है, जो सुसाणी पर अधिकार करना चाहता था।

तहखाने के सामनेवाले बाईं तरफ के स्तम्भ पर दो और लेख खुदे हैं। एक तरफ का लेख तो स्पष्ट पढ़ा नहीं जाता, पर दूसरी तरफ के लेख में वि० स० १२२६ (ई० स० ११७२) लिखा मिलता है तथा उसके ऊपरी भाग में एक स्त्री की आकृति बनी है। इस लेख का भी आशय स्पष्ट नहीं है, परन्तु इससे इतना सिद्ध है कि उक्त सवत् से पूर्व भी सुसाणी के मन्दिर का अस्तित्व था। पासवाली देवलियों से भी, जिनका उल्लेख आगे किया जायगा, इस बात की पुष्टि होती है। द्वार के बायें पार्श्व और उसके सामनेवाले स्तम्भ को मिलानेवाली दीवार पर लगे हुए काले सगमर्मर पर गद्य और पद्य में एक लेख खुदा है, जिसके पूर्वार्द्ध के अन्तिम अर्थात् छठे श्लोक से पाया जाता है कि शिवराज के पुत्र हेमराज ने देवताओं के रथ के समान सुन्दर ऊचे शिखरवाला 'गोत्र देवी' का मन्दिर बनवाया। उसके बाद के अश में लिखा है कि वि० सं० १५७३ ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा (ई० स० १५१६ ता० १६ मई) शुक्रवार को सुराणावशीय गोसल के प्रपौत्र पूजा के पुत्र सघेश चाहड ने (जीर्णोद्धार किये हुए) मन्दिर में श्री पद्मानन्दसूरि के उत्तराधिकारी श्रीनन्दिवर्धनसूरि के द्वारा मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई। सुसाणी के मदिर की बाईं ओर कुछ पत्थर की मूर्तिया आदि पड़ी हैं, जिनमे नौ देवलिया, एक गोवर्धन (कीर्त्तिस्तम्भ) और एक देव मूर्ति हैं। इनमे से कुछ लाल पत्थर और कुछ जैसलमेर के पीले पत्थर की हैं। इनपर लेख अवश्य थे, जो लगातार पुताई होने के कारण अब पढ़े नहीं जाते। देवलिया वि० सं० की १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ की जान पडती हैं और अनुमानतः राजपूत सरदारों से सम्बन्ध रखती हैं, जिनकी अश्वारूढ़ आकृतिया सतियों की आकृतियों सहित उनपर बनी हैं। एक देवली पर तो लिंग भी दृष्टि गोचर होता है। लेख प्राय सब देवलियों पर अशुद्ध हैं। एक लेख जो कुछ कुछ पढ़ा जाता है, वि० स० १२३१ पौष वदि ३ (ई० स० ११७४ ता० १३ नवम्बर) का है।

गोवर्द्धन अथवा कीर्त्तिस्तम्भ अधिक महत्वपूर्ण है। यह लाल

पत्थर का है और इसकी चारों ओर खुदाई का काम है। सामने की तरफ इसपर एक लेख है, जो वि० स० ११०० के पीछे का नहीं ज्ञात पड़ता।

गाव के खलियाणी सागर नाम के कुए के पास २६ देवलिया एक कतार में लगी हैं, जिनमें से २२ जैसलमेरी पत्थर की और शेष ४ सगमर्मर की हैं। इनमे से कुछ जीर्ण दशा में हैं और एक को छोड़कर शेष सभी वि० स० की १६ वी और १७ वीं शताब्दी के बीच मृत्यु को प्राप्त होनेवाले भाटी जागीरदारों की हैं। इनमें से वि० स० १६६५ (ई० स० १६३८) की देवली से ज्ञात होता है कि इस गाव का पुराना नाम मोरखियाणा था। एक देवली, जो अधिक प्राचीन है, वि० स० १५६४ फाल्गुन सुदि १४ (ई० स० १५३८ ता० १२ फ़रवरी) की है। अब भी इस स्थान के जागीरदार भाटी ही हैं।

मोरखाणा में एक शिवालय भी है, जिसमें मन्दिर और मठ दोनों हैं। शिवालय बहुत पीछे का बना है।

कवलीसर—यह बीकानेर से ३६ मील दक्षिण में बसा है। यहा वि० स० की १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की देवलियों का समूह है, जिनमें से केवल एक सुरक्षित रह सकी है। यह वि० स० १३२८ (ई० स० १२७१) की है और इसमें इस गाव को बसानेवाले साखला कमलसी की मृत्यु का उल्लेख है। अनुमानत यह कहा जा सकता है कि यहा की सब देवलिया साखले राणाओं की हैं, जो पहले जागलू और रासी(रायसी)सर पर राज्य करते थे।

पाचू—बीकानेर से ३६ मील दक्षिण में बसा हुआ यह गांव भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व का है। यहा राव बीका के तीसरे चाचा ऊधा रिणमलोत के दो पुत्रों—पचायण और सागा—की देवलिया (स्मारक) हैं, जो क्रमश वि० स० १५६८ और १५८१ (ई० स० १५११ और १५२४) की हैं। अनुमानत पचायण ने ही यह गाव बसाया होगा और उसी के नाम से इसकी प्रसिद्धि है। इस स्थान के निकट ही

सीलवा गाव है जहा वि० स० १६३४ (ई० स० १५७७) की राव जैतसी के पुत्र पूरणमल की देवली (स्मारक) है।

भादला—यह बीकानेर से ४५ मील दक्षिण मे बसा है। यहा कई अति प्राचीन देवलिया हैं, जो सब राजपूतों की चिकण शाखा से सम्बन्ध रखती हैं। इनमें से सब से पुरानी वि० स० ११९१ (ई० स० ११३४) की है। इनपर के लेखों से स्पष्ट है कि वि० स० की १२ वी शताब्दी के अत और १३ वी शताब्दी के प्रारम्भ में भादला तथा उसके आसपास के गावों पर चिकण राजपूतों का, जो अपने को राणा कहते थे, अधिकार था।

सारुडा—बीकानेर से ५२ मील दक्षिण में बसा हुआ यह गाव भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व रखता है। इस के निकट ही दन्तोला की तलाई है, जिसके किनारे पर राव बीका के चाचा मडला रिणमलोत की देवली है, जो वि० स० १५६२ (ई० स० १५०५) की है।

अणखीसर—यह गाव बीकानेर से ३० मील पूर्व दक्षिण में बसा है। यहा चार देवलिया हैं जो सब वि० स० १३४० (ई० स० १२८३) की हैं। इनमें से तीन अणखसिंह के पुत्र आसल और उसकी दो स्त्रियों—रोहिणी और पूमा—की हैं; चौथी देवली रणमल की है, जो अनुमानत आसल का सम्बन्धी रहा होगा और उसी समय मरा या मारा गया होगा। अणखसी और कोई नहीं, साखले राणा रायसी का ही उत्तराधिकारी होना चाहिये। ऐसा ज्ञात होता है कि उसने ही यह गाव बसाया होगा।

सारगसर—बीकानेर से ६४ मील पूर्व दक्षिण में बसे हुए इस गाव में मोहिलों का सब से प्राचीन लेख एक गोवर्द्धन (कीर्तिस्तम्भ) पर खुदा है, जो पूरा पढ़ा नहीं जाता। उसमें केवल सम्वत् ११८ -स्पष्ट है।

छापर—यह बीकानेर से ७० मील पूर्व में बसा है और ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। यह मोहिलों की दो प्राचीन राजधानियों मे से एक थी। इनकी दूसरी राजधानी द्रोणपुर थी। मोहिल, चौहानो की ही एक

शाखा है, जिसके स्वामियों ने राणा का विरुद धारणकर उक्त स्थानों के आस पास के प्रदेश पर वि० स० की १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक राज्य किया था।

छापर में मोहिलों की बहुत सी देवलिया (स्मारक) हैं, जो वि० स० की १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की हैं। इनमें से दो विशेष महत्त्व की हैं क्योंकि इनसे मोहिल राणाओं के सम्बन्ध का निश्चित समय ज्ञात होता है। एक राणा सोहणपाल की वि० स० १३११ (ई० स० १२५४) और दूसरी राणा अरडक की वि० स० १३४८ (ई० स० १२९१) की है, जो सम्भवत सोहणपाल का पुत्र हो। इनके अतिरिक्त एक देवली (स्मारक) वि० स० १६८२ (ई० स० १६२५) की गिरधरदास के पुत्र आसकर्ण की है।

यहा छापर नाम की एक खारे पानी की झील है, जिससे पहले नमक बनाया जाता था, पर अग्रेज सरकार के साथ किये हुए वि० स० १९६९ (ई० स० १९१३) के इक़रारनामे के अनुसार अब यह काम बन्द कर दिया गया है।

इस गाव से लगभग दो मील दक्षिण पश्चिम में चाहड़वास गांव है, जहा राव बीका के भाई राव बीदा के वशधरों में से खेतसी के पुत्र राम की वि० स० १६२५ (ई० स० १५६८) की और गोपालदास के पुत्र कुम्भकर्ण की वि० स० १६४५ (ई० स० १५८८) की देवलिया (स्मारक) हैं।

सुजानगढ़—यह बीकानेर से ७२ मील पूर्व दक्षिण में मारवाड़ की सीमा से मिला हुआ बसा है। इस स्थान का पुराना नाम खरबूजी का कोट था। पीछे से साडवा के जागीरदार को दूसरे स्थान में भूमि देकर उससे यह स्थान महाराजा सूरतसिंह ने वि० स० १८३५ (ई० स० १७७८) के आसपास लिया और इसका नाम सुजानसिंह के नाम पर रक्खा। यहा पुराना क़िला अब तक विद्यमान है, जिसका उक्त महाराजा के समय जीर्णोद्धार हुआ था। इसकी चारों ओर खाई तो नहीं

है पर धूल कोट है । यहा २७ मन्दिर, दो मस्जिदें तथा कई धर्मशालाए हैं ।

सुजानगढ़ से छ मील पश्चिमोत्तर में गोपालपुरा गाव है, जिसके आस पास पर्वत श्रेणिया हैं । राज्य भर मे यही एक ऐसा स्थल है, जहा पर्वत श्रेणिया दिखलाई पडती हैं । यह कहा जाता है कि पहले इस स्थान पर द्रोणपुर नाम का नगर था, जो पाडवों के आचार्य द्रोण ने बसाया था । पीछे से यहा परमारों का अधिकार हुआ जिन्हे निकालकर बागडी राजपूत यहा के स्वामी हुए । उनके बाद मोहिलो का आधिपत्य हुआ, जिनसे राठोड़ों ने यह स्थान लिया । राव बीका ने यह सारा प्रदेश अपने भाई बीदा को दिया था, जिससे अब तक इसका नाम बीदाहद (बीदावाटी) है ।

गोपालपुरा मे राव बीदा के पुत्र उदयकरण की वि० स० १५६५ (ई० स० १५०८) की देवली (स्मारक) है, जो प्राचीनता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

चरळू—छापर से १४ मील दूर बसा हुआ यह स्थान ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्व रखता है, क्योंकि यहा मोहिलों की बहुत सी देवलिया (स्मारक) हैं, जिनसे विष्णुदत्त देवसरा (?), आहड और अम्बराक नाम के चार मोहिल सरदारों के नाम ज्ञात होते हैं । इनमें से प्रथम की मृत्यु वि० स० १२०० (ई० स० ११४३) और अतिम की १२४१ (ई० स० ११८४) में हुई थी । आहड़ और अम्बराक के विषय में इन देवलियों से पता चलता है कि वे नागपुर (नागोर) की लड़ाई में मारे गये थे । इनसे तथा मोहिलों की अन्य देवलियों से यह सिद्ध हो जाता है कि वि० स० की १३ वीं शताब्दी के पूर्व ही उनका इस प्रदेश पर अधिकार हो गया था और उनकी पहली राजधानी चरळू ही थी ।

सालासर—यह बीकानेर से ८७ मील पूर्व दक्षिण में जयपुर की सीमा के निकट बसा है । यहा का हनुमान का मंदिर उल्लेखनीय है, जहा वर्ष में

दो बार, कातिक और वैशाख मे पूर्णिमा के दिन, मेले लगते हैं जिनमें दूर दूर के यात्री दर्शनार्थ आते हैं।

रतनगढ़—यह बीकानेर से ८० मील पूर्व में बसा है। सर्व प्रथम यहां महाराजा सूरतसिंह ने कौलासर नाम का एक मजरा बसाया था। महाराजा रत्नसिंह ने इसे वर्तमान रूप दिया। नगर में तथा उसके आस पास प्रायः दस पक्के तालाब और बीस कुए हैं, जिनमे से अधिकाश बडे सुन्दर हैं और उनके पास छत्रिया भी बनी हैं। चारों ओर चहारदिवारी भी है और दो छोटे छोटे क़िले भी विद्यमान है। यहा का प्रमुख मन्दिर जैनों का है। इसके अतिरिक्त कई विष्णु और शिव के मंदिर भी हैं।

चूरु—यह नगर बीकानेर से १०० मील पूर्व मे कुछ उत्तर की तरफ़ बसा है। ऐसी प्रसिद्धि है कि चूहरु नाम के एक जाट ने ई० स० १६२० के आसपास इसे बसाया था, जिससे इसका नाम चूरु पड़ा। शेखावाटी की ओर से अग्रसर होनेवाले व्यक्ति को यह नगर दूर से दिखाई नहीं पडता, क्योंकि बीच में रेत का एक ऊचा टीला आ गया है। कहा जाता है कि यहा का क़िला मालदे नामक व्यक्ति के उत्तराधिकारी खुशहालसिंह ने वि० स० १७६६ (ई० स० १७३६) में बनाया था। यहा के भवन विशाल और कुए अति सुन्दर हैं। मानस्टुअर्ट एल्फिन्स्टन ने, जो ई० स० १८०८ में इधर से गुजरा था, यहा के कुओं और अट्टालिकाओं की बड़ी प्रशसा की थी। इस नगर में कई प्राचीन मक़बरे और छत्रिया भी हैं।

सरदारशहर—यह बीकानेर से ८५ मील पूर्वोत्तर में बसा है। महाराजा सरदारसिंह ने सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व ही यहा पर एक क़िला बनवाया था। शहर की चारों तरफ टीले हैं, जिनसे इसका सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व रखनेवाली यहा एक छत्री है, जो वि० स० १२४१ (ई० स० ११८४) की है, परन्तु उसपर मोहिल इन्द्पाल के अतिरिक्त और कुछ पढ़ा नही जाता। इस देवली से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मोहिलों का प्रभाव पहले बहुत बढ़ा चढ़ा था और उनका राज्य यहा तक फैला हुआ था।

इसके तीन मील दक्षिण मे ऊदासर गाव है, जो इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के पास बसा है। यहा पर राव कल्याणमल के पुत्र रामसिंह की वि० स० १६३४ (ई० स० १५७७) की देवली (स्मारक) है।

रिणी—यह बीकानेर से १२० मील पूर्वोत्तर में बसा है। कहते हैं कि इसे राजा रिणीपाल ने कई हजार वर्ष पूर्व बसाया था। उसके अतिम वशधर जसवन्तसिंह के समय लगातार कई बार अकाल पड़ने के कारण जब यह नगर नष्ट हो गया तो चायल राजपूतों ने इसपर तथा इसके आस-पास के गावों पर अधिकार कर लिया। वि० स० की सोलहवी शताब्दी मे राव बीका ने उन्हे निकालकर यहा अपना आधिपत्य स्थापित किया। महाराजा गजसिंह का जन्म यहीं पर होने के कारण गजसिंहोत बीका इसे बड़ा शुभ स्थान मानते हैं। इस नगर की चारों तरफ भी शहरपनाह बनी है। वर्तमान किला महाराजा सूरतसिंह का बनवाया हुआ है। यहा भी कुछ छत्रिया तथा वि० स० ६६६ (ई० स० ८४२) का बना हुआ एक सुन्दर जैन मन्दिर है, जो बडा सुदृढ़ बना हुआ है। छत्रियो में से वि० स० १८०५ (ई० स० १७४८) की एक छत्री उल्लेखनीय है, जिसमे महाराज आनन्दसिंह की मृत्यु का उल्लेख है। जैन मन्दिर बहुत प्राचीन होते हुए भी देखने में अबतक नवीन ही जान पडता है। वि० स० १८७५ (ई० स० १८१८) के बने हुए रामदेवजी के मन्दिर मे प्रतिवर्ष एक मेला लगता है। निकट के जसरासर नाम के तालाब के पास के मन्दिर में भी प्रति मास एक मेला लगता है।

राजगढ़—बीकानेर से १३५ मील पूर्वोत्तर में बसा हुआ यह नगर वि० स० १८२२ (ई० स० १७६६) मे महाराजा गजसिंह ने अपने पुत्र राजसिंह के नाम पर बसाया था। यहा का किला उक्त महाराजा की आज्ञा से उसके मत्री महता बख्तावरसिंह ने बनवाया था।

दद्रेवा—यह बीकानेर से १२४ मील पूर्वोत्तर में बसा है। प्राचीनता की दृष्टि से महत्व रखनेवाला यहा वि० स० १२७० (ई० स० १२१३) का एक लेख है, जिसमें एक कुआ खुदवाये जाने का उल्लेख है तथा मडलेश्वर

गोपाल के पुत्र राणा जयतसिंह का नाम दिया है। इससे यह सिद्ध है कि वि० स० की १२ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे यहा पर चौहानों का राज्य था, जो अपने को राणा कहते थे। बीकानेर की ख्यातों में गोगादे सिद्ध का जन्म ददेवा में होना लिखा है। सभव है कि वह जयतसिंह का ही कोई वशधर रहा हो।

नोहर—यह बीकानेर से ११८ मील उत्तर पूर्व में बसा है। यहा एक जीर्ण शीर्ण किले के चिह्न अभी तक विद्यमान हैं। इस स्थान से १६ मील पूर्व मे गोगामेडी नामक स्थान है, जहा भाद्रपद के कृष्ण पक्ष में गोगासिद्ध की स्मृति मे मेला लगता है, जिसमे १०-१५ हजार आदमी एकत्र होते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि एक बार यहा की यात्रा कर लेने के बाद सर्प दश का भय नहीं रहता। इस स्थान से एक मील उत्तर में प्रसिद्ध गोरखटीला है। कहा जाता है कि यहा पहले गोरखनाथ नाम का सिद्ध रहता था।

नोहर मे वि० स० १०८४ (ई० स० १०२७) का एक लेख है।

हनुमानगढ़—यह बीकानेर से १४४ मील उत्तर पूर्व मे बसा है। यहा एक प्राचीन किला है, जिसका पुराना नाम भटनेर था। भटनेर भट्टीनगर का अपभ्रश है, जिसका अर्थ भट्टी अथवा भाटियों का नगर है।

बीकानेर राज्य के दो प्रमुख किलों में से हनुमानगढ़ दूसरा है। यह किला लगभग ५२ बीघे भूमि में फैला हुआ है और ईंटों से सुदृढ़ बना है। इसका जीर्णोद्धार होते होते सारा का सारा क़िला नया सा हो गया है। चारों ओर की दीवारों पर बुर्ज बने हैं। क़िले का एक द्वार कुछ अधिक पुराना प्रतीत होता है। प्रधान प्रवेशद्वार पर सगमर्मर के काम के चिह्न अब तक विद्यमान हैं। कहते हैं कि पहले इस किले में गुम्बद आदि बने हुए थे, पर ये सब तोड़ डाले गये और ईंटें आदि मरम्मत के काम में लगा दी गई। किले के एक द्वार के एक पत्थर पर वि० सं० १६७७ (ई० स० १६२०) खुदा है। उसके नीचे राजा का नाम तथा छः राणियों की आकृतिया भी बनी थीं जो अब स्पष्ट नहीं हैं। कहीं-कहीं ईंटें

पर अब भी फारसी एव अरबी के अक्षर खुदे हुए दीख पडते हैं। किले के भीतर का जैन उपासरा प्राचीन है। उसके भीतर की मूर्तियों में से तीन की पीठ पर क्रमश वि० स० १५०६ मार्गशीर्ष सुदि १० (ई० स० १४४६ ता० २५ नवम्बर), १५५६ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० १५०२ ता० २१ अक्टूबर) और १५६५ माघ वदि २ (ई० स० १५३६ ता० ६ जनवरी) के लेख खुदे हैं, जिनमें उक्त मूर्तियों की स्थापना के सम्बन्ध के उल्लेख हैं। किले मे एक लेख हि० स० १०१७ (वि० स० १६६५=ई० स० १६०८) का फारसी लिपि में लगा है, जिससे पाया जाता है कि उस (बादशाह) की आज्ञा से कछवाहे राय मनोहर ने उक्त सवत् मे वहा मनोहरपोल नाम का दरवाजा बनवाया।

हनुमानगढ़ किसका बसाया हुआ है, इसका ठीक पता नहीं चलता। पहले यह स्थान निर्जन पड़ा हुआ था, केवल दो कोस की दूरी पर दो गुम्बद थे, जिनके पास के टीले पर कुछ लोगों की बस्ती थी, जो भाटी थे। फिर सादात (जलालुद्दीन बुखारी के वंशधर) के समय में यह क़िला बनकर सम्पूर्ण हुआ, जिसे मारकर भाटियों ने यहा अपना अधिकार स्थापित किया। कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि महमूद गजनवी ने वि० सं० १०५८ (ई० स० १००१) में भटनेर लिया, पर यह कथन विश्वसनीय नहीं है। १३ वी शताब्दी के मध्य मे बलबन का एक सम्बन्धी शेरखा यहा का हाकिम था। कहा जाता है कि उसने भटिंडा और भटनेर के किलों की मरम्मत कराई थी और वि० स० १३२६ (ई० स० १२६६) में उसका भटनेर में देहात हुआ, जहा उसकी स्मृति मे एक कब्र (Tomb) बनी है। वि० स० १४४८ (ई० स० १३६१) मे भाटी राजा (राव) दुलचद से तैमूर ने भटनेर लिया। तत्कालीन तवारीखों मे लिखा है—"बहुत ही सुदृढ़ और सुरक्षित होने से यह क़िला हिन्दुस्तान भर में प्रसिद्ध है। यहा के लोगों के व्यवहार के लिए जल, एक बड़े हौज से आता है, जहा का वर्षा काल का एकत्रित पानी साल भर तक काम देता है।" इसके बाद यहा क्रमश भाटियों, जोहियों और चायलों का अधिकार हुआ। वि० स० १५८४ (ई० स० १५२७) मे बीकानेर के चौथे शासक राव जैतसिंह

ने यहा राठोड़ों का आधिपत्य स्थापित किया। इसके ११ वर्ष बाद बाबर के पुत्र कामरा ने इसे जीता। फिर कुछ दिनो तक चायलो का अधिकार रहा, जिनसे पुन राठोडों ने इसे लिया। बीस वर्ष बाद शाही खजाना लूटे जाने के अपराध म बादशाह की आज्ञा से हिसार के सूबेदार ने इसे शाही राज्य में मिला लिया। बीच में कई बार इसके अधिकारियों में परिवर्तन हुए। अन्त में महाराजा सूरतसिंह के समय वि० स० १८६२ (ई० स० १८०५) मे पाच मास के विकट घेरे के बाद राठोड़ों ने इसे जाब्ताखा भट्टी से छीना और यहा बीकानेर राज्य का अधिकार हुआ। मगलवार के दिन अधिकार होने क कारण इस किले में एक छोटा सा हनुमानजी का मदिर बनवाया गया और उसी दिन से इसका नाम हनुमानगढ रक्खा गया।

घग्गर के आस पास का प्रदेश प्राचीन काल मे बीकानेर राज्य का सब से सम्पन्न भाग था, अतएव शिल्पकला का विकास भी यहा ही अधिक हुआ था। पत्थर की कमी के कारण यहा मिट्टी पकाकर उसकी बडी सुन्दर मूर्तिया आदि बनाई जाती थी। हनुमानगढ़ मे इस तरह के काम के जो उदाहरण मिले हैं वे बड़े उत्कृष्ट और उच्चकोटि की कला के परिचायक हैं। क़िले के भीतर के एक टीले के नीचे १५ फुट की गहराई में पकी हुई मिट्टी के बने स्तम्भ के दो शिरोभाग (Terra Cotta Capitals) पाये गये, जिनके किनारो पर सीढी सहित शकु आकृति के मीनारे (Pyramids) बने है। भीतर के तीसरे द्वार के निकट से दो भाग में टूटी हुई पक्की मिट्टी की चौकी मिली, जो उसी समय की बनी है, जिस समय के उपर्युक्त शिरोभाग हैं। भीतर के दूसरे अथवा मध्य द्वार के निकट लाल पत्थर का बना द्वार स्तम्भ (Door jamb) है, जिसके ऊपर तीन चतुष्कोण पटरिया बनी हैं, जिनम से दो पर मनुष्य की आकृतियां और तीसरे पर सूर्य की बैठी हुई मूर्ति बनी है, जो हाथों में दो कमल के फूल लिये है।

हनुमानगढ़ के निकट ही भद्रकाली, पीर सुलतान, मुडा, डोबेरी, कालीबग आदि स्थान हैं, जहा से भी प्राचीन कला के अवशेष मिले हैं।

मुडा का स्तूप अन्य स्तूपो से बडा है। इसके निकट ही एक कटहरे का काम देनेवाले स्तम्भ का टुकडा है, जिसके मध्य में कमल पुष्प बना है। पीर सुलतान में मिली हुई पकी हुई मिट्टी की बनी स्त्री की टूटी आकृति बडी उत्कृष्ट कला का उदाहरण है और गान्धार शैली की जान पडती है। डोबेरी मे एक सुदृढ़ नगर के अवशिष्ट चिह्न प्राप्त हुए हैं।

गगानगर—यह बीकानेर से १३६ मील उत्तर मे बसा है। पहले यहा कोई आबादी नही थी और यह हिस्सा ऊजड तथा 'दुले की बार' नाम से प्रसिद्ध था। फिर इधर कुछ गाव आबाद हुए, जिनमे वर्तमान गगानगर से एक मील दूरी पर रामनगर नामक गाव आबाद हुआ। वर्तमान महाराजा साहब ने जब पजाब जिले के फीरोजपुर से बीकानेर राज्य मे गगानहर लाने का कार्य आरभ किया उस समय व्यापार के लिए यहा मडी बनाना स्थिर हुआ और वि० स० १६८४ (ई० स० १६२७) मे इस स्थान की नींव दी गई। यहा दूर दूर के लोग अपना नाज बेचने के लिए आते हैं और राज्य के उद्योग से यहा बहुत बडी मडी हो गई है। यह गगानगर निजामत का मुख्य स्थान है। इसमे एक 'कॉटन प्रेस एन्ड जिनिंग फैक्टरी' है तथा और भी कई फैक्टरिया हैं। वि० स० १६६१ (ई० स० १६३४) मे राज्य ने यहा की खास तौर पर मर्दुमशुमारी की तो १०५७६ मनुष्यो की आबादी पाई गई। इस मडी का निर्माण बडी सुदरता से हुआ है और मुख्य सडके तो जयपुर नगर की प्रसिद्ध सडकों के समान बहुत चौडी हैं। यहा कई भव्य मकान भी बने हैं और बनते जाते हैं। राज्य की तरफ से यहा कई बडे अफसर रहते हैं और इधर के माल सीगे का रेवेन्यु अफसर भी यही रहता है।

लाखासर—यह बीकानेर से ११० मील उत्तर मे कुछ पूर्व की तरफ बसा है। कहते हैं कि हरराज ने अपने पिता के नाम पर इसे बसाया था। ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्थान दो देवलियो के लिए प्रसिद्ध है। एक देवली वि० स० १६०३ (ई० स० १५४६) की है, जो सम्भवत राव बीका के चाचा लाखा रणमलोत की हो। इसके निकट ही हरराज के पौत्र सुरताण की वि० स० १६५० (ई० स० १५९३) की देवली है।

सूरतगढ़—यह बीकानेर से ११३ मील उत्तर में कुछ पूर्व की तरफ बसा है। यहा एक किला भी था। वि० स० १८६२ (ई० स० १८०५) में महाराजा सूरतसिंह ने यहा नया किला बनवाया और उसका नाम सूरतगढ़ रक्खा। यह किला सारा ईंटों का बना है, जिनमें से बहुत सी ईंटें आदि बौद्ध स्थानों से लाकर लगाई गई हैं। ईंटें कुछ तो सादी और कुछ खुदाई के काम से भरी हैं। मिट्टी की बनी अधिक महत्व की वस्तुए बीकानेर के किले में सुरक्षित हैं। इनमे हडजोरा की पक्तियों, गरुड, हाथी, राक्षस आदि की आकृतिया बनी हैं और गाधार शैली की छाप स्पष्ट दीख पडती है। कहते हैं कि ये सब ईंटें आदि रगमहल नामक गाव से लाई गई थी।

रगमहल गाव सूरतगढ़ से दो मील उत्तर-पूर्व मे स्थित है। बीकानेर के किले में सुरक्षित शिवपार्वती, कृष्ण की गोवर्धन लीला तथा एक पुरुष और स्त्री की पकी हुई मिट्टी की बनी मूर्तिया इसी प्राचीन स्थान से मिली थीं। कहते हैं कि यह स्थान पहले जोहिये सरदारो की राजधानी थी, जिनके समय में टॉड के कथनानुसार यहा सिकन्दर महान् का आगमन हुआ था। यहा एक प्राचीन बावली (Step-well) है, जिसमें २$\frac{1}{2}$ फुट लम्बी और उतनी ही चौडी ईंटें लगी हैं।

सूरतगढ़ से ७ मील उत्तर पूर्व में बडोपल नामक गाव है। यहा भी बौद्धकालीन प्राचीन कला की वस्तुओं के अवशेष विद्यमान हैं।

दूसरा अध्याय

राठोडों से पूर्व का प्राचीन इतिहास

राठोडों का बीकानेर राज्य पर अधिकार होने से पूर्व यह प्रदेश कई भागों मे विभक्त था। मरुभूमि और आबादी कम होने के कारण विजेताओ का इस तरफ ध्यान कम ही रहा, जिससे यहा के शासक स्वाधीनता का उपभोग करते रहे। महाभारत के समय वर्तमान बीकानेर राज्य 'कुरु राज्य' के अन्तर्गत था। इसके पीछे यहा किन किन राजवशो का अधिकार रहा, यह ज्ञात नही होता। प्रतापी मौर्य्यों, यून नियों, क्षत्रपो, गुप्तवशियों और प्रतिहारों का इस प्रदेश पर राज्य रहा या नही, इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता, क्योंकि पुरातत्वानुसधान से इस राज्य के सबध की इतिहास सबधी जो सामग्री प्राप्त हुई है, वह ग्यारहवी शताब्दी से पूर्व की नही है। फिर भी उपर्युक्त सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस राज्य पर जोहियो, चौहानों, साखलों (परमारों), भाटियों और जाटों का अधिकार अवश्य रहा। अतएव उनका यहा सक्षेप से परिचय दिया जाता है।

जोहिये

जोहियों के लिए सस्कृत लेखों आदि में 'यौधेय' शब्द मिलता है। यह बहुत प्राचीन क्षत्रिय जाति है। इसका वर्णन हमने ऊपर पृ० २२ २३ (टिप्पण १) में किया है। इनका मूल निवास पजाब में था। इन्हीं के नाम से सतलज नदी के दोनों तटों पर का भावलपुर राज्य के निकट का प्रदेश अभी तक 'जोहियावार' कहलाता है। बीकानेर राज्य का उत्तरी भाग पहले जोहियों के अधिकार में था। राठोड़ राव सलखा का छोटा पुत्र बीरम, अपने भाई माला (मल्लीनाथ) के पौत्रों द्वारा मालाणी से

निकाला जाने पर, जोहियो के पास आ रहा था। जब उस(वीरम)ने जोहियों के साथ दगा करने का विचार किया तो जोहियो ने उसको मार डाला। वि० स० की सोलहवी शताब्दी म जोधपुर के राव जोधा के पुत्र बीका ने मारवाड की तरफ से जागलू की तरफ बढकर अपने लिए बीकानेर नामक नवीन राज्य की स्थापना की। उस समय राव बीका के बढ़ते हुए प्रताप को देखकर जोहियो ने भी उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। उस समय से ही इधर के जोहियो का इलाक़ा बीकानेर राज्य के अधिकार में आ गया।

चौहान

चौहानों की पुरानी राजधानी नागोर (अहिच्छत्रपुर) थी। वहा से वे लोग साभर की तरफ बढ़े और वहा अपनी राजधानी स्थापित की। साभर का समीपवर्ती प्रदेश 'सपादलक्ष' कहलाता था। चौहानों का राज्य साभर में होने से वे साभरिये (सपादलक्षीय) चौहान कहलाने लगे।

बीकानेर राज्य से चौहानों के शिलालेख विक्रम की बारहवीं शताब्दी से मिलते हैं, परतु वे स्मारक छत्रियों के ही हैं। वि० स० की तेरहवी शताब्दी के प्रारम्भ में प्रसिद्ध चौहान राजा विग्रहराज (बीसलदेव) चतुर्थ ने दिल्ली हासी, हिसार आदि प्रदेशो पर अधिकार कर लिया था। इससे यह अनुमान होता है कि बहुधा यह सारा राज्य चौहान साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया हो। बीकानेर राज्य मे चौहानो के सिक्के भी मिलते हैं। ई० स० १६३२ (वि० स० १६८६) मे हनुमानगढ़ (भटनेर) से चौहान राजा अजयराज (अजयदेव) का एक तावे का सिक्का मुझको मिला, जिसपर उसकी राणी सोमलदेवी का नाम अकित है। इससे पाया जाता है कि साभर के चौहानो के सिक्के यहा चलते थे और यहा उनके सामत रहते थे।

छापर और द्रोणपुर के आसपास का प्रदेश मोहिलवाटी कहलाता था। मोहिल, चौहानों की ही एक शाखा है। नैणसी ने लिखा है कि

चाहमान के वंश में सजन का पुत्र मोहिल हुआ। मोहिल ने यहां के प्राचीन वागडिये राजपूतों को, जिन्होंने शिशुपालवंशी डाहलियों से छापर और द्रोणपुर का इलाका छीन लिया था, परास्तकर उनका अधीकृत प्रदेश छीन लिया, जहां कई पीढ़ी तक उनका अधिकार रहा। फिर रूण की तरफ से सांखले (परमार) रायसी (महीपाल का पुत्र) ने इधर आकर जांगलू पर अधिकार कर लिया। देशणोक के पास रासीसर नामक प्राचीन गांव है, जिसके लिए कहा जाता है कि उसे सांखला रायसी ने बसाया था। वहां चौहान लाखण के पुत्र विक्रमसिंह की मृत्यु का वि० सं० १२८८ ज्येष्ठ वदि ३० (ई० स० १२३१ ता० ३ मई) शनिवार का स्मारक लेख है। उससे पाया जाता है कि रासीसर तक मोहिल चौहानों का अधिकार था। सम्भव है कि सांखलों (पवारों) ने कुछ भूमि चौहानों की भी दबाकर वहां अपना आधिपत्य किया हो। तथापि बीकानेर राज्य का दक्षिणी पूर्वी भाग तथा मारवाड़ का लाडनू परगना मोहिलों के अधिकार में रहना पूर्ण रूप से सिद्ध है। इन मोहिलों की उपाधि 'राणा' थी, ऐसा उनके प्राचीन लेखों तथा नैणसी की ख्यात से पाया जाता है। जोधपुर के राव जोधा द्वारा मोहिल चौहान अजीतसिंह के मारे जाने के बाद राठोड़ों और मोहिलों में वैर हो गया तथा उनमें कई लड़ाइयां हुईं। अनन्तर पारस्परिक फूट से मोहिलों के निर्बल हो जाने पर राव जोधा ने उनपर आक्रमण कर उनका सारा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इसपर मुसलमान सेनाध्यक्ष सारंगखां की सहायता से उन्हों (मोहिलों) ने अपने इलाके को पुनः राठोड़ों से छीन लिया। तब बीकानेर से राव बीका ने मोहिलों पर चढ़ाई कर उन्हें परास्त किया और मोहिलवाटी को विजय कर वह प्रदेश अपने भाई बीदा को दे दिया। बीका की इस सहायता के बदले में बीदा ने राव बीका की अधीनता स्वीकार की। तब से उसके वंशज बीकानेर राज्य के अधीन चले आते हैं।

बीकानेर राज्य से चौहानों के कई स्मारक लेख मिले हैं।

सांखले (परमार)

साखलो को वि० स० १३८१ (ई० स० १३२४) के लिये सस्कृत शिलालेख मे 'शखुकुल' शब्द लिखा है। उनकी एक शाखा का रूण (जोधपुर राज्य) में निवास था, जिससे वे रूण के साखले भी कहलाने लगे। उनकी उपाधी 'राणा' थी। विक्रम की बारहवी शताब्दी के आस पास साखले महीपाल का पुत्र रायसी बीकानेर राज्य के जागलू प्रदेश मे गया और वहा रहने लगा। रासीसर (रायसीसर) गाव में एक देवली पर वि० स० १२८८ ज्येष्ठ वदि ३० (ई० स० १२३१ ता० ३ मई) शनिवार का लेख है, जिससे अनुमान होता है कि जागलू पर साखलों का अधिकार होने के पूर्व चौहानों का अधिकार रहा हो और सम्भवत रायसी ने चौहान लाखण के पुत्र विक्रमसिंह को मारकर उस प्रदेश पर अधिकार किया हो तथा रासीसर नाम रायसी के समय वह गाव बसने से प्रसिद्ध हुआ हो।

रायसी के पीछे उसका पुत्र अणखसी जागलू का स्वामी हुआ। बीकानेर राज्य का अणखीसर गाव अणखसी के बसाये जाने से उसका नाम अणखीसर प्रसिद्ध हुआ। अणखसी के बाद खींवसी और उसके बाद कुमरसी (कुवरसी, कुमारसिंह) हुआ। कुमरसी के दो पुत्रों (विक्रमसी और प्रतापसी) की देवलिया रासीसर गाव में बनी हुई हैं, जिनमें उनके मृत्यु-सवत् क्रमश वि० स० १३८२ और १३८६ (ई० स० १३२५ और १३२९) दिये हैं। कुमरसी की एक पुत्री दूलहदेवी थी, जिसका विवाह जैसलमेर के रावल कर्णदेव के साथ हुआ था। उसने वि० स० १३८१ (ई० स० १३२४) में घासी-वरसिंहसर में तालाव बनवाया।

कुमरसी के पीछे राजसी, मूजा, ऊदा, पुन्यपाल और माणकपाल ने क्रमश जागलू का अधिकार पाया। माणकराव का पुत्र नापा साखला था। उसके समय में वहा बिलोच जाति के मुसलमानों के आक्रमण होने लगे, जिससे साखले निर्बल हो गये। फिर नापा जोधपुर के राव जोधा के

पास गया और वहा कुवर बीका को नवीन राज्य स्थापित करने को उद्यत देख जागलू पर अधिकार करने की सलाह दी। तब वि० स० १५२२ (ई० स० १४६५) मे बीका ने जागलू की तरफ जाकर उस प्रदेश को जीता और नापा ने राव बीका की अधीनता स्वीकार कर ली। नापा के इस कार्य से राव बीका का उसपर दृढ विश्वास हो गया और उस (नापा) के वशज भी वर्षो तक राज्य के विश्वासपात्र सेवक बने रहे, जिसका वर्णन यथा प्रसङ्ग किया जायगा।

भाटी

बीकानेर के पश्चिमोत्तर का सारा प्रदेश, जो जैसलमेर राज्य की सीमा से पजाब की सीमा तक जा मिलता है, बीकानेर राज्य की स्थापना के पूर्व भाटियों के अधिकार मे था, जो वहा लूटमार भी किया करते थे। उनके भी दो भाग थे। पश्चिम की तरफ जैसलमेर राज्य की सीमा से मिले हुए पूगल प्रदेश के भाटी राजपूत और उत्तर की तरफ भटनेर के आस-पास बसनेवाले भाटी मुसलमान थे, जो भट्टी कहलाने लगे। जब राव बीका ने जागलू की तरफ बढकर वहा अपना अधिकार किया उस समय भाटी राव शेखा पूगल का स्वामी था, जिसको मुसलमानो ने पकड़ लिया था। राव बीका ने शेखा की स्त्री की प्रार्थना पर शेखा को कैद से छुड़वा दिया। इसपर शेखा की पुत्री का विवाह राव बीका से हो गया। फिर राव बीका ने वर्तमान कोडमदेसर गाव के निकट अपनी राजधानी बनाने के लिए दुर्ग बनवाना चाहा, जिससे भाटियो को उससे भय हो गया और उन्होंने उसे रोका, किन्तु उसने ध्यान नहीं दिया। तब भाटी जैसलमेर से सेना लेकर आये और राव बीका से युद्ध हुआ। भाटियो से निरन्तर झगड़ा होने की सम्भावना देख अन्त में राव बीका ने कोडमदेसर को छोडकर वहा से दक्षिण पूर्व की तरफ जाकर वि० स० १५४२ (ई० स० १४८५) में किला बनवाया, जो राजधानी बीकानेर मे नगर के भीतर है। फिर वहा शहर बसाकर उसने उसका नाम बीकानेर रक्खा। राव बीका के बढ़ते हुए प्रताप

को देखकर राव शेखा ने भी बीका की अधीनता स्वीकार कर ली और पूगल बीकानेर राज्य के अन्तर्गत हो गया।

इसी प्रकार राव बीका ने उत्तर की तरफ बढ़कर वहा भी अपनी विजय पताका फहराई और भटनेर की तरफ के भट्टियों पर अपना आतङ्क स्थापित किया, परतु उधर के प्रदेश पर बीकानेर के नरेशों का लगातार अधिकार न रहा। दिल्ली की मुसलमान सलतनत समीप होने के कारण उधर का प्रदेश कभी कभी मुसलमानों के अधीन रहा। मुग़लों के राज्य समय मे यह इलाका फिर बीकानेर राज्य मे आया, परन्तु अधिक समय तक उसपर बीकानेर राज्य का अधिकार न रहा। मुगल साम्राज्य की निर्बलता के दिनों मे कई बार इस इलाक़े पर बीकानेर के महाराजाओ ने अधिकार किया, पर भट्टियो ने उनका वहां अधिकार स्थिर न रहने दिया। अत मे महाराजा सूरतसिंह ने भट्टियो का दमन कर सारा इलाक़ा और भटनेर दुर्ग, जो अब हनुमानगढ़ कहलाता है, अपने राज्य में मिला लिया।

जाट

बीकानेर राज्य के आसपास का बहुत सा इलाका जाटों के अधिकार में था और शासकों का ध्यान उस ओर न रहने से वे एक प्रकार से स्वाधीनता का उपभोग करते थे। आत्मरक्षार्थ उन्होंने अपना बल भी बढ़ा लिया था। उनकी यहा कई जातिया थी और उनका इलाका कई भागों में बटा हुआ था। गोदारा जाट पाडू और सारन जाट पूला (फूला) के पारस्परिक झगड़े में राव बीका ने पाडू का पक्ष लिया। फलत पूला के सहायक नरसिंह के मारे जाने पर राव बीका का उनपर पूरा आतङ्क जम गया और युद्ध के समय वे भाग गये। अत मे उन्होंने राव बीका की अधीनता स्वीकार कर ली। उनका सारा इलाका बिना रक्तपात के उसके अधिकार में आ गया और जाट साधारण प्रजा की भाति भूमि-कर देकर निवास करने लगे।

तीसरा अध्याय

राव बीका से पूर्व के राठोडो का संक्षिप्त परिचय

बीकानेर के महाराजा जोधपुर के राठोड राव जोधा के पुत्र बीका के वंशधर हैं। राठोडों का प्राचीन इतिहास महत्वपूर्ण है, अतएव जोधपुर राज्य के इतिहास में विस्तृत रूप से उसका उल्लेख किया गया है, परन्तु वशक्रम मिलाने के लिए यहा भी सक्षेप से उसका परिचय दिया जाता है।

'राठोड' शब्द केवल भाषा मे ही प्रचलित है। सस्कृत पुस्तकों, शिलालेखों और दानपत्रों मे उसके लिए 'राष्ट्रकूट' शब्द मिलता है।

राठोड़ शब्द की उत्पत्ति

प्राकृत शब्दों की उत्पत्ति के नियमानुसार 'राष्ट्रकूट' शब्द का प्राकृत रूप 'रट्टऊड' होता है, जिससे 'राठऊड' या 'राठोड' शब्द बनता है। 'राष्ट्रकूट' के स्थान में कही कहीं 'राष्ट्रवर्य' शब्द भी मिलता है, जिससे 'राठवड' शब्द बना है। 'राष्ट्रकूट' और 'राष्ट्रवर्य' दोनो शब्दों का अर्थ एक ही है, क्योकि 'राष्ट्रकूट' का अर्थ 'राष्ट्र' जाति या वश का शिरोमणि है और 'राष्ट्रवर्य' का अर्थ 'राष्ट्र' जाति अथवा वश मे श्रेष्ठ है[1]।

राठोड़ों का प्राचीन उल्लेख अशोक के पांचवे प्रज्ञापन में गिरनार, धौली, शहबाजगढ़ी और मानसेरा के लेखों मे पेठनिक(पैठनवालों)के साथ समास मे मिलता है, जिससे पाया जाता है कि उस समय ये दक्षिण के निवासी थे। बहुत पहले से राजा और सामन्त अपने वश के नाम के साथ 'महा' शब्द लगाते रहे हैं, जिससे राष्ट्रवशी अपने को 'महाराष्ट्र' अथवा 'महाराष्ट्रिक' लिखने लगे। देशो के नाम बहुधा उनमे बसनेवाली या उनपर अधिकार जमानेवाली

राठोड़वश की प्राचीनता

(१) राठोड़ शब्द के लिए 'राष्ट्रोड़' शब्द भी मिलता है, जो सस्कृत साचे में ढाला हुआ राठोड शब्द का ही सूचक है।

जातियों के नाम से प्रसिद्ध होते रहे हैं। 'महाराष्ट्र' जाति के अधीन का दक्षिण देश 'महाराष्ट्र' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दक्षिण मे राठोड़ों का प्रताप

मौर्य्यवशी राजा अशोक से लगाकर वि० स० ५५० (ई० स० ४९३) के आस पास तक राठोडों का कुछ भी इतिहास नही मिलता। केवल कही कही नाम मात्र का उल्लेख है।

दक्षिण के येवूर गाव के सोलकियों के वशावलीवाले शिलालेख से पाया जाता है कि वि० स० ५५० (ई० स० ४९३) के लगभग राष्ट्रकूट राजा कृष्ण के पुत्र इद्र को, जिसकी सेना मे ८०० हाथी थे, सोलकी राजा जयसिंह ने जीता और वहा सोलकी राज्य की स्थापना की। इससे स्पष्ट है कि वि० स० ५५० (ई० स० ४९३) के कई वर्ष पूर्व राठोड़ों का दक्षिण में राज्य जम चुका था और वे बडे शक्तिशाली थे।

सोलकी राजा जयसिंह द्वारा दक्षिण मे सोलकी राज्य की स्थापना होने पर भी राठोडों के पास उनके राज्य का कुछ अश विद्यमान था। राठोड़ राजा दतिवर्मा के पौत्र गोविंदराज ने सोलकीवश के राजा पुलकेशी (वि० स० ६६७-६९५=ई० स० ६१०-६३८) पर चढ़ाई की, परतु फिर उसने मेल कर लिया।

तब से लगभग १५० वर्ष तक दक्षिण मे सोलकियों का राज्य उन्नत रहा। इसके पीछे उपरोक्त गोविंदराज के प्रपौत्र दतिदुर्ग ने वि० स० ८११ (ई० स० ७५४) के लगभग माही और रेवा नदियों के बीच का प्रदेश (लाटदेश) विजय किया तथा राजा वल्लभ (सोलकी राजा) को भी जीतकर 'राजाधिराज' और 'परमेश्वर' के विरुद धारण किये। इनके अतिरिक्त उसने कलिंग, कौशल, श्रीशैल, मालव, टक आदि देशों के राजाओं को जीतकर 'श्रीवल्लभ' नाम धारण किया। उसने काची, केरल, चोल तथा पाड्य देशों एव श्रीहर्ष (कन्नौज का प्रसिद्ध राजा) तथा वज्रट को जीतनेवाले कर्णाटक (सोलकियो) के असख्य लश्कर को जीता, जो अजेय कहलाता था। दतिदुर्ग के पीछे राठोड़ों के इस महाराज्य का स्वामी उसका चाचा कृष्णराज हुआ, जिसने अपने राज्य की

और भी वृद्धि की। उसका बनवाया हुआ एलोरा (निजाम राज्य) का 'कैलाश' मदिर ससार की शिल्पकला का अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है।

कृष्णराज के बाद गोविंदराज (दूसरा) हुआ, जिसे परास्त कर उसका भाई ध्रुवराज राज्य का स्वामी बना। ध्रुवराज बडा पराक्रमी राजा था। उसने कौशल और उत्तराखड के कई राजाओ को परास्त किया। उसका राज्य रामेश्वर से अयोध्या तक फैला हुआ था। तदनन्तर गोविंद राज तीसरा सिंहासनारूढ़ हुआ। वह गुजरात और मालवे को अधीन कर विंध्याचल के निकट तक जा पहुचा। तुगभद्रा, वेगी, गगवाडी, केरल, पाड्य, चोल और काची के नरेशो को परास्त कर उसने सिंहल के राजा को अपने अधीन बनाया। फिर उसने प्रतिहार राजा नागभट को हराकर मारवाड मे भगा दिया। गोविंदराज की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र अमोघ वर्ष दक्षिण के महाराज्य का स्वामी हुआ जो बडा प्रतापी था। मान्यखेट (मालखेड, निजाम राज्यान्तर्गत) उसकी राजधानी थी। उसने भी कई राजाओ को परास्त कर अपने राज्य का विस्तार बढ़ाया। सिलसिल तु-त्तवारीख के लेखक सुलेमान सौदागर ने, जो उसका समकालीन था, उसके विषय में लिखा है कि वह दुनिया के चार बडे बादशाहो मे से एक था।

अमोघवर्ष से लगाकर उसके सातवे वश धर कृष्णराज (तीसरा) तक दक्षिण का राठोड राज्य उन्नत रहा। अरब यात्री अल मसऊदी ने, जो कृष्ण राज (तीसरा) के समय विद्यमान था, हि० स० ३३२ (वि० स० १००१= ई० स० ९४४) मे 'मुरु जल जहब' नामक पुस्तक की रचना की, जिसमे लिखा है—"इस समय हिंदुस्तान के राजाओं मे सब से बडा मान्यखेट नगर का राजा बलहरा (राठोड) है। हिंदुस्तान के बहुत से राजा उसको अपना मालिक मानते हैं। उसके पास हाथी और असख्य लश्कर है, जिसमें पैदल सेना अधिक है, क्योकि उसकी राजधानी पहाड़ो मे है।"

समय के परिवर्त्तन के अनुसार कृष्णराज (तीसरा) के छोटे भाई खोट्टिग के समय इस महाराज्य की अवनति होने लगी। मालवे के परमार, जो पहले राठोडो के सामत थे, उस(खोट्टिग)के विरोधी हो गये और

वि० स० १०२६ (ई० स० ६७२) में उस(खोट्टिग)को मालवे के परमार राजा श्रीहर्ष (सीयक) ने परास्त कर उसकी राजधानी मान्यखेट को लूटा। तदनन्तर वि० स० १०३० (ई० स० ६७३) मे खोट्टिग के उत्तराधिकारी कर्कराज (दूसरा) से सोलकी राजा तैलप ने दक्षिण के राठोडों का महाराज्य छीन लिया। इस समय गगवशी नोलबातक मारसिंह एव कतिपय राठोड सरदारों ने कृष्णराज (तीसरा) के पुत्र इन्द्रराज (चौथा) को गद्दी पर बैठाकर राठोड राज्य क़ायम रखने का प्रयत्न किया, पर उसमे सफलता नही मिली और थोड़े समय के अन्तर से मारसिंह और इन्द्रराज (चौथा) अनशन करके मर गये।

राठोड़वश का अन्य शाखाए

दक्षिण के राठोडो की कई छोटी शाखाए थी, जिनको जागीर में गुजरात (लाट), काठियावाड और सौंदत्ति (बबई आहाते के धारवाड़ जिले के परसगढ़ विभाग मे) के प्रदेश मिले हुए थे। गुजरात के राठोड राज्य का वि० स० ६४५ (ई० स० ८८८) तक विद्यमान होना पाया जाता है। उसके पीछे मान्यखेट के राठोड़ राजा कृष्णराज (दूसरा) ने गुजरात पीछा अपने राज्य में मिला लिया, किन्तु सौंदत्ति की शाखा, मान्यखेड का विशाल राज्य सोलकियों द्वारा छिन जाने पर भी वि० स० १२८५ (ई० स० १२२८) तक वहा पर अपना अधिकार रखती थी और सोलकियों के अधीन थी। पश्चात् सौंदत्ति का राज्य देवगिरि के यादव राजा सिंघण ने छीन लिया।

इनके अतिरिक्त मध्यप्रात, राजपूताना तथा बदायू (सयुक्त प्रान्त) में भी राठोडो के छोटे बड़े राज्य रहे थे। यही नही बिहार के गया (पीजी) में भी राठोड राज्य होना पाया जाता है।

मध्य प्रात में मानपुर (सभवत मऊ के आसपास) और बेतुल (मध्य प्रदेश) मे विक्रम की सातवीं शताब्दी के आस पास तक राठोड़ों का अधिकार था, पर उनका स्वतन्त्र राज्य होना पाया नहीं जाता। भोपाल राज्य के पथारी में वि० स० ६१७ (ई० स० ८६०) मे राठोडों का अधिकार था।

बुद्ध गया (बिहार) से मिले हुए एक शिलालेख में क्रमश राठोड़ नन्न, कीर्तिराज और तुग के नाम मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि उपर्युक्त व्यक्तियों का दसवी शताब्दी में बुद्ध गया से सबध था।

राजपूताने में हठुडी (जोधपुर राज्य) मे वि० स० ९९३ से १०५३ (ई० स० ९३६ से ९९६) के कुछ पीछे तक और धनोप (शाहपुरा राज्य) में वि० स० १०६३ (ई० स० १००६) मे राठोडो का अधिकार था।

सयुक्त प्रान्त के बदायू नामक स्थान मे राठोडो का राज्य विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी के आस पास जम गया था। फिर उन्होंने प्रतिहारो की निर्बलता का अवसर पाकर कन्नौज के राज्य पर भी अपना अधिकार कर लिया, किन्तु वहा वे अपना अधिकार स्थिर न रख सके और गाहडवाल चद्रदेव ने उनसे कन्नौज का राज्य छीन लिया। तब से वे गाहडवालों के सामत हो गये। वि० स० १२५० (ई० स० ११९३) में शहाबुद्दीन गोरी ने कन्नौज के अतिम गाहडवाल राजा जयचंद्र पर विजय प्राप्तकर वहा अपना अधिकार कर लिया। ई० स० ११९६ (वि० स० १२५३) मे कुतुबुद्दीन ऐबक ने बदायू को विजयकर वहा भी मुसलमानों का अधिकार स्थापित किया।

बीकानेर के महाराजा रायसिंह की बनवाई हुई बीकानेर दुर्ग के सूरजपोल की सस्कृत की वि० स० १६५० माघ सुदि ६ (ई० स० १५९४ ता० १७ जनवरी) गुरवार की बृहत् प्रशस्ति में भाटों के कथानुसार राजपूताना के वर्तमान राठोड़ों को कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द्र का वशधर लिखा है और यहां के राठोड़ अब तक अपने को जयचन्द्र का ही वशधर मानते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है। जयचन्द्र वस्तुत गाहडवाल था। उसके पूर्वजो के ताम्रपत्रों और शिलालेखों मे उनको कही भी राठोड़ नही लिखा है, वरन् कई स्थलों पर गाहड़वाल ही लिखा है, जो अधिक माननीय है। इन ताम्रपत्रो के आधार पर आधुनिक पुरातत्त्ववेत्ता भी ऐसा ही मानते हैं। ये दोनों जातिया भिन्न होने से अब भी जहा गाहड़वालों की आबादी है वहा राठोडोंके साथ

जयचन्द और राठोड

उनके विवाह सम्बन्ध होते हैं। इसका विशद विवेचन हमने जोधपुर राज्य के इतिहास म किया है।

कन्नौज के महाराज्य पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने के बाद कुवर सेतराम का पुत्र राठोड सीहा वि० स० १३०० (ई० स० १२४३) के आस पास राजपूताने में आया और पाली नगर मे ठहरा, जहा के ब्राह्मण बडे सम्पन्न थे और उनका व्यापार दूर दूर तक चलता था। उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर उस(सीहा)ने वहा के आस पास के प्रदेश पर दखल जमाना आरम्भ किया। वि० स० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० स० १२७३ ता० ९ अक्टोबर) सोमवार को किसी लडाई मे बीठू गाव (पाली से १८ मील उत्तर पश्चिम) मे उसकी मृत्यु हुई। सीहा की मृत्यु के उपरात आस्थान अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ, जिसके समय मे उसके भाई सोनिंग ने गोहिलो से खेड का इलाका लिया। तदनन्तर उस (आस्थान)का पुत्र धूहड हुआ, जिसकी वि० स० १३६६ (ई० स० १३०९) में पचपदरा परगने के तिंगडी (तिरसीगडी) गाव मे मृत्यु हुई।

राठोड़ों के मूल पुरुष राव साहा से राव जोधा तक का सक्षिप्त परिचय

धूहड के पीछे रायपाल, कन्हपाल, जाल्हणसी, छाडा, टीडा और सलखा हुए। राव सलखा के ज्येष्ठ पुत्र माला (मल्लीनाथ) ने महेवा का प्रात विजय किया, जो मालाणी कहलाता है। उसने अपनी उपाधि रावल रक्खी। उसके वशज महेचे कहलाये और मालाणी के स्वामी रहे। मल्लीनाथ के छोटे भाइयो मे से एक वीरम था, जिसने महेवा का परित्याग कर वर्तमान बीकानेर राज्य मे आकर निवास किया और यहा जोहियो के साथ की लडाई में मारा गया।

वीरम का पुत्र चूडा प्रतापी हुआ। उसने अपना बाल्यकाल कष्ट में बिताने पर भी साहस न छोडा और पूर्वजों द्वारा प्राप्त भूमि न मिलने पर भी निज बाहुबल से बडी ख्याति प्राप्त की एव मडोवर के ईंदा पडिहारों (प्रतिहारों) से उनका इलाका (मडोवर) दहेज मे पाकर उसने अपने वशजों के लिए मडोवर का राज्य स्थापित कर लिया। अनन्तर उसने

मुसलमानों के अधिकृत प्रदेश पर आक्रमण कर नागोर पर भी अधिकार कर लिया, जहां पीछे से वह मुसलमानों के साथ की लड़ाई में मारा गया। अपनी प्रीतिपात्री राणी के कहने मे आकर जब राव चूडा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल को राज्य से वचित कर छोटे पुत्र कान्हा को राज्य देना चाहा, तब रणमल मेवाड़ के महाराणा लाखा (लक्षसिंह) के पास चित्तोड जा रहा, जहा उसने महाराणा से जागीर प्राप्त की। चित्तोड़ में रहते समय रणमल ने अपनी बहिन हासबाई का विवाह महाराणा लाखा के ज्येष्ठ कुवर चूडा से करना चाहा, परतु उसने महाराणा के हसी में कहे हुए वाक्यों से प्रेरित होकर उक्त विवाह से निषेध कर दिया। तब रणमल ने चूडा के यह प्रतिज्ञा करने पर कि 'उक्त कुवरी से उत्पन्न पुत्र ही मेवाड़ का स्वामी होगा,' हासबाई का विवाह महाराणा लाखा के साथ कर दिया, जिसके गर्भ से महाराणा मोकल का जन्म हुआ। महाराणा लाखा की मृत्यु होने पर उसका छोटा पुत्र मोकल अपने ज्येष्ठ भ्राता चूडा की पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार मेवाड़ का स्वामी हुआ, किन्तु वह (मोकल) कम उम्र था, इसलिए राज कार्य उसका ज्येष्ठ भ्राता सत्यव्रत रावत चूडा चलाता था। कुछ समय बाद मोकल की माता हासबाई ने उस (रावत चूडा) पर अविश्वास किया। इसपर वह मेवाड छोडकर मालवे के सुलतान होशंग के पास चला गया। चूडा के चित्तोड़ से चले जाने पर मेवाड़ के शासन कार्य में रणमल का बहुत कुछ हाथ रहा।

मडोवर के राव चूडा का उत्तराधिकारी उसका छोटा पुत्र कान्हा हुआ, परंतु वह शीघ्र ही काल कवलित हो गया। तब उसका भाई सत्ता वहां का स्वामी बन बैठा। इसपर रणमल ने मेवाड की सेना के साथ जाकर सत्ता से मडोवर का राज्य छीन लिया। मेवाड़ के महाराणा मोकल के— चाचा और मेरा नामक महाराणा खेता (क्षेत्रसिंह) के दासीपुत्रों के हाथ से— मारे जाने पर राव रणमल ने मेवाड में जाकर आततायियो को दड दिया और मोकल के पुत्र महाराणा कुभा (कुभकर्ण) के राज्य के प्रारभकाल में

वह (रणमल) अपने पुत्रों जोधा आदि सहित मेवाड में ही रहा, किंतु महाराणा लाखा के एक पुत्र राघवदेव को मरवा देने के कारण सीसोदियों और राठोड़ों के बीच बैर हो गया। सीसोदियों को रणमल के विषय में संदेह होने लगा, अतएव उन्होंने वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) से पूर्व उसको मरवा डाला।

इस घटना के समय राव रणमल का पुत्र जोधा चित्तोड़ की तलहटी में था। जब उसको अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह वहां से भाग निकला। मेवाडवालों ने उस(राव जोधा)का पीछा किया, किन्तु वह उनके हाथ न आया और बच निकला। इस पर उन्होंने मंडोवर के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। जोधा ने सीसोदियों से अपना राज्य छुडाने के लिए कई वर्ष तक उद्योग किया। अंत में उसका परिश्रम सफल हुआ और वि० सं० १५१० (ई० स० १४५३) के लगभग सीसोदियों से उसने मंडोवर का राज्य छीन लिया। फिर राव जोधा ने वि० सं० १५१६ (श्रावणादि १५१५=ई० स० १४५९) में अपने नाम से जोधपुर नगर बसाकर पहाड़ी पर दुर्ग बनवाया और वहीं अपनी राजधानी स्थिर की। अनन्तर उसने अपने पराक्रम से आस पास के कई प्रांतों को विजयकर राज्य का विस्तार बढ़ाया।

राव जोधा की संतति

राव जोधा की ९ राणियों से नीचे लिखे सत्रह[1] पुत्र हुए—

(१) हाड़ी राणी जसमादे से—

१ नींबा—पिता की विद्यमानता में ही मृत्यु हुई।

२ सातल—राव जोधा की मृत्यु हो जाने पर जोधपुर राज्य का स्वामी हुआ।

३ सूजा—राव सातल का उत्तराधिकारी हुआ।

३

(१) कहीं कहीं इनसे अधिक और कहीं कम नाम भी दिये हैं, पर जोधपुर राज्य की ख्यात में उपर्युक्त सत्रह पुत्रों के नाम ही मिलते हैं (जि० १, पृ० ४६-४७)।

(२) भटियाणी राणी पूरा से—

१ कर्मसी

२ रायपाल

३ वणवीर

४ जसवन्त

५ कूपा

६ चाद्राव

६

(३) साखली राणी नौरगदे से—

१ बीका—बीकानेर राज्य का संस्थापक।

२ बीदा—इसने मोहिल चौहानों का प्रदेश छापर द्रोणपुर राव बीका की सहायता से प्राप्त किया, जो बीकानेर राज्य में है और इसके वंशज बीकानेर राज्य के सरदार हैं।

२

(४) हूलणी राणी जमना से—

१ जोगा

२ भारमल

२

(५) सोनगरी राणी चंपा से—

१ दूदा—इसने मेड़ते में ठिकाना बांधा। इसके वंशज मेड़तिया कहलाते हैं।

२ वरसिंह—यह मेडते में दूदा के शामिल रहा। फिर मुसलमानों ने इसको मेड़ते से निकाल दिया। वरसिंह के वंशज वरसिंहोत कहलाये। मालवे में झाबुआ का राज्य वरसिंह के वंशजों के अधिकार में है।

२

(६) बघेली राणी नीना से—

१ सामन्तसिंह

२ शिवराज

२

ख्यातों में राव जोधा के कहीं सात और कहीं इससे भी कम पुत्रियों के नाम दिये हैं। मेवाड में घोसुडी की बावली की वि० स० १५६१ (ई० स० १५०४) की महाराणा रायमल की राठोड राणी शृंगारदे की बनवाई हुई सस्कृत की प्रशस्ति मे उसको राव जोधा की पुत्री लिखा है, जिसका मेवाड और जोधपुर राज्य की ख्यातों में कुछ भी उल्लेख नहीं है।

राव जोधा के उपर्युक्त सत्रह पुत्रों मे नीबा सब से बड़ा था, यह तो अधिकाश ख्यातो आदि से सिद्ध हो चुका है, परन्तु नीबा के बाद कौनसा पुत्र बडा था, यह विवादग्रस्त विषय है।

वि० स० १६५० (ई० स० १५६३) के रचे हुए कवि जयसोम के 'कर्मचन्द्रवशोत्कीर्तनक काव्यम्' मे लिखा है—"(दूसरी) महाराणी जसमादेवी के तीन लड़के, नींबा, सूजा और सातल नाम के थे और वह राजा का जीवन सर्वस्व थी। जब दैवयोग से नीबा नाम के पुत्र की कथा ही बाकी रह गई (अर्थात् वह मर गया) तब जसमादेवी ने, जिसे स्त्री स्वभाव से अपनी सौतों के प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ, यह होनहार ही है, ऐसा सोच कर एकान्त में विक्रम नाम के अपनी सौत के पुत्र की अनुपस्थिति में राजा को अपने पुत्र के विषय की कुछ रोचक कथा कही। तब राजा ने पत्नी के कपट से मोहित होकर अपने बेटे विक्रम को जागल मे निकाल देने की इच्छा से अपने पास बुलाकर यह कहा—'हे पुत्र! बाप के राज्य को बेटा भोगे इसमें कोई अचरज की बात नहीं, परन्तु जो नया राज्य प्राप्त करे वही बेटों में मुख्य गिना जाता है। पृथ्वी पर कठिनता से वश मे आनेवाला जागल नामक देश है, तू साहसी है इसलिये मैंने तुझे

इस काम में (अर्थात् उसे वश करने में) नियुक्त किया है[1]।

उपर्युक्त 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनक काव्य' के अवतरण से तो यही पाया जाता है कि नींबा के बाद कुंवर बीका ही राव जोधा के पुत्रों में बड़ा था। यह काव्य, ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन होने के कारण इसके कथन की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

बीका ने असीम पितृभक्ति वश पिता के कहे हुए वाक्यों से प्रभावित होकर नवीन राज्य स्थापित करने का दृढ़ विचार कर लिया और अपने हितचिंतकों एवं नापा साखला की सम्मति के अनुसार पिता के जीवन काल में ही जांगल देश की तरफ जाकर निज बाहुबल से शीघ्र ही अपने वंशजों के लिए एक बृहत् राज्य की स्थापना कर ली।

जोधा की मृत्यु होने पर सातल गद्दी पर बैठा, जिसकी अब तक

---

(१) नींबासूजासातलनामसुतत्रययुता महाराज्ञी।
जसमादेवीनाम्नी राज्ञो जीवस्य सर्वस्व ॥ ११० ॥

नींबाख्ये सजाते दैवनियोगात्सुते कथाशेषे।
जातिस्वभावदोषाज्जातामर्षा सपत्नीषु ॥ १११ ॥

विक्रमनामसपत्नीसुतेऽसति स्वात्मजे कथा रम्या।
भावीति विभाव्यात्मनि विजने राजानमाचष्टे ॥ ११२ ॥

(त्रिभि कुलक)

ततो निजात्मजं जायामायया मोहितोऽधिपः।
विक्रम जगले मोक्तु समाहूयेदमुक्तवान् ॥ ११३ ॥

पित्र्य राज्य सुतो भुक्के किं चित्र तत्र नदन।
नव राज्य य आदत्ते स धत्ते सुतधुर्यतां ॥ ११४ ॥

तेन देशोस्ति दुःसाधो जगलो जगतीतले।
त्व साहसीति कृत्येऽस्मिन्नियुक्तोऽसि मयाधुना ॥ ११५ ॥

कोई भी जन्मपत्री नहीं मिली है, अतएव उसके जन्म संवत् के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। सातल के उत्तराधिकारी सूजा का जन्म संवत् जोधपुर से मिलनेवाली जन्मपत्रियों में १४९६ (ई० स० १४३९) तथा बीका का १४९७ (ई० स० १४४०) दिया है। इस हिसाब से सूजा बीका से लगभग एक वर्ष बड़ा होता है, परन्तु इसके विपरीत बीकानेर राज्य से मिलनेवाले जन्मपत्रियों के संग्रह में बीका का जन्म वि० सं० १४९५ (ई० स० १४३८) में होना लिखा है[1]। इस हिसाब से सूजा बीका से एक वर्ष छोटा हो जाता है। इन जन्म-पत्रियों में परस्पर विभिन्नता होने के कारण, कौनसी विश्वसनीय है यह कहना कठिन है। टेसिटोरी को जोधपुर की एक दूसरी ख्यात में सूजा का जन्म संवत् १४९९ (ई० स० १४४२) प्राप्त हुआ है[2]। यदि यह ठीक हो तो यही सिद्ध होता है कि बीका हर हालत में सूजा से बड़ा था।

टेसिटोरी को फलोधी से मिली हुई एक ख्यात में लिखा है कि जोधा की मृत्यु पर टीका जोगा को देते थे, पर उसके यह कह देने पर कि मेरे बाल सुखा लेने तक ठहर जाओ, लोगों ने टीका सातल को दे दिया[3]। इस कथन से तो यही ज्ञात होता है कि सातल भी वास्तविक उत्तराधिकारी न था, परन्तु जोगा को मन्द बुद्धि देख टीका सातल को दे दिया गया। बीका की अनुपस्थिति में ऐसा हो जाना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं थी। फिर अधिकांश ख्यातों से यह भी पता चलता है कि जोधा ने पूजनीय चीज़ें देने का वादा कर बीका से जोधपुर के राज्य का दावा न करने का वचन ले लिया था।

बीका सातल से बड़ा न रहा हो अथवा उसने पिता को वचन

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १।

(२) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल, जिल्द १५ (ई० स० १९१९), पृ० ७९।

(३) वही, जिल्द १५ (ई० स० १९१९), पृष्ठ ७२ तथा टिप्पण ५।

दिया था, इस कारण से सातल के गद्दी पर बैठने पर कोई हस्तक्षेप न किया, परन्तु जब सूजा ने सातल की मृत्यु पर जोधपुर की गद्दी स्वय हस्तगत कर ली तब तो बीका ने ससैन्य उसपर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाई का उल्लेख बीकानेर तथा जोधपुर की ख्यातों मे मिलता है। जोधपुर के प्रसिद्ध कविराजा बाकीदास के 'ऐतिहासिक बातो के सग्रह' से पाया जाता है कि जोधपुर सूजा के पास रहा, परन्तु बीका और सूजा में बीका बड़ा था तथा सूजा छोटा। राज माता हाडी ने भवर ढोल, भुजाई की देग, लक्ष्मीनारायण की मूर्ति, नागणेची की मूर्ति, तख्त इत्यादिक पूजनीक चीजें[1] बीका को दीं, जिन्हे लेकर वह बीकानेर लौट गया[2]। कविराजा श्यामलदास लिखित 'वीर विनोद' मे बीकानेर के इतिहास में लिखा है—"सूजा के गद्दी पर बैठने के बाद राव बीका ने जगी फौज के साथ जोधपुर पर चढ़ाई की, क्योंकि सातल के बाद जोधा के पुत्रों में यही सब से बड़ा था। बीका ने शहर और किले पर घेरा डाला। आखिर इस शर्त पर फैसला हुआ कि जो चीजें इज्जत और करामात की समझी जाती थीं बीका ने ले ली और जोधपुर का राज्य मारवाड़ सहित सूजा के कब्जे में रहा[3]।" 'इतिहास राजस्थान' का रचियता रामनाथ रत्नू राव सूजा के प्रसग मे लिखता है—"सूजा के गद्दी बैठते ही जोधाजी के तीसरे पुत्र बीका ने सूरजमल (सूजा) से बड़े होने के कारण जोधपुर की गद्दी का दाइया (दावा) किया और बहुत कुछ सेना के साथ जोधपुर को कूच किया। सूजा ने जोधा का छत्र आदि पूजनीक चीजे देकर सधि कर ली[4]।"

---

(१) इन पूजनीक चीज़ों की सख्या १४ है, जिनमें तख़्त, राव जोधा की ढाल तलवार, नागणेची की १८ हाथोंवाली मूर्ति आदि हैं, जो बीकानेर के किले में अब तक सुरक्षित हैं। प्रति वर्ष विजयादशमी और दीपावलि के दिन स्वय महाराजा साहब इनकी पूजा करते हैं।

(२) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें, सख्या २६११।

(३) वीरविनोद भाग २, पृष्ठ ४८०।

(४) इतिहास राजस्थान; पृष्ठ १२३-४।

सिंढायच कवि दयालदास लिखता है—"बीका ने जोधपुर पर चढ़ाई कर गढ़ को घेर लिया। बारह दिन बाद सूजा की माता ने स्वय उसके पास जाकर उसे बडा माना तथा पूजनीक वस्तुए उसे देकर सुलह कर ली[1]।" कैप्टेन पी० डब्ल्यू० पाउलेट अपने 'गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' में लिखता है—"सातल के बाद सूजा गद्दी पर बैठा, तब बीका ने जोधा के जीवित पुत्रों में सब से बडा होने के कारण पूजनीक चीजे जोधपुर से लाने के लिए बेला पड़िहार को भेजा, परन्तु जब उसने ये वस्तुए देने से इनकार कर दिया तो एक विशाल सेना के साथ बीका ने सूजा पर चढ़ाई कर दी और उस(सूजा)की भेजी हुई सेना को परास्त कर गढ़ को घेर लिया। कुछ दिनों बाद पानी की कमी हो जाने के कारण जब गढ़ के भीतर के लोग बहुत घबरा गये तो सूजा की माता जसमादेवी ने स्वय बीका के पास जा कर उसे पूजनीक चीजे दी और सुलह कर ली[2]।"

मुशी देवीप्रशाद ने भी 'राव बीकाजी के जीवनचरित्र' में बीका की इस चढ़ाई का उल्लेख किया है और उसे कई स्थल पर जोधा का उत्तराधिकारी माना है तथा यह भी लिखा है—"बारह दिन तक गढ़ पर घेरा रहने के बाद सूजा ने अपनी माता को बीका के पास भेजा, जिसने बीका को बड़ा स्वीकार किया तथा पूजनीक चीजें उसे दीं[3]।" जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना पर परदा डालने का प्रयत्न किया गया है। राव जोधा, बीका, सातल तथा सूजा के प्रसग में कहीं भी इस घटना का उल्लेख नहीं है, किंतु वरजाग भीमावत के प्रसग मे सातल की मृत्यु के बाद सूजा के मारवाड़ की गद्दी पर बैठने पर बीका का जोधपुर पर चढ़ आना लिखा है। ख्यातों में बहुधा कुवरों के नाम राणियों के साथ दिये जाते हैं, इसलिए उनसे छोटे बड़े का कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता[4]।

(१) दयालदास की ख्यात, जिल्द २ पृ० ४६।

(२) पृ० ६।

(३) पृ० ३४ ३६।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० ४६ तथा ५६ ५७।

उपर्युक्त अवतरणों से तो यही सिद्ध होता है कि बीका ने सूजा से ज्येष्ठ होने के कारण ही जोधपुर पर चढ़ाई की होगी और इस सम्बन्ध में टॉड का यह मत कि वह (बीका) जोधा का छठा पुत्र था[1], माननीय नहीं हो सकता।

---

(१) टॉड राजस्थान (ऑक्सफ़र्ड संस्करण), जि० २, पृ० ६५०।

चौथा अध्याय

राव बीका से राव जैतसी तक

राव बीका

जोधपुर के स्वामी राव जोधा की साखली राणी नौरंगदे[1] से बीका (विक्रम) का जन्म वि० सं० १४९५ श्रावण सुदि १५ (ई० स० १४३८ ता० ५ अगस्त) मंगलवार को हुआ था[2]।

जन्म

एक दिन जब राव जोधा दरबार में बैठा हुआ था, बीका भीतर से आया और उस(बीका)से तथा कांधल से कान में बातें होने लगीं। जोधा ने यह देखकर पूछा—"आज चाचा भतीजे क्या सलाह कर रहे हैं? क्या कोई नया ठिकाना जीतने की बात हो रही है?" कांधल ने उत्तर दिया—"आपके प्रताप से यह भी हो जायगा।" उन दिनों जांगलू का नापा

बीका का जांगलदेश विजय करना

---

(१) विक्रमबीदानामकजातसुता साखलाह्वगोत्रीया।
नवरंगदेऽभिधाना जज्ञे राज्ञः पुरा पत्नी ॥ १०९ ॥
(जयसोम, कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक काव्यम्)।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १। मुंशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० १। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४७८। देशदर्पण, पृ० २३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १।

जोधपुर से मिलनेवाली जन्मपत्री में बीका का जन्म वि० सं० १४९७ (ई० स० १४४०) में होना लिखा है तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में भी ऐसा ही दिया है (जि० १, पृ० ४१)।

सांखला[1] भी दरबार में आया हुआ था। उसने बीका से कहा—"परगना जागलू बिलोचो के आक्रमण से कमजोर हो गया है और कुछ सखले उसका परित्याग कर अन्यत्र चले गये हैं। यदि आप चाहे तो वहां सरलता से अधिकार किया जा सकता है।" राव जोधा को भी यह बात पसन्द हुई और उसने बीका तथा काधल को नापा के साथ जाकर नया राज्य स्थापित करने के लिए आज्ञा दे दी। तब बीका ने अपने चाचा काधल, रूपा, माडण, मडला, नाथू, भाई जोगा, बीदा, पडिहार बेला, नापा साखला, महता लाला, लाखण, बच्छावत महता वरसिंह तथा अन्य राजपूतों आदि के साथ वि० स० १५२२[2] आश्विन सुदि १० (ई० स० १४६५ ता० ३० सितबर) को जोधपुर से प्रस्थान किया। कहते हैं कि इस अवसर पर बीका के साथ १०० घोडे तथा ५०० राजपूत थे[3]। बीका के मिले हुए मृत्यु स्मारक लेख मे भी लिखा है कि पिता का वचन सुनकर बीका ने प्रणाम किया तथा राजा (जोधा) के छोटे भाई (कांधल) द्वारा प्रेरित होकर शत्रुओं के समूह का नाशकर नया राज्य प्राप्त किया[4]।

---

(१) साखले महीपाल का पुत्र रायसी रूण को छोड़कर जागलू आया और विवाह के मिस से वहा के स्वामी को मार जागलू का स्वामी बन बैठा। उसके आठवें वशधर माणकराव का पुत्र नापा जब गद्दी पर बैठा तो बिलोचों ने उसे आ दबाया, जिससे वह राव जोधा के पास जोधपुर चला गया।

(मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० १, पृ० २३९ ४०)।

(२) देशदर्पण में वि० स० १५२७=ई० स० १४७० (पृ० २३) तथा टॉड कृत 'राजस्थान' मे वि० स० १५१५=ई० स० १४५८ (जि० २, पृ० ११२३ ऑक्सफ़र्ड सस्करण) दिया है, जो विश्वास के योग्य नहीं है।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १। मुशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० १ ४। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४७८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १। टॉड कृत 'राजस्थान' में बीका के साथ ३०० राठोड़ों का जाना लिखा है (जिल्द २, पृ० ११२३)।

(४) श्रुत्वा पितृवच प्रणाममकरोद् भूपानुजप्रेरित ।
हत्वा शत्रुवन स्वभिन्न (?) सहित राज्य पर प्राप्तवान् ॥

मडोवर होता हुआ बीका देशणोक पहुचा, जहा उसने करणीजी[1] का दर्शन किया, जिसने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा—"तेरा प्रताप जोधा से सवाया बढ़ेगा और बहुत से भूपति तेरे चाकर होगे।" वहा से वह चाडासर आदि स्थानों पर अपना अधिकार जमाता हुआ कोड़मदेसर में जाकर रहा[2], जहा उसने अपने को वि० स० १५२६ (ई० स० १४७२) में राजा घोषित किया[3]। फिर उसने जागलू पहुचकर साखलों के ८४ गाव अपने अधीन कर[4] अपनी सेना और राज्य का विस्तार बढ़ाना शुरू किया।[5]

ख्यातों आदि से पाया जाता है कि पूगल का भाटी राव शेखा[6]

---

(१) करणीजी, जिनका जन्म वि० स० १४४४ आश्विन सुदि ७ (ई० स० १३८७ ता० २० सितम्बर) को हुआ था, गाव सूवाप (जोधपुर राज्य) के चारण मेहा की पुत्री थीं और साठी (बीकानेर राज्य) के बीठू केलू के पुत्र देपा को ब्याही गई थी। उनको आस पास के लोग देवी का अवतार मानते थे और उनका विश्वास था कि उनमें भविष्य की बात बता देने की अभूतपूर्व शक्ति है। कहते हे कि बीका को बीकानेर का राज्य उन्हीं की कृपा से प्राप्त हुआ था। बीकानेर के राजघराने में अब तक करणीजी पर पूर्ण श्रद्धा है और प्रति वर्ष हज़ारों यात्री दर्शनार्थ देशणोक जाते हैं, जहा आश्विन की नवरात्रि में मेला लगता है। वर्तमान बीकानेर नरेश को भी करणीजी पर बड़ी श्रद्धा है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १। मुशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ५। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४७८। पाउलेट, गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० १६८।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३। मुशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० १६।

(५) 'कर्मचद्रवशोत्कीर्तनक काव्यम्' (श्लोक १२४) से भी पाया जाता है कि कठिनता से वश में आनेवाले सब पुराने भूस्वामिया (भोमियों) को वहां से बलात्कारपूर्वक निकालकर बलवान् (विक्रम) राजा ने उसी देश से सवारों आदि की सना तैयार की।

(६) जैसलमेर के रावल केहर का ज्येष्ठ पुत्र केलण था। उसने पिता की आज्ञा के बिना अपना विवाह महेचो के यहा कर लिया था, जिससे केहर ने उसको निर्वासित कर अपने दूसरे पुत्र लक्ष्मण को उत्तराधिकारी बनाया। केलण ने अपने बाहुबल से

बड़ा लुटेरा था और इधर उधर लूटमार किया करता था। एक बार वह मुलतान की ओर चला गया। वहां से लूट-मार कर जब लौट रहा था तो वहां के सूबेदार की सेना से उसकी मुठभेड हो गई, जिसमे उसके बहुत से साथी काम आये तथा वह पकडा जाकर मुलतान में क़ैद कर दिया गया। उसको मुक्त कराने के बदले मे उसकी ठकुराणी ने अपनी पुत्री रगकुवरी का विवाह बीका के साथ कर दिया[1]। उपर्युक्त ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' से भिन्न, उसी नाम का एक अन्य समकालीन ग्रथ मिला है, जिसके बनाने-वाले के नाम का पता नही, पर वह बीठू सूजा के ग्रन्थ से बड़ा है। उसमे लिखा है—'राव शेखा लघो[2] के लिए काटे के समान था, अतएव उन्होने उसके भाई तिलोकसी और जगमाल को अपने पक्ष मे मिलाकर उनकी

शेखा की पुत्री से बीका का विवाह

नया इलाक़ा—बीकमपुर—क़ायम किया। उसका पुत्र चाचा पूगल का स्वामी हुआ। चाचा का पुत्र वैरसल और उसका बेटा शेखा था।

(मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० ३२०, ३२१, ३६५)।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १, मुशी देवीप्रसाद राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ६ ७। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४७८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २ ३।

बीका की राणी रगकुवरी का उल्लेख 'कर्मचन्द्रवशोत्कीर्तनक काव्यम्' के श्लोक १२६ मे भी है, जहा उसका नाम रगादेवी दिया है।

(२) सिन्ध तथा उसके आसपास के प्रदेश पर ई० स० १०५० से १३५१ (वि० स० ११०७ से १४०८) तक सुमरा राजपूतो का अधिकार रहा, जो पीछे से मुसलमान बना लिये गये। उनके बाद क्रमश सम्मा, अर्ग़ून् तथा तरख़ानों का वहा पर राज्य रहा। तैमूर के आक्रमण के बाद मुलतान की गद्दी पर कुरेशी शेख़ बैठा, जिसको हटा कर ई० स० १४५४ (वि० स० १५११) मे सीबी के स्वामी ने वहा पर अधिकार कर लिया और कुतुबुद्दीन मुहम्मद लघा का विरुद धारण किया। उसका पुत्र हुसेन लघा (ई० स० १४६६ १५०२=वि० स० १५२६ १५५६) बीका का समकालीन हो सकता है। सभव है उसके काल में उपरोक्त घटना हुइ हो।

(इम्पीरियल गैजेटियर ऑव् इडिया, जि० २, पृ० ३७०)।

सहायता से उस(शेखा)को पकडने की व्यवस्था की। शेखा के उक्त भाइयों ने ही उसे पकडकर लघो के सुपुर्द कर दिया। पीछे तिलोकसी ने मुसलमानो की सहायता से पूगल पर अधिकार कर लिया, लेकिन बीका ने ससैन्य लघो तथा भाटियो पर चढ़ाई कर उन्हें तितर बितर कर दिया और शेखा को लघो के हाथ से छुडा लिया[१]। शेखा पुन पूगल का स्वामी बना। इस विजय के पश्चात् बीका ने पूगल जाकर उसकी पुत्री से विवाह किया[२]।'

वि० स० १५३५ (ई० स० १४७८) में बीका ने कोड़मदेसर तालाब के पास गढ़ बनवाने का आयोजन किया, जिसपर राव शेखा ने कहलाया कि यहा गढ़ न बनवाकर जांगलू की हद मे बनवाओ, परन्तु बीका ने इसपर ध्यान न दिया।

भाटियों से युद्ध

तब तो भाटियो ने उसे वहा से हटाने के लिए सलाह की और शेखा से कहा—"अब तो अपनी भूमि जाने का भय है, इसलिए शीघ्र कोई प्रबन्ध करना चाहिये।" परन्तु शेखा ने उत्तर दिया—"मैं तो प्रकट रूप से सहायता नहीं दे सकता, तुम्हीं कुछ उपाय करो।" तब भाटियों ने मिलकर जैसलमेर के रावल केहर के छोटे पुत्रों मे से कलिकर्ण[३] को,

(१) बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' में भी बीका द्वारा शेखा के छुड़ाये जाने का उल्लेख है (छन्द ४८)। उसी ग्रन्थ के ४३ वे छन्द में बीका का बहुत से लगाब लोगों (लघा) को मारना भी लिखा है।

(२) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बगाल, ई० स० १९१७, पृ० २३३।

बीका के आश्रित बारठ चोहथ ने उस(बीका)की प्रशसा मे एक गीत लिखा है, जिसम उसके पूगल तथा वरसलपुर के गढ़ों को मुसलमानो के हाथ से छुड़ाने का वर्णन है। (ज० ए० सो० ब०, सन् १९१७, पृ० २३४)।

(३) जैसलमेर के दीवान नथमल की आज्ञा से लिखित 'जैसलमेर के इतिहास' में ८० वर्ष के वृद्ध कलिकर्ण के स्थान में रावल देवीदास का बीका पर चढ़कर जाने का उल्लेख है। उक्त पुस्तक से पाया जाता है कि देवीदास बीका का गढ़ नष्ट कर वहां के किवाड़ तथा एक तराजू ले गया, जिनमें से किंवाड़ वरसलपुर के दरवाजे में लगवाये गये और तराजू सदर सायर में रक्खी गई (पृ० ४८)। ब्यास

जो ८० वर्ष का था, सहायता के लिए बुलवाया। वह २००० सेना सहित बीका पर चढ़ा और उसने शेखा को भी आने को कहा, पर वह न आया। उधर बीका भी अपने काका काधल और भाई बीदा तथा अन्य सरदारों से सलाह कर लड़ने के लिए सम्मुख आया। इस युद्ध में भाटियों की हार हुई और कलिकर्ण ३०० साथियों सहित काम आया[1]।

इतना होने पर भी भाटियो ने बीका को तग करना न छोड़ा। तब तो किसी अन्य स्थान पर गढ बनवाने का मन मे विचार कर बीका

गोविन्द मधुवन रचित 'भट्टिवश प्रशस्ति' नामक काव्य मे यह घटना लूणकर्ण के समय में लिखी है।

श्रीबीकानगराधिपोतिबलवान्श्रीलूणकर्ण प्रभु
सेहे यस्य पराक्रम न महतो निद्रावित सगरात् ॥
उद्वास्यास्य पुर कपाटयुगल चानीय तत्पत्तनात्
सस्थाप्याशु निजे पुरे यदुपति प्रीतोभवद् विक्रमी ॥ ४४ ॥
कपाट युगल दानी तुला चाप्यथो
नून नेत्रयुग श्रिय च वसतेर्नीत्वा ययौ स्व पुर ॥ ४७ ॥

(भट्टिवशप्रशस्तिकाव्य)।

परतु उपर्युक्त कथन ठीक प्रतीत नहीं होता। यदि इस घटना में सत्य का अश हो तो यही मानना पडेगा कि बीका के समय जब राठोड़ कोडमदेसर में गढ़ बनाते थे उस समय भाटियों ने उसपर चढ़ाई की हो और वहा के किवाड आदि ले गये हों। गोविन्द मधुवन ने अपना काव्य रावल कल्याणसिंह के समय—जिसका देहान्त वि० स० १६८३ और १६८५ (ई० स० १६२६ और १६२८) के बीच किसी समय हुआ था—अर्थात् उक्त घटना से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पीछे बनाया था। ऐसी दशा में बीका के स्थान में लूणकर्ण लिखा जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(१) दयालदास की ख्यात, जिल्द २, पत्र २। मुन्शी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ८ १०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३।

मुहणोत नैणसी ने बीकानेर का गढ पूर्ण हो जाने पर कलिकर्ण का बीका पर चढ़ आना तथा मारा जाना लिखा है (जि० २, पृ० २०४ ५), जो ठीक नहीं प्रतीत होता।

गढ तथा नगर बीकानेर की स्थापना

ने नापा साखला से सलाह की। शुभलक्षण आदि का विचार करने के उपरान्त रातीघाटी पर वि० सं० १५४२ (ई० स० १४८५) में गढ की नींव रक्खी गई और वि० सं० १५४५ वैशाख सुदि २ (ई० स० १४८८ ता० १२ अप्रेल) को उस गढ के आस-पास बीका ने अपने नाम पर बीकानेर नामक नगर बसाया[1]।

राणा ऊदा का बीकानेर जाना

प्रतापी महाराणा कुंभा को मारकर वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में उसका ज्येष्ठ पुत्र ऊदा मेवाड का स्वामी बन गया, परन्तु राजपूताने के लोग पितृघाती को प्राचीन काल से ही 'हत्यारा' कहते और उसका मुख देखने से घृणा करते थे, इतना ही नहीं, किन्तु वंशावली लेखक उसका नाम तक वंशावली में नहीं लिखते थे। ठीक वैसा ही व्यवहार ऊदा के साथ भी हुआ। राजभक्त राजपूतों ने धीरे-धीरे उससे किनारा करना आरंभ कर दिया और उसको राज्यच्युत करने का उद्योग

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २। मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० १६८-६६। मुंशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० १० ११। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४७६। पाउलेट, गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४।

इस विषय में नीचे लिखा हुआ दोहा प्रसिद्ध है—

पनरे सै पैतालवे, सुद वैशाख सुमेर।
थावर बीज थरप्पियो, बीके बीकानेर॥

'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक काव्यम्' में एक स्थान में बीका के गढ और नगर का नाम 'कोडिमदेसर' दिया है (श्लोक १३१), जो भूल है, क्योंकि आगे १३८ वें श्लोक में उसी का नाम विक्रमपुर (बीकानेर) दिया है।

टॉड कृत 'राजस्थान' में लिखा है कि जिस स्थान पर बीका ने गढ बनवाना निश्चय किया, वह नेर नाम के एक जाट की भूमि थी। उसने इस शर्त पर अपनी भूमि बीका को दी कि नवनिर्मित नगर के नाम में उसका नाम भी रहे। इसी से बीका की राजधानी का नाम बीकानेर पड़ा (जि० २, पृ० ११२६ ३०), परन्तु टॉड का यह अनुमान ठीक नहीं है, क्योंकि 'नेर' का अर्थ 'नगर' होता है, जैसे भटनेर, जोबनेर, सांगानेर आदि।
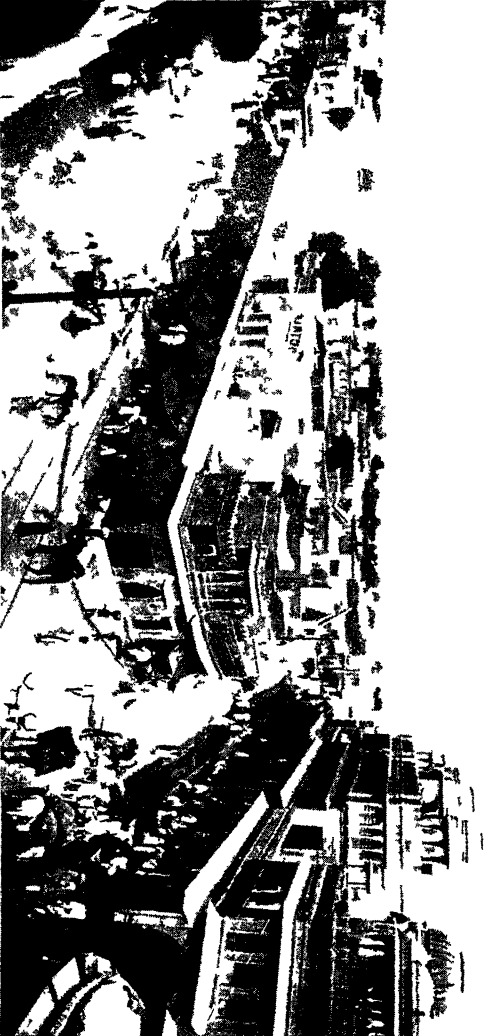
बीकानेर नगर का दृश्य

करने लगे। ऊदा ने उनकी प्रीति प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया, पर उसमें सफलता न मिली, जिससे उसने पड़ोसी राज्यों को सहायक बनाने के लिए उन्हें अपने राज्य के परगने देने शुरू किये। इस कार्य से मेवाड़ के सरदार उससे और भी अप्रसन्न हो गये और परस्पर सलाह कर उन्होंने ऊदा के छोटे भाई रायमल को ईडर से बुलाया, जिसने वहां आकर उन (सरदारों) की सहायता से जावर, दाड़िमपुर, जावी और पानगढ़ के युद्धों में विजय प्राप्तकर चित्तोड़ को घेर लिया। एक बड़ी लड़ाई के उपरान्त वहां भी रायमल का अधिकार हो गया और ऊदा ने भागकर कुम्भलगढ में शरण ली। वहां भी उसका पीछा किया जाने पर वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) में वह अपने दोनों पुत्रों—सैंसमल तथा सूरजमल—सहित अपनी सुसराल सोजत में जाकर रहा और पीछे से वह बीका के पास चला गया[1]। बीका ने उसको शरण तो दी, परन्तु उसकी सहायता करना स्वीकार न किया, जिससे कुछ समय तक वहां रहकर वह माडू के सुलतान गयासशाह (गयासुद्दीन) खिलजी के पास चला गया[2]।

जाटों से युद्ध

उन दिनों बीकानेर के आसपास उत्तर पूर्व में जाटों का काफ़ी अधिकार था[3]। शेखसर का इलाका गोदारा जाट पाडू के तथा भाड़ग, सारन जाट पूला के अधीन थे। गोदारा पाडू बड़ा दानी था। एक दिन उसका एक ढाढ़ी पूला

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० १, पृष्ठ ३१। नैणसी लिखता है कि ऊदा की मृत्यु बीकानेर में हुई, परन्तु यह ठीक नहीं है। उसकी मृत्यु माडू में उसपर बिजली गिरने से हुई थी (वीरविनोद, भाग १, पृ० ३३८)।

(२) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३३८।

(३) ख्यातों आदि के अनुसार उस समय जाटों के निम्नलिखित सात बड़े इलाके थे—

१—गोदारा पांडू के अधिकार में लाधड़िया तथा शेखसर।

२—सारण पूला के अधिकार में भाड़ग।

३—कस्वां कंवरपाल के अधिकार में सीधमुख।

के यहा मागने के लिए गया। पूला ने जो कुछ हो सका उसे दिया, परन्तु जब वह अपने महलों में गया तो उसकी स्त्री मल्की ने उससे कहा— "चौधरी ऐसा दान करना था, जिससे पाडू से अधिक यश प्राप्त होता।" पूला उस समय नशे में था, उसने मल्की को मारते हुए कहा—"तुझे पाडू अच्छा लगता है तो तू उसी के पास चली जा।" मल्की को भी यह बात सुनकर क्रोध आ गया। उसने उत्तर दिया—"चौधरी, मैंने तो एक बात कही थी, परन्तु जब तू यही सोचता है तो मैं यदि आज से तेरे पास आऊ तो भाई के पास आऊ।" उसी दिन से मल्की ने पूला से बोलना बंद कर दिया और कुछ दिनों पश्चात् पाडू को सारी घटना का वृत्तान्त पहुचाकर कहलवाया कि आकर मुझे ले जाओ। प्राय छ मास बाद पाडू के कहने से उसका पुत्र नकोदर भाडग आकर मल्की से मिला और वह अपने स्थान पर अपनी दासी को छोडकर उस(नकोदर)के साथ गोखसर चली गई। पाडू बहुत वृद्ध हो गया था, फिर भी उसने मल्की को अपने घर में डाल लिया, परन्तु नकोदर की मा से मल्की की अनबन रहने लगी, जिससे वह (मल्की) गोपलाणा गाव में जा रही। फिर उसने अपने नाम पर मल्कीसर गाव बसाया।

उधर जब भाडग में मल्की की खोज हुई, तो उसी दासी के द्वारा, जिसे मल्की अपने स्थान में छोड़ गई थी, पूला को उसके पाडू के यहा जाने का हाल मालूम हुआ। तब पूला ने रायसाल[1], कवरपाल[2] आदि जाटों को बुलाकर सलाह की, परन्तु पाडू का सहायक बीका था,

४—बेणीवाल रायसाल के अधिकार में रायसलाणा।

५—पूनिया काना (कान्हा) के अधिकार में बडी लूधी।

६—सीहागां चोखा के अधिकार में सूई।

७—सोहुवा अमरा के अधिकार में भानसी।

ख्यातों के अनुसार उपर्युक्त जाटों के पास बहुत गांव थे।

(१) बेणीवाल जाट, रायसलाणा का स्वामी।

(२) कस्वां जाट, सीधमुख का स्वामी।

अतएव किसी की भी हिम्मत उसपर चढ़ाई करने की नहीं पड़ती थी। फिर सब मिलकर सिवाणी के स्वामी नरसिंह जाट के पास गये और उसे पाडू पर चढ़ा लाये, जिसपर वह (पाडू) अपने बहुत से साथियों के साथ निकल भागा। बीका तथा काधल उस समय सीधमुख को लूटने गये थे। पाडू ने उनके पास जाकर सब समाचार कहा और सहायता की याचना की। उन्होंने तुरन्त पूला का पीछा किया और सीधमुख से दो कोस पर नरसिंह आदि को जा घेरा। बीका का आगमन सुनते ही उस गाव के जाट उससे आ मिले और वह स्थल उसे बता दिया जहा नरसिंह सोया हुआ था। बीका ने नरसिंह को जगाकर कहा—"उठ, जोधा का पुत्र आया है।" नरसिंह ने तत्काल वार किया, पर वह खाली गया। तब बीका ने एक ही वार में उसका काम तमाम कर दिया[1]। अनन्तर अन्य जाट आदि भी भाग गये तथा रायसल, कंवरपाल, पूला आदि ने, जो बीका के मारे तग हो रहे थे, आकर उससे क्षमा मांग ली। इस प्रकार जाटों के सब ठिकाने बीका के अधिकार में आ गये। पाडू को उसकी खैरख्वाही के बदले मे यह अधिकार दिया गया कि बीकानेर के राजा का राजतिलक उस (पाडू) के ही वंशजों के हाथ से हुआ करेगा[2] और अब तक यह प्रथा प्रचलित है।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३। मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० २०१३। मुंशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ११ १८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४-६।

बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' में भी बीका द्वारा नरसिंह जाट के मारे जाने एवं भाड़ग के क़िले के कई भाग ध्वस किये जाने का उल्लेख है (छन्द ४२), जिससे उपर्युक्त घटना की वास्तविकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३। मुशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० १६। पाउलेट, गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६।

टॉड कृत 'राजस्थान' में लिखा है कि गोदारों का जोइयों तथा भाटियों से वैर रहता था। अतएव बीका के आने पर अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उन्होंने उसे बड़ा मान उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और बीका ने भी यह वचन दिया कि अब से बीकानेर के राजाओं का टीका उसी के वंशजों के हाथ से हुआ करेगा (भाग १, पृ० ११२८ ६)।

फिर बीका ने वहां के राजपूतों तथा मुसलमानों की भूमि पर आक्रमण करना शुरू किया। सर्वप्रथम उसने सिंघाणे पर चढ़ाई की, जहां का जोइया स्वामी उसके पैरों में आ गिरा[1]। फिर खीचीवाड़े के स्वामी देवराज खीची को मारकर उसने वह इलाका भी अपने राज्य में मिला लिया[2]। अनन्तर उसने पूगल के भाटी शेखा को अपना चाकर बनाया तथा खड़ला का परगना वहां के स्वामी सुभराम ईसरोत को मारकर लिया। धीरे धीरे सारा जांगल प्रदेश बीका के अधिकार में आ गया। यही नहीं उसने हिसार के पठानों की भी भूमि छीनी तथा बाघोड़ों, भूटों व बिलोचों को भी पराजित किया। कहते हैं कि इस समय बीका की आन ३००० गांवों में चलती थी और उसके राज्य की सीमा पंजाब के पास तक पहुंच गई थी[3]।

राजपूतों तथा मुसलमानों से युद्ध

बीका की मृत्यु से क़रीब ३१ वर्ष पीछे के रचे हुए बीठू सूजा के 'जैतसी रो छन्द' से भी पाया जाता है कि उस (बीका) ने देरावर, मुम्मण-वाहण,[4] सिरसा, भटिंडा, भटनेर, नागड़, नरहड़ आदि स्थानों

(१) दयालदास की ख्यात, जिल्द २, पत्र ३। मुंशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ११। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६।

टॉड कृत 'राजस्थान' में लिखा है कि जोहियों ने बहुत दिनों तक गोदारों तथा राठोड़ों के सम्मिलित आक्रमण का सामना किया पर अन्त में उन्हें पराजय स्वीकार करनी पड़ी (जि० २, पृ० ११३० १)।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३। मुंशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ११। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३ ४। मुंशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० १९ २१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६।

टॉड कृत 'राजस्थान' में बीका का २६७० गांवों पर कब्ज़ा करना लिखा है (जि० २, पृ० ११२७)।

(४) वाहण=बस्ती या बसाया हुआ गांव। मुम्मण वाहण का आशय मुम्मण का बसाया हुआ गांव है। पंजाब में कई गांवों के नामों के अन्त में वाहण शब्द जुड़ा हुआ मिलता है।

पर आक्रमण कर उन्हें अधिकृत किया तथा नागोर पर चढ़ाई कर उसे दो बार जीता[1]। उपर्युक्त ग्रन्थ ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन होने के कारण उसके कथन पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। इस हिसाब से उसके राज्य का विस्तार चालीस हजार वर्ग मील भूमि पर होना अनुमान किया जा सकता है।

राव जोधा ने छापर द्रोणपुर का इलाक़ा बरसल (बैरसल, मोहिल[2]) से लेकर वहां का अधिकार अपने पुत्र बीदा को दे दिया था। बरसल अपना राज्य खोकर अपने भाई नरबद को साथ ले दिल्ली के सुलतान बहलोल[3] लोदी के पास चला गया। उस समय उसके साथ काधल का ज्येष्ठ पुत्र बाघा भी था। बहुत दिनों बाद जब उनकी सेवा से सुलतान प्रसन्न हुआ तो उसने बरसल का इलाका उसे वापस दिलाने के लिए हिसार के सूबेदार सारंगखां को फौज देकर उसके साथ कर दिया। जब यह फौज द्रोणपुर पहुची तो बीदा ने इसका सामना करना उचित न समझा, अतएव बरसल से सुलह कर वह अपने भाई बीका के पास बीकानेर चला गया और छापर द्रोणपुर पर पीछा बरसल का अधिकार हो गया।

बीदा को छापर द्रोणपुर दिलाना

बीदा के बीकानेर पहुचने पर, बीका ने अपने पिता (जोधा) से

---

(१) छन्द ४३, ४४, ४५ और ४७।

(२) मोहिल चौहानों की एक शाखा का नाम है, जिसके अधिकार में छापर द्रोणपुर आदि इलाके थे। छापर बीकानेर से पूर्व दक्षिण में सुजानगढ़ से कुछ मील उत्तर में है और द्रोणपुर सुजानगढ़ से १० मील पश्चिम में 'कालाडूगर' नाम की पहाडी के नीचे था। इन दोनों गावों के नाम से वह परगना छापर द्रोणपुर कहलाता था। श्रीमोर परगने के स्वामी सजन के ज्येष्ठ पुत्र का नाम मोहिल था, जिसके नाम से मोहिल शाखा चली।

(३) बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' से भी बहलोल लोदी का बीका का समकालीन होना पाया जाता है (छन्द ४६), परन्तु सिकन्दर और बहलोल (लोदी) दोनों ही बीका के समकालीन थे।

कहलाया कि यदि आप सहायता दें तो फिर बीदा को द्रोणपुर का इलाक़ा दिला देवें। जोधा ने एक बार राणी हाड़ी के कहने से बीदा से लाडणू मांगा था, परन्तु उसने देने से इनकार कर दिया। इस कारण उसने बीका की इस प्रार्थना पर कुछ ध्यान न दिया। तब बीका ने स्वयं सेना एकत्र कर काँधल, मंडला आदि के साथ बरसल पर चढ़ाई कर दी। इस अवसर पर राव शेखा, सिंघाणे का सरदार तथा जोइये आदि भी उसकी सहायता के लिए आये। नापा सांखला, पड़िहार बेला आदि बीकानेर की रक्षा करने के लिए वहीं छोड़ दिये गये। देशणोक में करणीजी के दर्शन कर बीका द्रोणपुर की ओर अग्रसर हुआ तथा वहां से चार कोस की दूरी पर उसकी फ़ौज के डेरे हुए। सारंगखां उन दिनों वहीं था। एक दिन बाघा को, जो बरसल का सहायक था, एकान्त में बुलाकर बीका ने उसे उपालम्भ देते हुए कहा—"काका कांधल तो ऐसे हैं कि जिन्होंने जाटों के राज्य को नष्टकर बीकानेर राज्य को बढ़ाया और तू (कांधल का पुत्र) मोहिलों के बदले में मेरे ऊपर ही चढ़कर आया है। ऐसा करना तेरे लिए उचित नहीं।" तब तो वह भी बीका का मददगार बन गया और उसने वचन दिया कि वह मोहिलों को पैदल आक्रमण करने की सलाह देगा, जिनके दाईं ओर सारंगखां की सेना रहेगी तथा ऐसी दशा में उन्हें पराजित करना कठिन न होगा। दूसरे दिन युद्ध में ऐसा ही हुआ, फलतः मोहिल एवं तुर्क भाग गये, नरबद और बरसल मारे गये तथा बीका की विजय हुई। कुछ दिन वहां रहने के उपरान्त बीका ने छापर-द्रोणपुर का अधिकार बीदा को सौंप दिया और स्वयं बीकानेर लौट गया[1]।

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४। मुन्शी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० २१-२७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६-८।

इसके विपरीत मुहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि जोधा ने जिन दिनों छापर द्रोणपुर पर अधिकार कर लिया उन्हीं दिनों नरबद दिल्ली जाकर लोदी बादशाह के पास से सारंगख़ां के साथ ४००० सवार अपनी सहायता को ले आया।

इस युद्ध के बाद काधल हिसार के पास साहबा नामक स्थान में जा रहा और हिसार में लूट मार करने लगा। जब सारंगखां इस उत्पात का दमन करने लगा तो काधल अपने राजपूतों सहित राजासर (परगना सारण) में चला गया और वहां से चढ़कर हिसार में आया तथा खूब लूट मार कर फिर वापस चला गया। उस समय काधल के साथ उसके तीन पुत्र—राजसी, नींबा तथा सूरा—थे और बाघा चाचावाद में एवं अरडकमल बीकानेर में था। जब हिसार के फौजदार सारंगखां ने उसपर चढ़ाई की तो काधल ने सब साथियों सहित उसका सामना किया। अचानक काधल के घोड़े का तंग टूट गया, जिससे उसने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि मेरे तंग सुधार लेने तक तुम सब शत्रु का सामना करो, परन्तु वह तंग आदि ठीककर अपने घोड़े पर पुनः सवार हो सका इसके पूर्व ही सारंगखां ने आक्रमण कर उसकी सारी सेना को तितर बितर कर दिया। काधल ने अपने पास बचे हुए राजपूतों के साथ वीरतापूर्वक सारंगखां का सामना किया, पर शत्रु की सख्या बहुत अधिक होने से अंत में

काधल का मारा जाना

नरबद, बैरसल, बाघा (काधलोत) तथा सारंगखां ने मिलकर जोधा पर चढ़ाई की। जोधा ने गुप्त रीति से बाघा को अपने पास बुलाया और कहा कि शाबाश भतीजे, मोहिलों के वास्ते तू अपने भाइयों पर तलवार उठाकर भोजाइयो और स्त्रियों को कैद करावेगा। तब तो बाघा के मन में भी विचार उठा कि मोहिलों के वास्ते अपने भाइयों को मारना उचित नहीं है और वह जोधा का मददगार हो गया। फलतः युद्ध में सारंगखां ५५५ पठानों के साथ मारा गया, बरसल पीछा मेवाड़ को चला गया तथा नरबद फ़तहपुर के पास पड़ा रहा (जि० १, पृ० १६३ ६५)।

परन्तु मुहणोत नैणसी का उपर्युक्त कथन विश्वासयोग्य नहीं प्रतीत होता, क्योंकि आगे चलकर वह स्वयं बीका के कहलवाने पर काधल को मारने के वैर में जोधा का सारंगखां पर चढ़ाई करना लिखता है। इस अवसर पर राव बीका का भी उसके साथ होना उसने माना है (जिल्द २, पृ० २०६)। इससे स्पष्ट है कि सारंगख़ां बाद की दूसरी लड़ाई में मारा गया था।

तेईस मनुष्यों को मारकर वह वीर अपने साथियों सहित काम आया[1]।

बीका ने जब कांधल के मारे जाने का समाचार सुना तो उसी समय सारंगखां को मारने की प्रतिज्ञा की तथा अपनी सेना को युद्ध की तैयारी करने के लिए आज्ञा दी। इसकी सूचना राव जोधा को देने के लिए कोठारी चौथमल जोधपुर भेजा गया। जोधा ने मेड़ते से दूदा व वरसिंह को भी बुला लिया और सेना सहित बीका की सहायता के लिए प्रस्थान किया। बीकानेर से बीका भी चल चुका था। द्रोणपुर में पिता-पुत्र एकत्र हो गये, जहां से दोनों फौजें सम्मिलित होकर आगे बढ़ीं। सारंगखां भी अपनी फौज लेकर सामने आया तथा गांव झांसू (झांसल) में दोनों दलों में युद्ध हुआ, जिसमें सारंगखां की फौज के पैर उखड़ गये और वह बीका के पुत्र नरा के हाथ से मारा गया[2]।

बीका की कांधल के वैर में सारंगखां पर चढ़ाई

वहां से लौटते हुए फिर द्रोणपुर में डेरे हुए। राव जोधा ने बीका को अपने पास बुलाकर कहा—"बीका तू सपूत है, अतएव तुझसे एक वचन मांगता हूं।" बीका ने उत्तर दिया—"कहिये, आप मेरे पिता हैं, अतएव आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।" जोधा ने कहा—"एक तो

जोधा का बीका को पूजनीक चीज़ें देने का वचन देना

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ५। मुन्शी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० २८-३०। मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० २०५-६। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४७६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ८।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ५। मुन्शी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ३० ३१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ८।

मुहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि जब राव बीका ने कांधल के मारे जाने की ख़बर राव जोधा के पास जोधपुर भिजवाई, तब वह बोला कि कांधल का वैर मैं लूंगा। अतएव एक बड़ी सेना के साथ वह सारंगखां पर चढ़ा। बीका हरावल (हिरोल) में रहा। गांव झांसल के पास लड़ाई हुई, जिसमें सारंगखां और उसके बहुत से साथी मारे गये (जिल्द २, पृ० २०१)।

लाडणू मुझे दे दे और दूसरे अब तूने अपने बाहुबल से अपने लिए नया राज्य स्थापित कर लिया है, इसलिए जोधपुर के अपने भाइयों से राज्य के लिए दावा न करना।" बीका ने इन बातों को स्वीकार करते हुए कहा—"मेरी भी एक प्रार्थना है। मैं बड़ा पुत्र हूं, अतएव तख्त, छत्र आदि तथा आपकी ढाल तलवार मुझे मिलनी चाहिये।" जोधा ने इन सब वस्तुओं को जोधपुर पहुंच कर भेज देने का वचन दिया। अनन्तर दोनों ने अपने-अपने राज्य की ओर प्रस्थान किया[1]।

बीका की जोधपुर पर चढ़ाई

जोधा का जोधपुर में देहांत हो जाने पर वहां की गद्दी पर सातल[2] बैठा, परन्तु वह अधिक दिनों तक राज्य न करने पाया था कि मुसलमानों के हाथ से मारा गया। उसके कोई सन्तान न होने से उसके बाद उसका छोटा भाई सूजा गद्दी पर बैठा। यह समाचार मिलते ही बीका ने राज्य चिह्न आदि लाने के लिए पड़िहार बेला को सूजा के पास जोधपुर भेजा, परन्तु सूजा ने ये वस्तुएं देने से इनकार कर दिया। जब बीका को यह खबर मिली तो उसने अपने सरदारों से सलाहकर बड़ी फौज के साथ जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। इस अवसर पर द्रोणपुर से बीदा ३००० फौज लेकर उसकी सहायता को आया और कांधल के पुत्र अरड़कमल (साहवा का) तथा राजसी (राजासर का) और पौत्र वणीर (चाचावाद का) भी अपनी अपनी सेना के साथ आये। इनके

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ५। मुंशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ३१-३३। पाउलट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६।

(२) एक प्राचीन गीत प्राप्त हुआ है, जिसमें सातल का जैसलमेर के रावल देवीदास, पूगल के राव शेखा तथा नागोर के खां के साथ बीका पर चढ़कर जाने का उल्लेख है, परन्तु इस चढ़ाई में उन्हें सफलता न मिली (जर्नल ऑव् दी एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल, ई० स० १९१७, पृ० २३५)। इस गीत के रचयिता का नाम अज्ञात है और न यही पता चलता है कि इसकी रचना कब हुई, जिससे इसकी सत्यता में सन्देह है। यदि उक्त गीत में कुछ सत्यता हो तो यही मानना पड़ेगा कि पहले सातल ने बीका पर चढ़ाई की थी, फिर उसका देहांत हो जाने और सूजा के गद्दी बैठने पर बीका ने जोधपुर पर चढ़ाई की हो।

अतिरिक्त सारूडे से मडला भी सहायतार्थ आया तथा भाटी और जोहिये आदि भी बीका के साथ हो गये। इस बडी सेना के साथ बीका देशणोक होता हुआ जोधपुर पहुंचा। सूजा ने स्वय गढ के भीतर रहकर कुछ सेना उसका सामना करने के लिए भेजी, परन्तु वह अधिक देर तक बीका की फौज के सामने ठहर न सकी। अनन्तर बीका की सेना ने जोधपुर के गढ को घेर लिया। दस दिन मे ही पानी की कमी हो जाने के कारण जब गढ़ के भीतर के लोग घबडाने लगे तो सूजा की माता हाडी जसमादे के कहलाने से बीका ने अपने मुसाहिबो को गढ मे सुलह की शर्तें तय करने के लिए भेजा, परन्तु कुछ तय न हो सका, जिससे दो दिन बाद सूजा के कहने से जसमादे ने स्वय बीका से मिलकर कहा—"तू ने तो अब नया राज्य स्थापित कर लिया है। अपने छोटे भाइयों को रक्खेगा तो वे रहगे।" बीका ने उत्तर दिया—"माता, मैं तो पूजनीक चीजे[1] चाहता हू।" तब जसमादे ने पूजनीक चीजे उसे देकर सुलह कर ली, जिनको लेकर बीका बीकानेर लौट गया[2]।

---

(१) ख्यातों आदि में इन पूजनीक चीज़ों के ये नाम मिलते हैं—

१—राव जोधा की ढाल तलवार। २—तख़्त। ३—चवर। ४—छत्र। ५—साखले हरभू की दी हुई कटारी। ६—हिरण्यगर्भ लक्ष्मीनारायण की मूर्ति। ७—अठारह हाथोंवाली नागणेची की मूर्ति। ८—करड। ९—भवर ढोल। १०—बैरीसाल नक्कारा। ११—दलसिगार घोड़ा। १२—भुजाई की देग।

इनमें से अधिकाश चीज़ें अर्थात् तख़्त, ढाल, तलवार, कटार, छत्र, चवर आदि बीकानेर के क़िले में रक्खी हुई हैं और वर्ष मे दो बार—दशहरे (विजयादशमी) और दीवाली के दिन—बीकानेर नरेश स्वय इनका पूजन करते हैं।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ५ ६। मुशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ३५-३६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ९। कविराजा बाकीदास, ऐतिहासिक बातें, सख्या २६११। रामनाथ रत्नू, इतिहास राजस्थान; पृ० १५४। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४७९-४८०।

जोधपुर राज्य की ख्यात में सूजा के प्रसग में इस चढ़ाई का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है, परन्तु उसी पुस्तक में वरजाग (भीमोत) के प्रसग में बीका का सूजा के राजत्व काल में जोधपुर पर चढकर आना स्वीकार किया है (जि० १, पृ० ५९)।

उन दिनो मेड़ते पर बीका के भाई दूदा तथा वरसिंह का अमल था। वरसिंह[1] इधर उधर बहुत लूटमार किया करता था। एक बार उसने साभर को लूटा तथा अजमेर की भूमि का बहुत बिगाड किया। इसपर अजमेर के सूबेदार (मल्लूखा) ने अपने आपको उससे लड़ने में असमर्थ देख उसे लालच देकर अजमेर बुलाया और गिरफ्तार कर लिया। इस खबर के मिलने पर मेडता के प्रबन्ध के लिए अपने पुत्र वीरम को छोड़कर दूदा बीकानेर चला गया जहा उसने बीका को यह घटना कह सुनाई। इसपर बीका ने कहा—"तुम मेडते जाकर फौज एकत्र करो, मैं आता हू।" दूदा के जाने पर बीका ने इसकी खबर सूजा के पास भिजवाई और स्वय सेना लेकर रीया पहुचा, जहा दूदा अपनी फौज के साथ उससे आ मिला। जोधपुर से चलकर सूजा ने कोसाणे मे डेरा किया। अजमेर का सूबेदार इन विशाल सेनाओ का आना सुनते ही डर गया और उसने वरसिंह को छोडकर सुलह कर ली। अनन्तर दूदा तो वरसिंह को लेकर मेडते गया और बीका बीकानेर लौट गया। सूजा सुलह का हाल सुन कोसाणे से जोधपुर चला गया। कहते हैं कि वरसिंह को भोजन मे जहर दे दिया गया था, जिससे मेडता लौटने के कुछ मास बाद उसका देहात हो गया[2]।

बीका का वरसिंह को अजमेर की कैद से छुडाना

शेखावाटी के खडेला प्रदेश का स्वामी रिडमल प्राय बीका के राज्य म लूट मार किया करता था। उसने एक बार बीकानेर और कर्णावाटी का बहुत नुक़सान किया, जिसपर बीका ने ससैन्य उसपर आक्रमण कर दिया। रिड़मल ने दो कोस सामने आकर उसका सामना किया, पर

बीका का खडेले पर आक्रमण

(१) झाबुआवालों का पूर्वज। वरसिह का पुत्र सीया, पौत्र भीमा और प्रपौत्र केशोदास था, जिससे झाबुआ का राज्य क़ायम हुआ।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६। मुन्शी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ३६ ४१। कविराजा बाकीदास, ऐतिहासिक बातें, स० ६२१। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४७६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६।

उसे परास्त होकर भागना पड़ा। तब बीका की सेना ने उस प्रदेश को लूटा, जिससे बहुत सा माल उसके हाथ लगा[1]।

बीका का अंतिम आक्रमण रेवाड़ी पर हुआ। बहुत दिनों से उसकी इच्छा दिल्ली की तरफ़ की भूमि दबाने की थी। अतएव फ़ौज के साथ उसने रेवाड़ी की ओर कूच किया और उधर की बहुत सी भूमि पर अधिकार कर लिया[2]। खडेले के स्वामी रिड़मल को जब इसकी ख़बर लगी तो उसने दिल्ली के सुल्तान से सहायता की याचना की, जिसपर सुलतान ने ८००० फ़ौज के साथ नवाब हिंदाल[3] को उसके साथ कर दिया। ये दोनों बीका पर चढ़े, जिसपर बीका ने वीरतापूर्वक इनका सामना किया तथा रिड़मल और हिन्दाल दोनों को तलवार के घाट उतार नवाब की सारी सेना को भगा दिया[4]।

बीका की रेवाड़ी पर चढ़ाई

ख्यातों में लिखा है कि बीकानेर लौटकर सुखपूर्वक राज्य करते हुए वि० स० १५६१ आश्विन सुदि ३ (ई० स० १५०४ ता० ११ सितंबर) को बीका का देहांत हो गया तथा उसकी आठ राणियां सती हुईं[5]। बीका के मरने का यह संवत्

बीका की मृत्यु

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७। मुन्शी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ४१-४३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १०।

(२) बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' में बीका का बहलोलशाह के राज्य में फ़तहपुर से झूंझणूं तक अपना डंका बजाने का उल्लेख मिलता है (छंद ४६)।

(३) नवाब हिन्दाल बाबर के चौथे पुत्र मिर्ज़ा हिन्दाल से भिन्न व्यक्ति होना चाहिये, क्योंकि मिर्ज़ा हिन्दाल तो ई० स० १५५१ (वि० स० १६०८) में खैबर के पास कामरां की सेना के साथ की लड़ाई में रात के समय मारा गया था। कर्नल पाउलेट ने अपने 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' के टिप्पण में हिन्दाल को बाबर का भाई लिखा है (पृ० १०), जो भ्रमपूर्ण ही है।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ४३-४४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १०।

(५) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी

तो ठीक है, परन्तु तिथि अशुद्ध है, क्योंकि बीका के मृत्यु स्मारक शिला लेख मे उसका आषाढ सुदि ५ (ता० १७ जून) सोमवार को देहात होना लिखा है[1], जो विश्वसनीय है।

बीका के दस पुत्र हुए[2]—

बीका की सतति

१ नरा, २ लूणकर्ण, ३ घडसी,[3] ४ राजसी,[4] ५ मेघराज, ६ केलण, ७ देवसी, ८ विजयसिंह, ९ अमरसिंह और १० बीसा।

का जीवनचरित्र, पृ० ४५। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर, स्टेट, पृ० १०।

टॉड ने बीका की मृत्यु वि० स० १५५१ (ई० स० १४९४) में लिखी है (राजस्थान, भाग २, पृ० ११३२), जो ठीक नहीं है। दयालदास की ख्यात मे बीका के साथ आठ राणियों के सती होने का उल्लेख है, परन्तु उसके स्मारक लेख में केवल तीन राणियों का सती होना लिखा है, जो अधिक विश्वसनीय है।

(१) सवत् १५६१ वर्षे शाके १४२६ प्रवर्तमाने आषाढमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ पचम्या सोमवासरे रावजी श्रीजोधाजी तत्पुत्र रावजी श्रीबीकोजी व श्री पुगलाणी निरवाणजी एव द्वाभ्या धर्मपत्नीभ्या परमधाम मुक्तिपद प्राप्त ।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७। मुशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ४६।

(३) इसके दो पुत्रों में से देवीसिह को गारबदेसर और डालूसिंह (डूगरसिह) को घडसीसर की जागीर मिली। घड़सी के वशज घड़सीयोत बीका कहलाये।

(४) राजसी को जागीर में राजलदेसर मिला था, जहा से उसकी मृत्यु का स्मारक शिलालेख वि० स० १५८१ आषाढ़ सुदि १० (ई० स० १५२४ ता० ११ जून) शुक्रवार का मिला है, जिसमें लिखा है कि राठोडवशी राव श्री बीका का पुत्र राजसी उक्त दिन मृत्यु को प्राप्त हुआ और सोढी रत्नादे उसके साथ सती हुई।

सवत् १५८१ वर्षे आसाढ मासे सुकल पषे १० सुक्र

जिस राजपूती वीरता से राजस्थान का इतिहास भरा पड़ा है, राव बीका उसका एक ज्वलन्तयमान उदाहरण था। वह बड़ा ही पितृभक्त, उदार, वीर एवं सत्यवक्ता था। जिस प्रकार पितृ भक्ति के लिए मेवाड़ के इतिहास मे रावत चूडा का नाम प्रसिद्ध है, वैसे ही जोधपुर और बीकानेर के इतिहास मे राव बीका का नाम भी अग्रगण्य है। पिता की इच्छा का आभास पाते ही उसने जोधपुर के राज्य की आकांक्षा छोड़ दी और अपने बाहुबल से अपने लिए एक नया राज्य कायम कर लिया। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर बडा होने पर भी, उसने अपने पैतृक राज्य से सदा के लिए स्वत्व त्याग दिया। ऐसी अनन्य पितृभक्ति बहुत कम लोगो मे प्रस्फुटित होती है। इसके अतिरिक्त उसका सत्य आचरण भी कम प्रशंसनीय नही है। पिता को दिया हुआ वचन उसने पूर्ण रूप से निभाया और कभी छल या कपट से अपना स्वार्थ सिद्ध न किया।

राव बीका का चरित्र

उसने अपने जीवनकाल मे ही बीकानेर राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा दिया था। जब उसने पहले पहल कोडमदेसर में गढ बनवाना प्रारंभ किया तो भाटियों ने उसका विरोध किया, जिससे उस स्थान को छोडकर उसने वि० स० १५४५ (ई० स० १४८८) म बीकानेर के नवनिर्मित गढ के आस पास शहर बसाया। इसके बाद उसने विद्रोही भाटियों, जाटों, जोइयों, खीचियों, पठानों, बाघोडों, बलूचियों और भूटों को हराकर अभूतपूर्व वीरता, साहस एवं युद्ध कौशल का परिचय दिया। पंजाब के हिसार तक उसने अपना अधिकार जमा दिया था और ऐसी प्रसिद्धि है कि उसकी जीवितावस्था में ही दूर दूर तक ३००० गांवों म उसकी आन (दुहाई) फिरने लगी थी। उसकी

दिने घटिका ५ उपरात ११ मध(ध्ये) देवलोके भवतु राठवड वसि राव सी(श्री)बीका सुत राजसीजी देवलोक भवतु सती सोढी रतना दे सहत • ।

(मूल लेख की छाप से)।

शक्ति कितनी बढ़ गई थी, यह इसीसे स्पष्ट है कि पूजनीक चीजे लेने के लिए उसकी जोधपुर पर चढ़ाई होने पर राव सूजा के लिए उसका सामना करना कठिन हो गया, जिससे अन्त मे अपनी माता जसमादे के द्वारा पूजनीक चीजे भिजवाकर उस(सुजा)ने सुलह कर ली।

बीका का हृदय बडा उदार था। दूसरों का कष्ट मिटाने के लिए वह अपनी जान को सकट मे डाल देता था। पूगल के राव शेखा के लघों द्वारा बन्दी कर लिये जाने पर उस(बीका)ने ससैन्य उनपर चढाई कर उसे मुक्त कराया था। पितृभक्ति के साथ साथ उसमे भ्रातृप्रेम का भी प्रचुर मात्रा में समावेश था। भाइयो पर सकट पडने पर, उसने उन्हे आश्रय भी दिया और सहायता भी पहुचाई। राव बीदा के हाथ से छापर-द्रोणपुर का इलाका निकल जाने पर वह बीका के पास चला गया। यह बीका की समयोचित सहायता का ही फल था कि उसका वहा पुन आधिपत्य होना सभव हो सका। उसके बाद भी बीका के वशज समय-समय पर बीदावतो की सहायता करते रहे, जिससे बीदावत बीकानेर के ही अधीन हो गये। मेडते के स्वामी वरसिंह के अजमेर के सूबेदार द्वारा गिरफ़्तार कर लिये जाने पर बीका ने ससैन्य जाकर उसे भी छुडाया।

वह माता करणीजी का अनन्य उपासक था और राज्य की वृद्धि को उसी की कृपा का फल समझता था।

राव नरा

राव बीका का परलोकवास होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र नरा बीकानेर का स्वामी हुआ, परन्तु केवल कुछ मास राज्य करने के बाद ही वि० स० १५६१ माघ सुदि ८ (ई० स० १५०५ ता० १३ जनवरी) को उसका देहात हो गया[१]।

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७। मुशी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवनचरित्र, पृ० ४६। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १०।

'वीरविनोद' मे नरा का जन्म स० १५२५ कार्तिक वदि ४=ई० स० १४६८

राव लूणकर्ण

जन्म तथा राज्याभिषेक

बीका की राणी रंगकुंवरी के गर्भ से वि० सं० १५२६ माघ सुदि १० (ई० स० १४७० ता० १२ जनवरी) को लूणकर्ण का जन्म हुआ था[1]। नरा के निःसन्तान मरने पर उसका छोटा भाई होने के कारण वि० सं० १५६१ फाल्गुन वदि ४ (ई० स० १५०५ ता० २३ जनवरी) को वह (लूणकर्ण) बीकानेर की गद्दी पर बैठा[2]।

ददरेवा पर चढ़ाई

उसके राज्यारंभ में ही आस पास के इलाक़ों के मालिक, जिन्हें उसके पिता ने अपने राज्य में मिला लिया था, बिगड़ गये और लूट मार कर प्रजा को अहित करने लगे। अतएव अपने भाइयों तथा अन्य राजपूतों आदि के साथ एक बड़ी सेना एकत्र कर उस लूणकर्ण ने उनका दमन करने के लिए प्रस्थान किया। सर्वप्रथम उसने वि० सं० १५६६ आश्विन सुदी १० (ई० स० १५०६ ता० २३ सितंबर) को बीकानेर से पूर्व ददरेवा पर आक्रमण किया। वहां के स्वामी मानसिंह चौहान (देपालोत) ने सात मास तक तो क़िले के भीतर रहकर लूणकर्ण का सामना किया, परन्तु रसद की कमी हो जाने के कारण अन्त में गढ़ के द्वार खोलकर वह ५०० साथियों

ता० ५ अक्टोबर (भाग २, पृ० ४८०) तथा मुंशी देवीप्रसाद की पुस्तक (राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र) में वि० सं० १५२६ कार्तिक वदि ४=ई० स० १४६९ ता० २५ सितंबर (पृ० ४७) दिया है। इसने थोड़े ही समय राज्य किया, इसलिए किसी किसी वंशावली लेखक ने इसका नाम तक छोड़ दिया है। टॉड ने भी इसका नाम नहीं दिया है।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २ पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र पृ० ४७। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १०।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद, राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र, पृ० ४८। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट के 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' में पौष मास में लूणकर्ण का गद्दी पर बैठना लिखा है (पृ० १०), जो ठीक नहीं हो सकता।

सहित उसकी सेना पर टूट पडा और घड़सी[1] के हाथ से मारा गया। फलस्वरूप दद्रेवा का सारा परगना लूणकर्ण के हाथ में आ गया, जहां अपने थाने स्थापित कर वह बीकानेर लौट गया। इस युद्ध मे बीदा के पुत्र ससारचन्द तथा उदयकरण, पूगल का राव हरा, चाचाबाद का वणीर, साहबे का अरडकमल, सारूड का महेशदास आदि भी अपनी-अपनी सेना सहित उसके साथ थे[2]।

फतहपुर पर चढाई

उन दिनो फतहपुर पर क़ायमख़ानियो[3] का अधिकार था और वहा दौलतखा शासन करता था। उससे तथा रगखा से भूमि के लिए सदा झगड़ा रहता था। इस अवसर से लाभ उठाकर लूणकर्ण ने वि० स० १५६६ वैशाख सुदि ७ (ई० स० १५१२ ता० २२ अप्रेल) को फतहपुर पर चढ़ाई कर दी। इसपर दौलतखा तथा रगखा मिलकर लड़ने को आये, परन्तु उन्हें हारकर भागना पडा। जब राव लूणकर्ण के आदमियो ने उनका पीछा किया, तब उन्होने १२० गांव उसे देकर सुलह कर ली। इन गावों में भी राव लूणकर्ण ने अपने थाने स्थापित कर दिये[4]।

---

(१) लूणकरण का छोटा भाई।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७८। मुन्शी देवीप्रसाद, राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र, पृ० ४८-५१। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८१। ठाकुर बहादुरसिह, बीदावतो की ख्यात, पृ० ४८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ११।

(३) हिसार के फ़ौजदार सैय्यद नासिर ने दरेरे के निवासी चौहानो को परास्त कर वहा से निकाल दिया। इस अवसर पर केवल दो बालक—एक चौहान और दूसरा जाट—वहा रह गये, जिनको उसने महावत के सुपुर्द कर दिया। बाद में बादशाह बहलोल लोदी ने चौहान बालक को मुसलमान कर, सैय्यद नासिर का मनसब देकर उसका नाम कायमख़ा रक्खा। उसने अपने लिए झूंझणू की भूमि में फ़तहपुर बसाया। इसी कायमख़ा के वशज कायमख़ानी कहलाये।

(४) दयालदास की ख्यात, जिल्द २, पत्र ८। मुन्शी देवीप्रसाद, राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र, पृ० ५१ २। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ११।

अनन्तर राव लूणकर्ण ने चायलवाडे पर, जो वर्तमान सिरसा और हिसार के किनारे पर बसा हुआ था, आक्रमण किया, क्योंकि वहा के राजपूत भी बिगड रहे थे। उसके ससैन्य आगमन का समाचार पाते ही वहा का चायल स्वामी पूना भागकर भटनेर चला गया और हिरदेसर, साहबा एव गडीणिया के बीच के चायलवाडे के ४४० गाव लूणकर्ण के अधीन हो गये, जहा उसके थाने स्थापित हो गये[१]।

चायलवाड़े पर चढ़ाई

वि० स० १५७० (ई० स० १५१३) मे नागोर के स्वामी मुहम्मदखा ने बीकानेर पर चढ़ाई कर दी। वीर लूणकर्ण ने अपनी सेना सहित उसका सामना किया और अवसर देखकर रात्रि के समय मुसलमानी फौज पर आक्रमण कर दिया, जिसमे मुहम्मदखा बुरी तरह घायल हुआ तथा उसकी पराजय हुई[२]।

नागोर के खान की बीकानेर पर चढाई

चित्तोड के महाराणा रायमल की पुत्री का सम्बन्ध राव लूणकर्ण से हुआ था, इसलिए वि० स० १५७० फाल्गुन वदि ३ (ई० स० १५१४ ता० १२ फरवरी) को उस(लूणकर्ण)ने चित्तोड़ जाकर खूब धूम धाम से अपना विवाह किया[३]।

महाराणा रायमल की पुत्री से विवाह

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८। मुशी देवीप्रसाद, राव लूणकरणजी का जीवनचरित्र, पृ० ५२ ३। पाउलेट, गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ११।

(२) बीठू सूजा, जैतसी रो छन्द, सख्या ५७-६१।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८। मुशी देवीप्रसाद, राव लूण कर्णजी का जीवनचरित्र, पृ० ५३ ५४। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ११।

ख्यातो में यह विवाह महाराणा रायमल के समय में ही होना लिखा है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि उक्त महाराणा का तो वि० स० १५६६ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १५०९ ता० २४ मई) को देहान्त हो चुका था। अतएव यह विवाह उक्त महाराणा के पुत्र महाराणा सग्रामसिंह (सागा) के समय होना चाहिये।

ख्यातों में लिखा है कि राठोड़ों का चारण लाला, जैसलमेर के रावल जैतसी के पास मागने के लिए गया। जब भी लाला रावल के पास जाता वह (रावल) उसके सामने राठोडों की हसी करता।

जैसलमेर पर चढाई

इसपर एक दिन लाला ने कहा—"रावल, चारणों से ऐसी हसी नही करनी चाहिये, राठोड बहुत बुरे हैं।" रावल ने प्रत्युत्तर म बिगडकर कहा—"जा, तेरे राठोड़ मेरी जितनी भूमि पर अपना घोड़ा फिरा देंगे, वह सब भूमि मैं ब्राह्मणो को दान कर दूगा।" लाला ने बीकानेर लौटने पर लूणकर्ण से सारी घटना कही तथा अनुरोध किया कि आप काधल अथवा बीदा के पुत्रों को आज्ञा दें कि वे जाकर रावल के कुछ गावो मे अपने घोडे फिरा दें। तब राव ने उत्तर दिया—"लाला तू निश्चिन्त रह। जब रावल ने ऐसा कहा है, तो मैं स्वय जाऊगा।" अनन्तर उसने एक बडी सेना एकत्रकर जैसलमेर की ओर प्रस्थान किया। इस अवसर पर बीदा का पौत्र सागा, बाघा का पुत्र वणीर (वणवीर) और राजसी (काधलोत) तथा अन्य सरदार आदि भी सेना सहित लूणकर्ण की फौज के साथ थे। गाव राजोबाई (राजोलाई) मे फौज के डेरे हुए, जहा से मडला का पुत्र महेशदास ५०० सवारों के साथ चढ़कर गया और जैसलमेर की तलहटी तक लूटमार करके फिर वापस आ गया। उधर जैतसी ने अपने सरदारों आदि से सलाह कर रात्रि के समय शत्रु पर आक्रमण करना निश्चित किया। अनन्तर गढ़ की रक्षा की व्यवस्था कर वह ५००० आदमियों सहित राजोबाई में लूणकर्ण के डेरे पर चढ़ा। राव ने, जो अपनी सेना सहित तैयार था, उसका सामना किया। सेना कम होने के कारण जैतसी अधिक देर तक लड़ न सका और भाग निकला, परन्तु सागा ने उसका पीछाकर उसे पकड लिया और लूणकर्ण के पास उपस्थित किया, जिसने उसे हाथी पर बैठाकर सागा को ही उसकी चौकसी पर नियत किया। अनन्तर राठोड़ो की फौज ने जैसलमेर पहुचकर लूट मचाई, जिससे बहुतसा धन इत्यादि उसके हाथ लगा। लाला जब पुन जैतसी के पास गया तो वह बहुत लज्जित हुआ। लूणकर्ण एक मास तक घड़सीसर पर

रहा, परन्तु भाटी गढ़ से बाहर न निकले और उन्होंने भीतर से ही आदमी भेजकर सुलह कर ली। इसपर उस (लूणकर्ण) ने जैतसी को मुक्तकर जैसलमेर उसके हवाले कर दिया तथा अपने पुत्रों का विवाह उसकी पुत्रियों से किया। अनन्तर अपनी सेना सहित लूणकर्ण बीकानेर लौट गया[1]।

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८६। मुंशी देवीप्रसाद, राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र, पृ० ५४-७। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ११ १२। बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' (सख्या ६५ ७३) मे भी इस चढ़ाई का उल्लेख है।

लूणकर्ण की मृत्यु के लगभग लिखे हुए चारण गोरा के एक छन्द में भी लूणकर्ण के जैसलमेर को नष्ट करने तथा इसके अतिरिक्त मुहम्मदख़ा से युद्ध करने एव हासी, हिसार और सिरसा तक विजय करने का उल्लेख है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बगाल, ई० स० १९१७, पृ० २३७)।

ऊपर लिखी हुई ख्यातों आदि मे यह घटना रावल देवीदास के समय मे लिखी है, जो ठीक प्रतीत नही होती। जैसलमेर की तवारीख़ के अनुसार देवीदास का उत्तराधिकारी जैतसिंह (वि० स० १५५३ १५८६) राव लूणकर्ण का समकालीन था, जिसके समय मे बीकानेर की फ़ौज ने जैसलमेर पर चढ़ाई की और कुछ लूटमारकर वापस चली गई (पृ० ४६)।

मुहणोत नैणसी की ख्यात मे भी भाटियों के प्रसग में लिखा है कि देवीदास के किसी दोष के कारण बीकानेर के राव लूणकर्ण ने रावल जैतसी के समय जैसलमेर पर चढ़ाई की और नगर से दो कोस राजबाई की तलाई पर डेरा कर उस इलाक़े को लूटा। भाटियो ने रात को छापा मारने का विचार किया, परन्तु इसका पता किसी प्रकार लूणकर्ण को लग गया, जिससे उसने उन्हे मार भगाया। उसी ख्यात मे एक और मत दिया है कि जैतसी के वृद्ध होने पर उसके छोटे पुत्रों ने उसे क़ैद कर लिया था, परन्तु फिर कुछ स्वतन्त्रता मिलने पर उसने भाटियो से सलाह कर अपने ज्येष्ठ पुत्र लूणकर्ण को सिंध से, जहा वह जा रहा था, बुलाया। उसने उसका पुन जैसलमेर पर अधिकार करा दिया (जि० २, पृ० ३२७ २९)।

उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट है कि जिस किसी कारण से भी हो लूणकर्ण ने जैसलमेर पर चढ़ाई अवश्य की थी। जैसलमेर के शान्तिनाथ के मन्दिर से एक

अवसर पाकर जोधपुर के राव गांगा ने नागोर के खान पर आक्रमण कर उसका गढ़ घेर लिया। तब राव लूणकर्ण ने नागोर के खान द्वारा बुलाये जाने पर उसकी सहायतार्थ प्रस्थान किया और गांगा की सेना से लड़कर खान को बचा लिया तथा उन दोनों में मेल करा दिया[1]।

नागोर के खान की सहायता के लिए जाना

कुछ दिनों पश्चात् राव लूणकर्ण ने फीरोजशाह(?)को जीता और काठलिया, डीडवाणा, बागड, नरहड, सिंघाणा आदि पर आक्रमण कर उन्हें विजय करने के अनन्तर[2] पूगल के भाटी हरा, उदयकरण के पुत्र कल्याणमल[3], रायमल शेखावत (अमरसर का), तिहुणपाल (जोहिया) आदि के साथ नारनोल की तरफ ससैन्य कूच किया। मार्ग में छापर द्रोणपुर में डेरे हुए, जहां की अच्छी भूमि देखकर उसके मन में उसे भी हस्तगत करने का विचार हुआ। लौटते समय वहां पर भी अधिकार करने का निश्चयकर उसने आगे प्रस्थान किया, परंतु इसकी सूचना किसी प्रकार कल्याणमल को, जो उसके साथ था, लग गई, जिससे उसके हृदय में राव लूणकर्ण की ओर से शंका हो गई। नारनोल

नारनोल पर चढ़ाई और लूणकर्ण का मारा जाना

शिलालेख मिला है, जिससे पाया जाता है कि वि० सं० १५८१ तथा १५८३ (ई० स० १५२४ तथा १५२६) में जैतसिंह जीवित था—

॥ १ ॥ संवत् १५८३ वर्षे मागसिर सुदि ११ दिने महाराजाधिराज राउल श्रीजयतसिह विजयराज्ये ।सं० १५८१ वर्षे मागसिर वदि १० रविवारे महाराजाधिराज राउल श्रीजयतसिंह ।

अतएव यह निश्चित है कि यह चढ़ाई रावल जैतसिंह के समय ही हुई होगी, क्योंकि वह राव लूणकर्ण के समय विद्यमान था।

(१) बीठू सूजा; राव जैतसी रो छन्द, संख्या ७४-५।

(२) वही, संख्या ७५-६, ७८, ८० ८१।

(३) बीदावतों की ख्यात; भाग १, पृ० ५४। मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० २०७।

दयालदास की ख्यात आदि में कल्याणमल के स्थान में उसके पिता उदयकरण का नाम दिया है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि वह तो वि० सं० १५६५ में ही मर गया था।

से तीन कोस की दूरी पर ढोसी नामक गांव में लूणकर्ण की फौज के डेरे हुए। नारनोल का नवाब उन दिनों शेख अबीमीरा था। राव की शक्ति देखकर कछवाहों, तवरों आदि को भी भय हुआ, तब पाटण के तवर तथा अमरसर का रायमल (शेखावत) अपनी अपनी सेना सहित नवाब से मिल गये। नवाब ने एक बार सुलह करने का प्रयत्न किया, परन्तु लूणकर्ण ने ध्यान न दिया। उदयकरण के पुत्र कल्याणमल और रायमल में बड़ी मित्रता थी। अतएव उसने रायमल से मिलकर कहा—"मैं हू तो राव की फ़ौज के साथ पर झगड़े के समय उसका साथ छोड़कर भाग जाऊगा।" फिर उसने अपनी फौज में आकर भाटी हरा तथा जोहिया तिहुणपाल को भी अपनी तरफ मिला लिया और यह समाचार नवाब को दे दिया। फलत जब नवाब और राव लूणकर्ण में युद्ध हुआ तो कल्याणमल, भाटी तथा जोहियों ने किनारा कर लिया। विरोधी पक्ष की सेना अधिक होने से अन्त में लूणकर्ण की सेना के पैर उखड़ गये। फिर भी उसने तथा कुवर प्रतापसी, वैरसी और नेतसी ने बचे हुए राजपूतों के साथ वीरता पूर्वक नवाब का सामना किया, परन्तु नवाब की सेना बहुत अधिक थी और भाटी, जोहियों आदि के चले जाने से लूणकर्ण का पक्ष निर्बल हो गया था, इसलिए वे सब के सब बुरी तरह घिर गये। पुरोहित देवीदास ने बीदावतों को उलाहना भी दिया, पर वे सहायतार्थ न आये। अन्त में वि० स० १५८३ श्रावण वदि ४ (ई० स० १५२६ ता० २८ जून) को २१ आदमियों को मारकर अपने पुत्र प्रतापसी, नैतसी, वैरसी तथा पुरोहित देवीदास और कर्मसी[1] के साथ लूण-कर्ण अन्य राजपूतों सहित परमधाम सिधारा। यह समाचार बीकानेर पहुचने पर उसकी तीन राणिया सती हुई[2]।

(१) जोधपुर के राव जोधा का पुत्र। बाकीदास रचित 'ऐतिहासिक बातें' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यह लूणकर्ण की चाकरी में रहता था और गांव ढूसी (ढोसी) के युद्ध में उसके साथ ही मारा गया (सख्या १४५)। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इसका उल्लेख है (जिल्द १, पृ० ४०)।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६। मुशी देवीप्रसाद, राव लूण

लूणकर्ण की मृत्यु का उपर्युक्त संवत् तो ठीक है, पर तिथि ग़लत है, क्योंकि उसकी छत्री (स्मारक) के लेख मे वि० स० १५८३ वैशाख वदि २ (ई० स० १५२६ ता० ३१ मार्च) शनिवार को उसकी मृत्यु होना लिखा है[1]।

लूणकर्ण[2] के नीचे लिखे बारह पुत्रों के नाम प्राय प्रत्येक ख्यात में मिलते हैं[3]—

सतति

१—जैतसी

२—प्रतापसी—इसके वश के प्रतापसिंगोत बीका कहलाये।

कर्णजी का जीवनचरित्र, पृ० ५७ ६ (तिथि श्रावण वदि ६ दी है)। बाकीदास, ऐतिहासिक बातें, सख्या २२५८। मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० २०७। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८१। जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० ५०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १२।

बीठू सूजा रचित 'राव जैतसी रो छन्द' में भी मुसलमानों के हाथ से लूणकर्ण के मारे जाने का उल्लेख है (छन्द ६१ ६२) एव चारण गोरा की लिखी हुई एक कविता मे भी इसका वर्णन है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बगाल, ई० स० १९१७, पृ० २३८ ३९।

(१) सवत् १५८३ वर्षे शाके १४४८ प्रवर्तमाने वैशाखमासे कृष्णपक्षे तिथौ द्वितीयाया शनिवासेर रावजी श्रीबीकोजी तदात्मज रावजी श्रीलूणकर्णजी वर्मा तिसृभि. धर्मपत्निभि स (सह) दिव गत ।

(२) लूणकर्ण की एक स्त्री लालादेवी का नाम बीठू सूजा के 'जैतसी रो छन्द' (सख्या ७३) तथा जयसोम-रचित 'कर्मचन्द्रवशोत्कीर्तनक काव्यम्' (श्लोक १५७) मे मिलता है। उसी के गर्भ स जैतसी का जन्म होना भी सस्कृत काव्य के उपर्युक्त श्लोक से सिद्ध है।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६। मुशी देवीप्रसाद, राव लूणकर्ण का जीवनचरित्र, पृ० ५६-६०। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १२।

जयसोम-रचित कर्मचन्द्रवशोत्कीर्तनक काव्यम्' में भी लूणकर्ण के ११ पुत्रों (कुशलसी को छोड़कर) के नाम दिये हैं—

३—वैरसी—इसका पुत्र नारण हुआ जिसके वश के नारणोत बीका कहलाये।

४—रतनसी—इसने महाजन में ठिकाना बाधा। इसके वश के रतनसिंघोत बीका कहलाये।

५—तेजसी—इसके वशज तेजसिंघोत बीका कहलाये।

६—नेतसी

७—करमसी

८—किशनसी

९—रामसी

१०—सूरजमल

११—कुशलसी

१२—रूपसी

राव लूणकर्ण का व्यक्तित्व

राव लूणकर्ण वीर पिता का वीर पुत्र था। पिता के स्थापित किये हुए राज्य की उसने अपने पराक्रम से बहुत वृद्धि की। दद्रेवा आदि के विद्रोही सरदारो का दमन करने के अतिरिक्त उसने फतहपुर और चायलवाडे को भी अपने अधीन बनाया। साहसी और असामान्य वीर होने के साथ ही वह बड़ा उदार, दानी, प्रजापालक और गुणियों का सम्मान करनेवाला था। नागोर के खान की बीकानेर पर चढ़ाई होने पर उसने बडी वीरता से उसका सामना कर उसे हराया था, परन्तु बाद मे जब खान के ऊपर स्वय सकट आ पडा और जोधपुर के राव गागा ने उसपर चढ़ाई की तो बुलाये जाने पर उस(लूणकर्ण)ने उसकी सहायतार्थ जाकर अपनी उदार-हृदयता का परिचय दिया। यही नही जैसलमेर के रावल को परास्त कर बन्दी कर

जेतृसिहो द्विषा जेता सप्रतापः प्रतापसी।
रत्नसिहो महारत्न तेजसी तेजसा रवि ॥ १५५ ॥

वैरिसिहो कृष्णनामा रूपसीरामनामकौ।
नेतसीकर्मसीसूर्यमल्लाद्या. कर्णसूनव ॥ १५६ ॥

लेने के बाद भी उसने मुक्त कर दिया। कवियों आदि गुणीजनों को वह दरबार की शोभा मानता और उनका बड़ा सम्मान करता था। जैसलमेर की चढ़ाई वास्तव मे चारण लाला की बात रखने के लिए ही हुई थी। 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक काव्यम्' मे उसकी समानता दानी कर्ण से की है[1]। ऐसे ही बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' मे भी उसे कलियुग का कर्ण कहा है। इससे स्पष्ट है कि वह दान करने का अवसर पाने पर कभी पीछे नहीं हटता था[2]। 'जैतसी रो छन्द' मे उसके चारणो, कवियों आदि गुणीजनों को हाथी, घोडे आदि देने का उल्लेख है[3]।

प्रजा के हित और उसके कष्टो का ध्यान सदा उसके हृदय मे बना रहता था। दुर्भिक्ष पडने पर वह खुले हाथो प्रजा की सहायता करता[4]

---

(१) आकर्णित पुरा कर्ण स कर्णैरीक्षितोऽधुना।
दानाधिकृतया लब्धावतारोऽय स एव कि ॥ १५३ ॥

(२) कळि काळि परी क्रम श्रे करन्न
देखियइ दुवापुर दिख्या दन्न। ॥ ६३ ॥

(३) तेडिय नट हूंता गुजरात
वीकउत उबारण सुजस वात।
ताजी हसत्ति दीन्हा तियाइ
रण हूत पिता मोखवि राइ ॥ ५६ ॥
इळ राइ करन वारउ कि ईद
गुणियणा त्रिहे बाधा गईद।
ताकुआ रेसि सोभाग तत्ति
हिन्दुवइ राइ दीन्हा हसत्ति ॥ ६२ ॥

(४) नवसहस राइ नीसाण नाद
पूजिजइ देव आगी प्रसाद।
चउपनउ समीसर करनि चाळि
वेवरउ दुनी राखी दुकाळि ॥ ५४ ॥

और उसके प्रत्येक कष्ट को दूर करना अपना कर्तव्य मानता। जिस राज्य में प्रजा और राजा का ऐसा सम्बन्ध हो वहा पर शान्ति और समृद्धि का होना अवश्यभावी है। लूणकर्ण के राज्यकाल में राज्य का वैभव बहुत बढ़ा और प्रजा भी सुखी और सम्पन्न रही।

छापर द्रोणपुर पर अधिकार करने की लालसा उसका काल हुई। उसकी बढ़ी हुई शक्ति से वैसे ही पडोस के सरदार भयभीत रहते थे। वे भीतर ही भीतर उसकी बढती हुई शक्ति को दबाने का अवसर देख रहे थे। लूणकर्ण अपनी शक्ति से मदमत्त होने अथवा मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञाता न होने के कारण परिस्थिति को ठीक ठीक हृदयगम न कर सका। फलत नारनोल के नवाब पर जब उसकी चढ़ाई हुई तो उसी(लूणकर्ण)के सरदार उसके विपक्षियों से जा मिले। फिर भी वह बड़ी वीरता से लड़ा और अपने थोड़े से साथियों सहित मारा गया।

राव जैतसिंह

लूणकर्ण के ज्येष्ठ पुत्र[1] जैतसी (जैतसिंह) का जन्म वि० सं०

करन राउ करइ कुसमइ कडाहि
मेदनी उबारी मइ्ल माहि। ॥ ५५ ॥

(बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द')।

(१) टॉड राजस्थान में लिखा है कि लूणकर्ण के चार पुत्र थे, जिनमें से सब से बड़ा (नाम नहीं दिया है, रत्नसिंह होना चाहिये) महाजन और उसके साथ के एकसौ चालीस गाव मिलने पर बीकानेर से अपना स्वत्व त्याग वहीं अपना ठिकाना बाध रहने लगा। तब उसका छोटा भाई जैतसिंह वि० स० १५६६ (ई० स० १५१२) में बीकानेर की गद्दी पर बैठा (जि० २, पृ० ११३२), परन्तु जैतसिंह के गद्दी पर बैठने के सवत् के समान ही टॉड का उपर्युक्त कथन निराधार है। जयसोम रचित 'कर्मचन्द्र-वशोत्कीर्तनक काव्यम्' से तो यही पाया जाता है कि जैतसिंह ही लूणकर्ण का ज्येष्ठ पुत्र तथा उत्तराधिकारी था, क्योंकि उसका नाम उसने लूणकर्ण के पुत्रों में सर्व प्रथम दिया है।

(श्लोक १५५-७)।

नैणसी ने भी जैतसी को ही लूणकर्ण का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है (ख्यात, जि० २, पृ० १६६)। ऐसा ही 'आर्यआख्यानकल्पद्रुम' से भी पाया जाता है (पृ० १०६)।

राव जेतसी

जन्म

१५४६ कार्तिक सुदि ८ (ई० स० १४८९ ता० ३१ अक्टोबर) को हुआ था[1]।

जब ढोसी नामक स्थान में पिता के मारे जाने का समाचार जैतसी के पास बीकानेर पहुचा तो उसी समय उसने राज्य की बाग डोर अपने हाथ में ले ली। उधर बीदावत उदयकरण के पुत्र कल्याणमल[2] ने बीकानेर पर अधिकार करने की लालसा से शीघ्र ही उस ओर प्रस्थान किया, परन्तु इसी बीच जैतसी ने गढ़ तथा नगर की रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर लिया और उस(कल्याणमल)के आते ही उससे कहलाया कि वापस लौट जाओ। कल्याणमल ने इसके प्रत्युत्तर में कहलाया कि मैं शोकप्रदर्शन करने के लिए आया हूं, परन्तु जैतसी ने उसके इस कथन पर विश्वास न किया, जिसपर उसने वहा से लौट जाने में ही बुद्धिमानी समझी[3]।

बीदावत कल्याणमल का बीकानेर पर चढ आना

अपने पिता को धोका देने का बदला लेने के लिए वि० स० १५८४ आश्विन सुदि १० (ई० स० १५२७ ता० ४ अक्टोबर) को जैतसी ने अपनी सेना द्रोणपुर पर चढ़ाई करने के लिए भेजी। उदयकरण का पुत्र कल्याणमल सेना का आगमन सुनते ही भागकर नागोर के खान के पास चला गया। तब जैतसी ने वहा की गद्दी पर बीदा के पौत्र सागा को, जो ससारचन्द का पुत्र था, बैठाया[4]।

द्रोणपुर पर चढ़ाई

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६। मुशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र, पृ० ६१। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १२।

(२) ठाकुर बहादुरसिह की लिखी हुई 'बीदावतों की ख्यात' में कल्याणमल के साथ नवाब (नारनोल) का भी बीकानेर जाना लिखा है (पृ० ५५६)।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६१०। मुशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र, पृ० ६१-२। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १३। इनमें कल्याणमल के स्थान में उसके पिता उदयकरण का नाम दिया है, जो ठीक नहीं है।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १०। मुशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी

अनन्तर उसने एक सेना के साथ सागा को सिंहाणकोट की ओर जोहियों के विरुद्ध भेजा, क्योंकि उनमें से बहुतो ने उसके पिता के साथ धोखा किया था। इस आक्रमण में सागा को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और जोहियों का सरदार तिहुणपाल लाहौर की तरफ भाग गया[1]।

सिंहाणकोट के जोहियों पर आक्रमण

जैतसी की बहन बालाबाई आमेर के राजा पृथ्वीराज को ब्याही थी। उस(पृथ्वीराज)के देहात से कुछ पीछे रत्नसिंह आमेर का स्वामी हुआ। बालाबाई का पुत्र सागा रत्नसिंह का सौतेला भाई था अत उसमें और रत्नसिंह मे अनबन हो गई, जिससे वह बीकानेर में अपने मामा जैतसी के पास चला गया। रत्नसिंह खूब शराब पिया करता था, अतएव अच्छा अवसर देखकर

कछवाहे सागा की सहायता करना

का जीवनचरित्र, पृ० ६२। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४७८। ठाकुर बहादुरसिंह, बीदावतों की ख्यात, पृ० ५६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १३।

टॉड लिखता है कि जैतसी ने बीदा के वशजों को अधीन बनाया और वह उनसे ख़िराज आदि लेने लगा (राजस्थान, जि० २, पृ० ११३२)। सभव है कि सागा के गद्दी बैठने के समय से बीदावतों ने बीकानेर की अधीनता पूर्ण रूप से फिर स्वीकार की हो। बीदा और उसके वशजों से बीदावतों की सात शाखाएं चली, जो नीचे लिखे अनुसार हैं—

१ बीदा के प्रपौत्र गोपालदास के पुत्र केशोदास से 'केशोदासोत'।

२ उपर्युक्त केशोदास के भाई तेजसिंह से 'तेजसीयोत'।

३ उपर्युक्त तेजसिंह के भाई जसवतसिंह के पुत्र मनोहरदास से 'मनोहरदासोत'।

४ उपर्युक्त मनोहरदास के भाई पृथ्वीराज से 'पृथ्वीराजोत'।

५ बीदा के पौत्र सांगा के भाई सूरा के पुत्र खगार से 'खगारोत'।

६ उपर्युक्त खगार के पुत्र किशनदास के प्रपौत्र मानसिंह से 'मानसिंहोत'।

७ उपर्युक्त सागा के भाई पाता के पुत्र मदनसिंह से 'मदनावत'।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १०। मुशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६२ ३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १३।

उसके सरदारों आदि ने भूमि को दबाना शुरू किया। जब यह खबर सांगा को बीकानेर में मिली तो उसने अपने मामा जैतसी से सारा हाल कहकर सहायता मांगी। जैतसी ने वणीर[1], रत्नसिंह[2], किशनसिंह[3], खेतसी[4], सांगा[5], महेशदास[6], भोजराज[7], बीका देवीदास[8], राव वैरसल आदि सरदारों के साथ एक बडी सेना सांगा के संग कर दी। अमरसर पहुंचने पर रायमल शेखावत भी उनसे आ मिला। उन दिनों आमेर में रत्नसिंह का सारा राजकार्य उसका मंत्री तेजसी (रायमलोत) चलाता था। रायमल ने उससे कहलाया कि राज तो सांगा को ही मिलेगा, अतएव अच्छा हो कि तुम उससे मिल जाओ। इसपर तेजसी सांगा से मिला और उसी के पक्ष में हो गया। उस-(तेजसी)के द्वारा सांगा ने कर्मचन्द नरूका को, जिसने आमेर की बहुतसी भूमि अपने अधिकार में कर ली थी, मारने की सलाह की। फिर मौजाबाद पहुंचने पर तेजसी ने जैमल के द्वारा, जो कर्मचन्द का भाई था और तेजसी के यहां काम करता था, उस(कर्मचन्द)को अपने पास बुलवाया जहां वह लाला सांखला[9] के हाथ से मारा गया। जैमल ने, जो साथ में था, इसका बदला तेजसी को मारकर लिया और वह सांगा को भी मार लेता, परन्तु इसी बीच वह उस(सांगा)के आदमियों द्वारा मारा गया। अनन्तर सांगा ने आमेर के बहुत से भाग पर अधिकार कर लिया और आसपास के सरदार उससे आ मिले। आमेर के सिंहासनारूढ़ स्वामी से उसने छेड़ छाड़ करना उचित न समझा, अतएव अपने

(१) कांधल का पौत्र, चाचावाद का स्वामी।
(२) राव जैतसी का भाई, महाजन का ठाकुर।
(३) कांधल का पौत्र, राजासर का रावत।
(४) कांधल का पौत्र, साहवे का स्वामी।
(५) बीदा का पौत्र, बीदासर का स्वामी।
(६) मंडला का वंशज, सारूंडे का स्वामी।
(७) भेलू का स्वामी।
(८) घड़सीसर का स्वामी।
(९) नापा सांखला का भाई।

लिए सांगानेर नामक नगर अलग बसाकर वह वहां रहने लगा। रत्नसिंह (महाजन) तो उसके पास ही रह गया और शेष सब फौज बीकानेर लौट गई[1]।

जोधपुर के राव सूजा के बेटे—वीरम, बाघा और शेखा—थे। बाघा के पुत्र का नाम गांगा था। सूजा जब गद्दी पर था, तभी मारवाड़ के बड़े बड़े सरदार पाटवी वीरम से अप्रसन्न रहते थे[2]। अतएव सूजा का परलोकवास होने पर उन्होंने वीरम के स्थान में गांगा को जोधपुर का राव बना दिया। स्वामिभक्त महता रायमल ने इसका विरोध किया, परन्तु सरदारों आदि ने जब न माना तो वह वीरम के साथ सोजत में, जो वीरम को जागीर में दे दिया गया था, जा रहा। वहां रहकर उसने कई बार वीरम को गद्दी दिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु अन्त में गांगा पर चढ़ाई करने में वह मारा गया और सोजत पर गांगा ने अधिकार कर लिया। अनन्तर शेखा, हरदास ऊहड़[3] से मिलकर, जोधपुर

जोधपुर के राव गांगा की सहायता करना

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० ६ (टिप्पण १)। दयालदास की ख्यात, जि० १, पत्र १०। मुंशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र, पृ० ६३-४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १३।

(२) ख्यातों आदि में राजपूत सरदारों की अप्रसन्नता का कारण यह दिया है कि जिन दिनों मारवाड़ में सूजा राज करता था उस समय एक दिन कुछ ठाकुर वहां आये। उस दिन निरन्तर वर्षा होने के कारण वे अपने डेरों पर न जा सके और पाटवी वीरम की माता से उन्होंने अपने भोजन आदि का प्रबन्ध करा देने को कहलाया, परन्तु उसने ध्यान न दिया। तब उन्होंने गांगा की माता से अर्ज़ कराई, जिसने उनका बड़ा सत्कार किया। तभी से ठाकुर वीरम से अप्रसन्न रहने लगे और उन्होंने सूजा के बाद गांगा को गद्दी पर बैठाने का निश्चय कर लिया (मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० १४४। दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ११)।

(३) राठोड़ हरदास मोकलोत के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० १४७-१५२। यह राव आस्थान के पौत्र ऊहड़ का वंशधर था।

हस्तगत करने का उद्योग करने लगा। गागा ने, जिसका पक्ष बहुत बलवान था, भूमि के दो भाग कर सुलह करनी चाही, परन्तु शेखा ने, हरदास के कहने के अनुसार, इस शर्त को स्वीकार न किया। तब गागा ने आदमी भेजकर बीकानेर के राव जैतसी से सहायता मांगी, जिसपर उस(जैतसी)ने रतनसी, बणीर, खेतसी, सांगा, वैरसल (पूगल का), महेशदास आदि अपने सरदारों के साथ एक बड़ी सेना एकत्रकर वि० सं० १५८५ मार्गशीर्ष वदि ७ (ई० स० १५२८ ता० ३ नवम्बर) को जोधपुर की ओर प्रस्थान किया[1]। उधर शेखा ने हरदास को नागोर के सरखेलखां के पास से सहायता लाने के लिए भेजा। नागोर की सीमा पर के २०० गांव मिलने के वादे पर सरखेलखां और उसका पुत्र दौलत खां एक विशाल फौज के साथ शेखा की मदद के वास्ते रवाना हुए और उन्होंने बिराई गांव में डेरा किया। गांगाणी गांव में गांगा के डेरे हुए जहां जैतसी भी आकर सम्मिलित हो गया। गांगा ने पुनः एकबार सन्धि करने का प्रयत्न किया, परन्तु शेखा ने कुछ ध्यान न दिया। दूसरे दिन विरोधी दलों की मुठभेड़ होने पर भी जब गांगा तथा उसके साथी भागे नहीं तो खान ने शेखा से कहा कि तुमने तो कहा था कि हमारे सामने वे ठहरेंगे नहीं, अब यह क्या हुआ। शेखा ने उत्तर दिया कि वे भाग तो जाते, परन्तु जोधपुर की मदद पर बीकानेर है। खान के हृदय मे उसी समय सन्देह ने घर कर लिया। इतने ही में गांगा ने अपने धनुष से एक तीर छोड़ा, जो खान के महावत को लगा। फिर तो जैतसी के राजपूतों ने खान के हाथी को जा घेरा और रत्नसिंह ने

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में गांगा द्वारा जैतसी के बीकानेर से सहायतार्थ बुलवाये जाने का वृत्तान्त नहीं दिया है। उक्त ख्यात में केवल इतना लिखा है कि जैतसी उन दिनों नागाणा गांव में मानता करने गया था और युद्ध में शामिल हो गया। उक्त ख्यात में राठोड़ों की शेखा तथा मुसलमानों पर की इस विजय का सारा श्रेय गांगा को दिया है (जिल्द १, पृ० ६४), परन्तु उससे बहुत प्राचीन मुहणोत नैणसी की ख्यात में स्पष्ट लिखा है कि गांगा ने राव जैतसी को बीकानेर से सहायतार्थ बुलवाया, जिसपर वह अपनी सेना सहित आया और उसी की वजह से गांगा की विजय हुई (जिल्द २, पृ० १५०-२)।

हाथी के एक बर्छी ऐसी मारी, जिससे वह घूमकर भाग गया[1]। साथ ही सारी यवन सेना भी मैदान छोड़कर भाग गई[2]। शेखा के अकेले रह जाने से उसकी पराजय हो गई, हरदास मारा गया और नवाब का सारा सामान विजेताओं के हाथ लगा। गांगा तथा जैतसी को, शेखा युद्धक्षेत्र में निपट घायल दशा में मिला। होश में लाये जाने पर जब उसका जैतसी से सामना हुआ तो उसने कहा—"रावजी, भला मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो यह चढ़ाई की। हम चाचा-भतीजे आपस में निपट लेते।" इतना कहने के साथ ही वह मर गया। उसका अन्तिम संस्कार करने के उपरान्त गांगा तथा जैतसी अपने अपने डेरों में गये। वहां से बिदा होकर जैतसी बीकानेर लौट गया[3]।

---

(१) ख्यातों आदि से पाया जाता है कि खान का हाथी भागकर मेड़ते पहुंचा, जहां वीरम दूदावत ने उसे पकड़ लिया। राव गांगा के पुत्र मालदेव ने वीरम से वह हाथी मांगा, परन्तु वीरम ने देने से इनकार कर दिया, यही मालदेव और वीरम के बीच के वैमनस्य का कारण हुआ, जिसका वृत्तांत आगे लिखा जायगा।

(२) एक अज्ञात नामा चारण के बनाये हुए प्राचीन छप्पय में वि० सं० १५८५ कार्तिक वदि १३ (ई० स० १५२८ ता० ११ अक्टोबर) को राव जैतसी और मुगल (मुसलमान) खान में जाखाणिया (बीकानेर और नागोर की सीमा पर नागोर से १८ मील पश्चिम) नामक स्थान में युद्ध होना तथा खान का हारकर भागना लिखा है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल, न्यू सीरीज़ संख्या १३, ई० स० १९१७, पृ० २४१)। सम्भवतः यह कथन सरखेलखां तथा उसके पुत्र दौलतखां से सम्बन्ध रखता हो। उनके साथ की लड़ाई का संवत् ख्यातों आदि में एक सा नहीं, किन्तु मूंदियाड़वालों की ख्यात में १५८५ तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में १५८६ मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १५२९ ता० २ नवम्बर) दिया (जि० १, पृ० ६४) है और यह लड़ाई सेवकी के तालाब पर होना लिखा है। सेवकी शायद जाखाणिया के पास ही कोई स्थान अथवा तालाब हो।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जिल्द २, पृ० १४४-१५२। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ११-१३। मुंशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र, पृ० ६५-७०। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १४-१५।

बीठू सूजा रचित 'राव जैतसी रो छन्द' मे लिखा है—'मुगलो ने प्रवेशकर केवल थोड़े से समय में ही उत्तरी भारत के बहुत से प्रदेशो पर अपना आधिपत्य कर लिया था। देवकरण पवार ने बाबर के उत्कर्ष को रोकने की चेष्टा की, परन्तु मुगलों के विशाल सैन्य के सामने उसे पराजित होना पडा। फिर भाखर, अरोड, मुलतान, खेड, सातलमेर, उच्च, मुम्मण वाहण, मारोठ, देरावर, भरेहा, बगा, भभेरी, मागलोर, जम्मू, सिरमौर, लाहौर, देपालपुर आदि स्थान एक एक करके उस(बाबर)के अधीन हो गये। जानू, खोखर, बरिहा, यादव, तवर एव चहुआण जातियों को परास्तकर बाबर ने उनके गढ़ों को नष्ट कर दिया। अनन्तर सुलतान इब्राहीम लोदी से दिल्ली, मीरों से आगरा तथा पठानों से बयाना भी उसने ले लिये और जौनपुर, अयोध्या एव बिहार (प्रान्त) भी उसके अधिकार मे आ गये। मेवाड़ का महाराणा सागा उसका अवरोध करने के लिए आगे गया, परन्तु वह पराजित हुआ। फिर बाबर ने अलवर और मेवात का विध्वस करने के उपरान्त आमेर, साभर तथा नागोर को विजय किया।

कामरा से युद्ध

'बाबर की मृत्यु होने पर, उसका राज्य उसके पुत्रों में विभाजित हो गया, जिनमें से कामरा ने लाहौर को अपने अधिकार में कर स्वतत्र राज्य की स्थापना की[1]। उस समय तक भारत (उत्तरी) के प्राय सभी छोटे बडे राज्य मुग़लों के अधीन हो गये थे (?), केवल राठोडों का राज्य ही ऐसा बच रहा था, जिसकी स्वतत्रता पर आच न आई थी। तब भारत के उत्तरी प्रदेश के स्वामी कामरा ने एक बड़ी फौज के साथ मारवाड़ की ओर मुख मोड़ा। सतलज को पारकर बठिंडा (भटिंडा) तथा अभोहर के बीच से अग्रसर हो, मुगल सेना ने भटनेर पर चढ़ाई कर उसे घेर लिया। भटनेर (हनुमानगढ) उन दिनों खेतसी (काधल के पौत्र) के

(१) हुमायू ने गद्दी पर बैठने के बाद कामरा को काबुल, कन्दहार, गज़नी और पजाब के इलाक़े सौंपे थे (बील, ओरिएन्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी, पृ० २०८)।

अधिकार में था[१]। मुग़लों ने उसके पास अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए दूत भेजे, परन्तु इसके उत्तर मे निर्भीक वीर खेतसी युद्ध करने को उद्यत हो गया। तीरो और तोपों की वर्षा करते हुए जब मुग़लों ने गढ़ की दीवार पर चढ़कर भीतर प्रवेश करना प्रारम्भ किया, तब खेतसी द्वार खोल जैसा, राणिगदेव आदि अपने वीरों के साथ उनपर टूट पड़ा और लड़ता हुआ मारा गया। फलस्वरूप भटनेर के गढ़ पर मुग़लों का अधिकार हो गया[२]।

---

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात में खेतसी के भटनेर लेने की बात इस प्रकार लिखी है—'भटनेर मे बादशाह हुमायूं का थाना रहता था। उस वक़्त खेतसी से एक कानूगो ने आकर कहा कि यदि तू मेरी सहायता करता रहे तो तुझे गढ़ दिलवाऊं। उस कानूगो को निकालकर दूसरा नियत कर दिया गया था, उसी जलन के मारे वह खेतसी के पास गया था। खेतसी ने कहा—"भली बात है, मै भी यही चाहता हूं।" अपने काका और बाबा पूरणमल कांधलोत और दूसरे कई राजपूतों को साथ ले कानूगो को आगे कर वह चढ़ धाया। कानूगो ने पहले स्वयं गढ़ में प्रवेशकर एक रस्से के सहारे खेतसी तथा उसके साथियों को ऊपर चढ़ा लिया। इस प्रकार गढ़ खेतसी के कब्जे में आ गया (जिल्द २, पृ० १९२)।'

इसके विपरीत दयालदास की ख्यात में लिखा है कि राव जैतसी की आज्ञा प्राप्तकर पूरणमल आदि की सहायता से साहबे के ठाकुर अरडकमल (कांधलोत) ने सहू चायल से भटनेर का गढ़ छीन लिया था (जि० २, पत्र १४)।

(२) मुहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है—'बड़गच्छ का एक यती बीकानेर में रहता था। उसके पास कोई अच्छी चीज़ थी। राव जैतसी ने वह चीज़ उससे मांगी, परंतु यती ने दी नहीं, तब राव ने उसे मारकर वह वस्तु ले ली। फिर कामरां (हुमायूं का भाई जो काबुल में राज करता था) हिन्दुस्तान पर चढ़ आया। उस यती का चेला उससे मिलकर उसे भटनेर पर चढ़ा लाया (जि० २, पृष्ठ १९२-९३)।'

दयालदास की ख्यात में लिखा है कि भावदेव सूरि नाम के एक जैन पंडित ने, जिससे राठोड़ों से कुछ कहा सुनी हो गई थी, दिल्ली जाकर कामरां से भटनेर के गढ़ की बहुत प्रशंसा की, जिसपर उस (कामरां) ने ससैन्य आकर भटनेर को घेर लिया। कुछ दिनों के युद्ध के बाद उस गढ़ का स्वामी खेतसी मारा गया और वहां कामरां का अधिकार हो गया (जि० २ पत्र १४), परन्तु एक जैन पंडित के दिल्ली जाकर

'वहां से कामरां की फ़ौज बीकानेर की ओर अग्रसर हुई, जिसकी सूचना दूतों ने जाकर राव जैतसी को दी। वहां पहुंचकर भी मुग़लों ने अधीनता स्वीकार करने का पैगाम जैतसी के पास भेजा, परन्तु उसने बीका के वंशज के अनुरूप ही उत्तर दिया—"जाओ, कामरां से कह देना कि जिस प्रकार मेरे वंश के मल्लीनाथ, सतसल्ल (सातल), रणमल, जोधा, बीका, दूदा, लूणकर्ण गांगा आदि ने मुसलमानों का गर्व भंजन किया था, उसी प्रकार मैं भी तेरा नाश करूंगा।" दूतों ने यह उत्तर जाकर अपने स्वामी से कहा, जिसपर उसने अपनी सेना सहित तलहटी में प्रवेश किया। जैतसी ने इस अवसर पर इतनी बड़ी सेना का सामना करना उचित न समझा और अपनी भयभीत प्रजा को आगे कर वह वहां से दूर हट गया। केवल भोजराज रूपावत कुछ भाटियों के साथ बीकानेर के गढ़ (पुराना) की रक्षा के लिए रह गया, जिसे मारकर मुग़लों ने वहां पर अधिकार कर लिया, परन्तु जैतसी भी चुप न बैठा रहा। इसी बीच में उसने एक बड़ी सेना मुग़लों का सामना करने के लिए एकत्र कर ली। अपने भाइयों में से सेंजसी, रतनसिंह, नेतसी और रामसिंह एवं अपने सरदारों में से हरराज, सांगला (सांगा), डूंगरसिंह, जयमल (जग्गा का वंशज), सकरसी, नारायण, जगा (कछवाहा), अमरसिंह, गांगा, पृथ्वीराज, रायमल, भीम, संग्रामसिंह (सोढ़ा), दुर्जनसाल (ऊदावत) आदि चुने हुए १०६ वीर राजपूत सरदारों तथा सारी सेना के साथ उसने वि० सं० १५६१ मार्गशीर्ष वदि ४ (ई० स० १५३४ ता० २६ अक्टोबर) को रात्रि के समय मुग़लों की सेना पर आक्रमण कर दिया[1]। राठोड़ों के इस प्रबल हमले का सामना मुग़ल सेना

कामरां को भटनेर पर चढ़ा लाने की बात निराधार है, क्योंकि यह घटना बाबर की मृत्यु (वि० सं० १५८७=ई० स० १५३०) के बाद की है, जब कामरां लाहौर में था और वह वहां से ही चढ़कर आया होगा।

(१) ख्यातों आदि में वि० सं० १५६५ आश्विन सुदि ६ (ई० स० १५३८ ता० २९ सितंबर) को रात्रि के समय राव जैतसी का कामरां की फ़ौज पर आक्रमण करना लिखा है (दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १४। मुंशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र, पृ० ७४ आदि), परन्तु इस सम्बन्ध में बीठू सूजा का

न कर सकी और मैदान छोड़कर लाहौर की ओर भाग खड़ी हुई। जैतसी की मुसलमानो पर यह विजय राठोड़ों के इतिहास में चिरकाल तक अमर रहेगी[1]।'

बीठू सूजा के कथन में अतिशयोक्ति अवश्य पाई जाती है, परन्तु मूल कथन विश्वसनीय है। डाक्टर टेसिटोरी के कथनानुसार यह ग्रंथ उक्त घटना से लगभग एक वर्ष पीछे लिखा गया था, इसलिए इसका अधिकाश ठीक होना चाहिये।

जोधपुर राज्य का अधिकाश भाग राव गागा के हाथ से निकल-कर, केवल दो परगने (जोधपुर और सोजत) ही उसके अधीन रह गये थे। यह बात उसके ज्येष्ठ पुत्र मालदेव को खटकती थी और वह उसे मारकर गद्दी हस्तगत करना चाहता था। पहले तो मालदेव ने विष देकर अपने पिता को मारने का प्रयत्न किया, परन्तु जब इसमें सफलता न मिली तो उसने अवसर पाकर एक दिन उस (गागा) को झरोखे पर से, जहा बैठ-कर वह दातुन कर रहा था, नीचे गिराकर मार डाला और वि० स० १५८८ श्रावण सुदि १५ (ई० स० १५३१ ता० २६ जुलाई) को स्वय जोधपुर की गद्दी पर बैठ गया[2]। नागोर, सिवाणा आदि स्थानों पर अधिकार

राव मालदेव का बीकानेर पर चढ़ाई और जैतसिंह का मारा जाना

कथन ही अधिक विश्वासयोग्य है, क्योंकि उसने उक्त घटना के कुछ समय बाद ही अपना ग्रन्थ रचा था।

(१) छन्द १०८-४०१। मुहणोत नैणसी की ख्यात (जिल्द २, पृ० १९३) में भी राव जैतसी का कामरा को परास्त कर भगाना लिखा है।

शिवा (सम्भवत चारण) के बनाये हुए एक गीत में भी जैतसी द्वारा कामरां की फौज के परास्त किये जाने का उल्लेख है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बगाल, न्यू सीरीज १३, ई० स० १९१७, पृ० २४२-४३)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात, जिल्द १, पृ० ६८।

दयालदास की ख्यात में वि० स० १५८८ ज्येष्ठ वदि ३ (ई० स० १५३१ ता० ४ मई) को मालदेव का जोधपुर की गद्दी पर बैठना लिखा है (जि० २, पत्र १९)।

करने के अनन्तर वि० सं० १५९८ (ई० स० १५४१) में उसने बीकानेर पर अधिकार करने के लिए कूपा महराजोत[1] एवं पचायण करमसियोत[2] की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना भेजी। इस सम्बन्ध में जयसोम अपने 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक काव्यम्' में लिखता है—

'किसी समय मालदेव सेना के साथ जांगलदेश (बीकानेर राज्य) पर अधिकार जमाने की इच्छा करने लगा। तब जैत्रसिंह (जैतसिंह) ने मन्त्री (नगराज[3]) से कहा कि मालदेव बलवान है, हम लोगों से जीता नहीं जा सकता। इसलिए उसके साथ लड़ाई की इच्छा करना फलदायक नहीं। सुना जाता है, वह यहां पर चढ़ाई करनेवाला है, इसलिए उसके चढ़ आने के पहले ही उपाय की मन्त्रणा करनी चाहिये। फिर आ जाने पर क्या हो सकता है? तब निपुण मन्त्री ने यह सलाह दी कि शेरशाह का आश्रय लेना चाहिये। इसके बिना हमारा काम न निकलेगा, क्योंकि समर्थ की चिन्ता समर्थ ही मिटा सकता है—हाथी के सर की खुजलाहट बड़े वृक्ष से ही मिट सकती है। यह सुनकर जैतसिंह ने कहा—"अपना काम सिद्ध करने के लिए तुमने ठीक कहा। अपने से बढ़कर गुणवान की सेवा निष्फल होने पर भी अच्छी है, सफल होने पर तो कहना ही क्या? इसलिए तुम्हीं सोत्साह मन से शाह के समीप जाओ, क्योंकि मानस सरोवर के बिना हंस प्रसन्न नहीं होते।" फिर नजराने के उपायों में चतुर मन्त्री नगराज "जो आज्ञा" कहकर क्षत्रियों की सेना लेकर (अच्छे) शकुनों से

---

(१) कूपा जोधपुर के राव रिड़मल (रणमल) का प्रपौत्र, अखैराज का पौत्र और महराज का पुत्र था। कूपा से राठोड़ों की कूपावत शाखा चली। कई कूपावत सरदार इस समय भी जोधपुर राज्य में विद्यमान हैं, जिनमें मुख्य आसोप का सरदार है।

(२) जोधपुर के राव जोधा के एक पुत्र का नाम कर्मसी था। कर्मसी का एक पुत्र पचायण था।

(३) जोधपुर के राव जोधा ने जब अपने पुत्र विक्रम (बीका) को जांगल-देश विजयकर नवीन राज्य स्थापित करने को भेजा, उस समय मन्त्री वत्सराज को भी उसके साथ कर दिया था। नगराज उक्त मन्त्री वत्सराज के दूसरे पुत्र वरसिंह का पुत्र था।

अपने अर्थ के सिद्ध होने का अनुभव कर, बादशाह के पास पहुचा। मत्रणा मे निपुण नगराज ने हाथी, घोडे, ऊट आदि भेट करके शूरवीरो की रक्षा करनेवाले सुलतान को प्रसन्न किया। (अपनी अनुपस्थिति में) शत्रु की चढ़ाई के डर से (राजकुमार) कल्याण सहित सब राजपरिवार को उस (नगराज) ने सारस्वत (सिरसा) नगर मे छोड़ा था। मालदेव के मरुस्थल लेने के लिए आने पर जैतसिंह क्रोध से विकराल मुख होकर युद्ध करने के लिए शत्रुओं के सम्मुख आया। युद्ध आरभ होने पर मत्री भीम[1] योद्धाओं के साथ लडता हुआ, शुद्ध ध्यानपूर्वक राजा के सामने स्वर्ग को प्राप्त हुआ। सग्राम मे जैतसिंह के मारे जाने पर मालदेव जागल-देश छीनकर जोधपुर लौट गया[2]।'

इसके विपरीत ख्यातो आदि मे लिखा है कि अपने सरदारों, कूपा महराजोत एव पचायण करमसियोत को साथ ले मालदेव के बीकानेर पर चढ आने पर, राव जैतसी ससैन्य उसके मुकाबिले को आया और गाव साहेबा (सोहबा) मे डेरे हुए। साखला महेशदास और रूपावत भोजराज (भेलू व चाखू का ठाकुर) को उसने गढ तथा नगर की रक्षा के लिए बीकानेर में छोड़ दिया। जैतसी ने किसी समय पठानों से कुछ घोड़े खरीदे थे, जिनका दाम कामदारों ने चुकाया नहीं था, जिससे वे सब सोहबे में अपने दाम मागने आये। जैतसी ने ऐसे समय किसी का भी ऋण रखना उचित न समझा, अतएव अपने सेवकों को यह आदेश देकर कि मैं लौटकर न आऊ तब तक मेरे जाने का समाचार किसी पर खोला न जाय उसने तत्काल पठानों के साथ बीकानेर की ओर प्रस्थान किया। वहा पहुचने पर उसने कार्यकर्त्ताओं को डाटा और रुपया चुका देने को कहा, परन्तु उस समय पठानो ने रुपया लेने से इनकार कर दिया। इन बातों के कारण जैतसी को सोहबे लौटने में प्राय एक प्रहर लग गया, परन्तु इसी बीच

(१) भीम (भीमराज) मन्त्री वत्सराज के तीसरे पुत्र नरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था।

(२) कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक काव्यम्, श्लोक २०५ से २१८।

उसके चले जाने का समाचार सारी सेना में फैल चुका था और अधिकाश सरदार आदि अपनी अपनी सेना के साथ वापस जा चुके थे। उधर जैसे ही मालदेव को अपने चरों द्वारा जैतसी के लौटने का समाचार मिला वैसे ही उसने उसपर आक्रमण कर दिया। जैतसी ने बचे हुए लगभग १५० राजपूतों के साथ उसका सामना किया, परन्तु मालदेव की सेना बहुत अधिक थी, जिससे १७ आदमियों को मारकर वह अपने सब साथियों सहित इसी युद्ध में काम आया। विजयी मालदेव ने नगर मे प्रवेश किया, परन्तु इसके पहले ही भोजराज ने जैतसी के परिवार को सिरसा भिजवा दिया था। तीन दिन तक गढ़ के भीतर रहकर चौथे दिन भोजराज अपने साथियों सहित मालदेव की फौज पर टूट पड़ा और वीरतापूर्वक लड़कर काम आया। मालदेव ने गढ़ तथा नगर पर अधिकार कर लिया और कूंपा तथा पचायण को वहा का इन्तजाम करने के लिए नियुक्त किया[1]।

ख्यातों आदि में जैतसिंह के मारे जाने का समय वि० स० १५६८ चैत्र वदि ११ (ई० स० १५४२ ता० १२ मार्च) दिया है[2], जो ठीक नहीं है, क्योंकि उसकी स्मारक छत्री के लेख मे वि० स० १५६८ फाल्गुन

(१) दयालदास की ख्यात, जिल्द २, पत्र १५ १६। वीरविनोद भाग २, पृ० ४८३। मुशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र, पृ० ७५ ८२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १६ ७। ख्यातों के अनुसार जैतसी की मृत्यु के उपरान्त कुवर कल्याणमल का भोजराज द्वारा सिरसा भिजवाया जाना कल्पना मात्र ही है। इस सम्बन्ध में जयसोम का कथन कि मन्त्री नगराज शेरशाह सूर के पास जाते समय ही कुवर और राजपरिवार को सिरसा छोड़ गया था, अधिक विश्वासयोग्य है, क्योंकि उस(जयसोम)का ग्रन्थ ख्यातों आदि से बहुत प्राचीन है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १६। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८३। मुशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र, पृ० ८०। पाउलेट, गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १६। जोधपुर राज्य की ख्यात में जैतसी के मारे जाने का समय वि० स० १५९८ चैत्र वदि ५ (ई० स० १५४२ ता० ६ मार्च) दिया है (जि० १, पृ० ६६), परन्तु अन्य ख्यातों आदि के समान ही यह भी गलत है।

सुदि ११ (ई० स० १५४२ ता० २६ फरवरी) को उसकी मृत्यु होना लिखा है[1]।

सन्तति

जैतसी के १३ पुत्र हुए[2]—

(१) सोढ़ी राणी कश्मीरदे से[3]—

१—कल्याणमल

२—भींवराज—इसके वंश के भीमराजोत बीका कहलाये।

३—ठाकुरसी—इसने जैतपुर बसाया।

४—मालदे।

५—कान्हा।

(२) सोनगरी राणी रामकुंवरी से—

१—शृंग—इसके वंश के शृंगराजोत बीका कहलाये।

---

(१) अथास्मिन् शुभसंवत्सरे १५६८ वर्षे शाके १४६३ प्रवर्त्तमाने मासोत्तममासे फाल्गुनमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ एकादश्यां रावजी लूणकरणजी तत्पुत्र रावजी श्रीजैतसिंहजी वर्मा तिसृभिः धर्मपत्नीभिः परमधाम मुक्तिपद प्राप्त।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १६। वीरविनोद भाग २, पृ० ४८३। मुंशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र, पृ० ८३४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १७।

टॉड ने जैतसी के केवल ३ पुत्र—कल्याणसिंह, सिया तथा यशपाल—होना लिखा है और यह भी लिखा है कि उसने अपने दूसरे पुत्र सिया को नारनोत (नारनोल) विजय कर दिया (राजस्थान, जि० २, पृ० ११३२), परन्तु सिया का अन्य किसी ख्यात में नाम नहीं मिलता।

(३) सोढ़ी कश्मीरदे तथा उससे उत्पन्न पांच पुत्रों के नाम जयसोम के 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक काव्यम्' में भी मिलते हैं—

तत्सुरतर (?) लोके प्रथमं कल्याणमल्लराजोऽभूत्।
श्रीमालदेवभीमौ ठाकुरसीकान्हनामानौ ॥ १८० ॥
कसमीरदेविजाता पंचामी पांडवा इवापूर्वा।
व्यसनविमुक्ता दुर्योधनप्रिया सत्यमी यस्मात् ॥ १८१ ॥

२—सुर्जन—इसने सुर्जनसर बसाया।

३—कर्मसेन।

४—पूरणमल।

५—अचलदास।

६—मान।

७—भोजराज।

८—तिलोकसी।

राव जैतसी ने जिस समय शासन की बाग डोर अपने हाथ में ली उस समय परिस्थिति बड़ी भीषण थी, क्योंकि विद्रोही सरदारों के किसी क्षण भी बीकानेर पर चढ़ आने की शंका विद्यमान थी, परन्तु सतर्क जैतसी इसके लिए पहिले से ही तैयार बैठा था और उसने थोड़े समय में ही गढ़ आदि का ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर लिया कि छापर द्रोणपुर के स्वामी उदयकरण के बीकानेर पर अधिकार करने की लालसा से आने पर उसे निराश होकर लौटना पड़ा।

राव जैतसी का व्यक्तित्व

जैतसी वीर और योग्य शासक होने के साथ ही युद्धनीति का भी अच्छा ज्ञाता था। सदैव युद्ध के हरएक पहलू पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेने के अनन्तर ही वह अपनी नीति निर्धारित करता था। प्रसिद्ध मुगल शासक बाबर की मृत्यु के बाद उसके पुत्र लाहौर के स्वामी कामरां की बीकानेर पर चढ़ाई होने पर जैतसी ने अद्भुत युद्ध-चातुर्य का परिचय दिया था। कामरां की विशाल वाहिनी को केवल वीरता से परास्त नहीं किया जा सकता था। जैतसी भी यह भलीभांति समझता था। इस अवसर पर उसने बड़े धैर्य और चातुर्य्य से काम लिया। गढ़ खाली छोड़कर उसने पहले यवन सेना को भीतर बढ़ आने का लालच दिया, जिसमें वह फंस गई। फिर तो उसने उसे बुरी तरह हराकर भगा दिया और इस प्रकार अपने पूर्वजों की उपार्जित कीर्ति को और भी उज्ज्वल बनाया।

उसके अन्य गुणों में उदारता, दूरदर्शिता और वचन पालन का उल्लेख करना आवश्यक है। जहा वह इतना कठोर था कि उसने सिंहासनारूढ़ होते ही अपने पिता के साथ धोका करनेवाले सरदारों को उपयुक्त दंड दिये बिना चैन न लिया, वहा उसकी उदारता भी बहुत बढ़ी चढ़ी थी। अपने भाइयों और अन्य सम्बन्धियों आदि को अवसर पड़ने पर उसने सहायता देने से कभी पैर पीछे न हटाया। जोधपुर के राव मालदेव की बीकानेर पर चढ़ाई करने का विचार सुनते ही जब उसने देखा कि अकेले उसका सामना करना आसान नहीं, तो उसने पहले से ही अपने चतुर मंत्री नगराज को शेरशाह के पास से सहायता लाने के लिए भेज दिया और अपने परिवार को भी सुरक्षित स्थान सिरसा में पहुंचवा दिया। यदि ख्यातों के कथन पर विश्वास किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि वचन पालन के कारण ही उसकी जान गई। जहा इसे हम दुर्लभ गुण कहेंगे, वहा राजनीति की दृष्टि से इसे अदूरदर्शिता ही कहा जायगा।

राव जैतसी ने अपने पिता के समान ही अपने राज्य के वैभव में अभिवृद्धि की। उसके समय मे प्रजा हर प्रकार से सुखी और सम्पन्न थी[१]। दुर्भिक्ष आदि संकट के समयों पर उसके समय में भी राज्य की तरफ से अन्नक्षेत्र आदि खोलकर पीडित प्रजाजनों को हर प्रकार की सुविधायें पहुंचाई जाती थी[२]।

---

(१) बीठू सूजा, जैतसी रो छन्द, संख्या ६६ १०३।

(२) दीनानाथजनानामुपकारपरायणौकधिषणाभृत्।
तेने च सत्रशाला दुःकाले कालभावज्ञ ॥ १८८ ॥
(जयसोम, कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक काव्यम्)।

पांचवां अध्याय

राव कल्याणमल से महाराजा सूरसिंह तक

राव कल्याणमल (कल्याणसिंह)

जन्म

राव जैतसी के ज्येष्ठ पुत्र राव[1] कल्याणमल का जन्म सोढ़ी राणी कश्मीरदे के उदर से वि० सं० १५७५ माघ सुदि ६ (ई० स० १५१९ ता० ६ जनवरी) को हुआ था[2]।

कल्याणमल का सिरसा में रहना

राव जैतसी को मारकर जोधपुर के राव मालदेव ने बीकानेर पर अधिकार कर लिया और कूंपा महराजोत एवं पचायण करमसियोत को वहां के प्रबन्ध के लिए छोड़कर वह जोधपुर लौट गया। ख्यातों आदि में लिखा है कि बीकानेर के आधे राज्य पर मालदेव का अधिकार हो गया था[3]। मंत्री नगराज ने दिल्ली के सुलतान शेरशाह[4] के पास जाते समय ही कुंवर

---

(१) कल्याणमल की छत्री के लेख में उसे 'महाराजाधिराज' और 'राई' (राव) लिखा है—

महाराजाधिराज राइ श्रीकल्याणमल . . .

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १६ । वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८५ । मुंशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० ८५ ।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १६ । मुंशी देवीप्रसाद, राव जैतसीजी का जीवनचरित्र, पृ० ८२ ।

(४) शेरशाह, जिसका असली नाम फ़रीद था, हिसार का रहनेवाला था। उसका पिता हसन, सूर ख़ानदान का अफ़ग़ान था, जिसको जौनपुर के हाकिम जमालखां ने ससराम और टांडे के ज़िले ५०० सवारों से नौकरी करने के एवज़ में दिये थे। फ़रीद कुछ समय तक बिहार के स्वामी मुहम्मद लोहानी की सेवा में रहा और एक शेर को मारने पर उसका नाम शेरख़ां रक्खा गया। वीर प्रकृति का पुरुष होने के

कल्याणमल एवं अन्य राजपरिवार को सिरसा (सारस्वत) में पहुंचा दिया था, जैसा कि जयसोम के 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' से पाया जाता है[1]। कल्याणमल सिरसे में रहकर ही गई हुई भूमि को पुनः हस्तगत करने का उद्योग करने लगा। इस कार्य में शेखसर का गोदारा स्वामी उसका सहायक रहा[2], परन्तु कल्याणमल को, क्षीण शक्ति होने के कारण, इन प्रयत्नों में सफलता न मिली।

राव मालदेव वीर योद्धा होने के साथ ही एक महत्त्वाकांक्षी पुरुष था। शेरशाह द्वारा हुमायूं के परास्त किये जाने का समाचार जब मालदेव को ज्ञात हुआ तो उसने भक्कर में हुमायूं के पास इस आशय के पत्र भेजे कि मैं तुम्हारी सहायता को तैयार हूं[3]। हुमायूं भक्कर की सीमा पर ता० २८ रमज़ान (वि० सं० १५९७ फाल्गुन वदि द्वितीय १४=ई० स० १५४१ ता० २६ जनवरी) के आसपास पहुंचा था[4]।

शेरशाह का राव मालदेव पर चढ़ाई

कारण उसकी शक्ति दिन दिन बढ़ती गई। उसने ता० ९ सफ़र सन् ९४६ (वि० सं० १५९६ आषाढ़ सुदि द्वितीय १०=ई० स० १५३९ ता० २६ जून) को बादशाह हुमायूं को चौसा नामक स्थान (बिहार) में परास्त किया और दूसरी बार हि० स० ९४७ ता० १० मुहर्रम (वि० सं० १५९७ ज्येष्ठ सुदि १२=ई० स० १५४० ता० १७ मई) को कन्नौज में हराकर आगरा, लाहौर आदि की तरफ़ उसका पीछा किया, जिससे वह सिंध की तरफ़ भाग गया। इस प्रकार हुमायूं पर विजय प्राप्तकर शेरख़ां उसके राज्य का स्वामी बना और शेरशाह नाम धारणकर हि० स० ९४८ ता० ७ शव्वाल (वि० सं० १५९८ माघ सुदि ९=ई० स० १५४२ ता० २५ जनवरी) को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा (बील, ओरिएन्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी, पृ० ३८०)।

(१) शात्रवागममाशक्य सकल्याणस्ततोऽखिलः।
राजलोकोऽमुना मुक्तः श्रीसारस्वतपत्तने ॥ २१५ ॥

(२) दयालदास की ख्यात, जिल्द २, पत्र १६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १७।

(३) तबक़ात इ अकबरी (फ़ारसी), पृ० २०५। इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इण्डिया, जि० ५, पृ० २११।

(४) बेवरिज, अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद), जि० १, पृ० ३६२।

इन्हीं दिनों शेरशाह को भी एक बडी सेना के साथ बगाल के सूबेदार के ख़िलाफ़ जाना पड़ा था। सभवत इसी अवसर पर मालदेव ने उक्त मुगल बादशाह से लिखा पढी की होगी, परन्तु हुमायू ने उस समय इस विषय पर कोई ध्यान न दिया, क्योंकि उसे ठट्टा के शासक शाहहुसेन अर्घून से सहायता मिलने की आशा थी। जब शाहहुसेन की ओर से उसे निराशा हो गई, तो उसने उस(शाहहुसेन)पर आक्रमण किया, परन्तु इसमे भी उसे सफलता न मिली। तब उसने मालदेव की सहायता से लाभ उठाने का निश्चय किया[1] और उच्च व पोकरन होता हुआ वह फलौधी पहुंचा। वहा से उसने अत्काखा को मालदेव के पास भेजा[2]। निजामुद्दीन लिखता है—'जब हुमायू भागकर मालदेव के राज्य मे आया तब उसने शम्सुद्दीन अत्काखा को जोधपुर भेजा और स्वय उसके आने की राह देखता हुआ वह मालदेव के राज्य की सीमा पर ठहर गया। जब मालदेव को हुमायू की कमजोरी और शेरशाह से मुक़ाबला करने योग्य सेना का उसके पास न होना ज्ञात हुआ तब उसे भय हुआ, क्योंकि शेरशाह ने अपना एक दूत मालदेव के पास भेजकर बडी बडी आशाये दिलाई थीं और उसने भी शेरशाह से प्रतिज्ञा कर ली थी कि यथा सम्भव मैं हुमायू को पकड़कर आपके पास भेज दूगा। इधर नागोर पर शेरशाह ने अधिकार कर लिया था अत उसे भय था कि हुमायू के विरुद्ध होने से वह मारवाड़ पर भी बडी फौज न भेज दे। हुमायू को इस बात की सूचना न मिल जाय इसलिए उसके दूत अत्काखा को उसने वहीं रोक लिया, परन्तु वह मौका पाकर हुमायू के पास भाग गया और उसने उसे यह सब खबर दे दी[3]।'

---

(१) तबकात इ अकबरी (फ़ारसी), पृ० २०३ २११। इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इण्डिया, जि० ५, पृ० २०७ २११।

(२) जौहर, तज़किरतुल वाक़यात (फारसी), पृ० ७६ ७८। स्टेवर्ट कृत अग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ३६-३८।

(३) तबकात इ अकबरी—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इण्डिया, जि० ५, पृ० २११ १२।

आगरा लौटने पर जैसे ही शेरशाह को हुमायू के मालदेव के पास मारवाड में जाने का समाचार मिला, उसने ससैन्य उस(मालदेव)के राज्य में प्रवेश किया और दूत भेजकर कहलाया कि या तो हुमायू को अपने राज्य से निकाल दो या लड़ने के लिए तैयार हो जाओ। इस अवसर पर मालदेव ने शेरशाह का सामना करना बुद्धिमत्ता का कार्य न समझा, अतएव उसे लाचार होकर हुमायू के विरुद्ध सेना भेजनी पड़ी। हुमायू को इसकी सूचना अत्काखा आदि से मिल गई और वह वहा से भागकर अमरकोट चला गया। इस प्रकार मालदेव के साथ शेरशाह की लड़ाई कुछ समय के लिए रुक गई[1]।

पर शेरशाह के दिल मे मालदेव की तरफ से खटका बना ही रहा। उधर मालदेव की महत्वाकाक्षा में भी कमी न आई थी। शेरशाह को यह भी भय था कि कहीं सब राजपूत एकत्र होकर कोई बखेडा न करें। अतएव इन दोनों प्रबल शक्तियों में कभी न कभी युद्ध अवश्यभावी था। ऐसे में राव जैतसी का मत्री नगराज उसकी सेवा मे उपस्थित हुआ और उसने उससे अपने स्वामी की सहायता के लिए चलने की प्रार्थना की[2]। फलत

---

(१) के आर कानूनगो, शेरशाह, पृ० २७५ ७६।

(२) जयसोम के 'कमचन्दवशोत्कीर्तनक काव्यम्' से ऐसा ही पाया जाता है—

राजन्यसैन्यमादाय दायोपायविशारद ।
शकुनानुमितस्वार्थसिद्धि साहिमुपेयिवान् ॥ २१३ ॥
गजाश्वकरभव्रातमुपदीकृत्य सेवया ।
शूरत्राण सुरत्राण प्रीणयामास मत्रवित् ॥ २१४ ॥
साग्रह साहिमभ्यर्थ्य सममेवास्य सेनया ।
वैरिमडलमुद्वास्य रणे हत्वा च तद्भटान् ॥ २१६ ॥

दयालदास की ख्यात में लिखा है—'राव जैतसी के मारे जाने पर आधे बीकानेर पर मालदेव का अधिकार हो गया और कल्याणमल सिरसा में रहने लगा, जिससे आज्ञा ले भीमराज (कल्याणमल का छोटा भाई) दिल्ली मे बादशाह हुमायू की सेवा में आ रहा। मालदेव ने वीरमदेव को मेड़ते से निकालकर वहा अपना

एक विशाल सैन्य के साथ हि० सन् ६५० के शव्वाल के मध्य (वि० सं० १६०० माघ=ई० स० १५४४ जनवरी) में उसने मालदेव के विरुद्ध प्रस्थान किया[1]। दिल्ली से चलकर शेरशाह नारनोल और फतहपुर होता हुआ मेडते पहुंचा[2]। सिरसा से कल्याणमल ने भी प्रस्थान किया और वह मार्ग में शेरशाह की सेना के साथ मिल गया[3]।

अधिकार कर लिया था जिससे वह (वीरम) भी कल्याणमल के पास सिरसा होता हुआ भीमराज के पास दिल्ली चला गया। उन दिनों शेर शाह अपने पिता के साथ बादशाह हुमायूं की सेवा में रहता था। शेरशाह की तनख़्वाह के १५ लाख रुपये बादशाह के पास बाक़ी थे, जो भीमराज ने बादशाह से कह सुनकर दिलवा दिये। इन्हीं रुपयों के बल से शेरशाह ने लाहौर जाकर फ़ौज एकत्र की और हुमायूं को भगाकर वह स्वयं दिल्ली के तख़्त पर बैठ गया। भीमराज और वीरमदेव तब शेरशाह की सेवा में रहने लगे। कुछ दिनों बाद बादशाह उनकी सेवा से प्रसन्न हुआ और भीमराज तथा वीरमदेव के साथ एक विशाल सैन्य लेकर उसने मालदेव पर चढ़ाई कर दी। मार्ग में कल्याणमल भी मिल गया। मालदेव को परास्त कर शेरशाह ने बीकानेर कल्याणमल को और मेड़ता वीरमदेव को दे दिया। गया हुआ राज्य वापस दिलाने के बदले में कल्याणमल ने अपने भाई भीमराज को 'गड़ भूम का बाहड़ू' का विरुद दिया और भीमसर में उसका ठिकाना बांध दिया (जिल्द २, पत्र १७-२०), परन्तु उपर्युक्त कथन का अधिकांश निराधार ही प्रतीत होता है क्योंकि जैतसी के मारे जाने से पूर्व ही शेरशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया था। ऐसी दशा में शेरशाह का हुमायूं की सेवा में रहना और उसकी तनख़्वाह के १५ लाख रुपये बाकी रह जाना कैसे संभव हो सकता है? यह माना जा सकता है कि भीमसिंह तथा वीरमदेव भी शेरशाह की सेवा में रहे हों। जोधपुर राज्य की ख्यात में स्वयं कल्याणमल का दिल्ली जाना लिखा है (जि० १, पृ० ६१), पर यह कथन भी निराधार है, क्योंकि इसकी अन्य किसी ख्यात से पुष्टि नहीं होती। इस सम्बन्ध में जयसोम का कथन ही विश्वासयोग्य है, क्योंकि यह संभवतः उसके जीवनकाल की ही घटना हो। बाकी की ख्यातें कई सौ वर्ष पीछे की लिखी हुई हैं।

(१) कानूनगो, शेरशाह, पृ० ३२१। अब्बासख़ां शेरवानी कृत तारीख़ इ शेरशाही (इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, जि० ४, पृ० ४०४) से पाया जाता है कि शेरशाह के पास इस अवसर पर बहुत बड़ी सेना थी।

(२) कानूनगो, शेरशाह, पृ० ३२१ ४।

(३) दयालदास की ख्यात, जिल्द २, पत्र ११। मुंशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० ६२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १६

उधर बीकानेर में राव मालदेव द्वारा स्थापित किये हुए जोधपुर के थानों पर रावत किशनसिंह चढ़कर उत्पात करने लगा। लूणकरणसर, गारबदेसर आदि कुछ थानों को उजाड़कर वह राव बीनाम्सर तक जा पहुंचा। उस समय गढ़ में कूपा महराजोत का अधिकार था। रावत ने उससे गढ़ खाली कर देने को कहलाया, पर वह गढ़ के बाहर न निकला और उसने मालदेव के पास से सहायता मंगवाने के लिए आदमी भेजा। शेरशाह का आगमन सुनते ही मालदेव ने कूपा से कहलाया कि गढ़ छोड़कर तुरन्त चले आओ जिसपर कूपा अपने साथियों सहित गढ़ खालीकर जोधपुर चला गया। तब रावत ने बीकानेर के गढ़ पर अधिकार करके वहां कल्याणमल की दुहाई फेर दी[1]।

रावत किशनसिंह का बीकानेर पर अधिकार करना

जोधपुर से एक बड़ी सेना के साथ कूचकर मालदेव शेरशाह का सामना करने के लिए अजमेर के निकट पहुंचा, शेरशाह भी अपनी फौज के साथ अजमेर के निकट पड़ा हुआ था। प्राय एक मास तक दोनों फौजें एक दूसरे के सामने पड़ी रहीं, पर लड़ाई न हुई। शेरशाह चाहता था कि शत्रु उसपर हमला करे परन्तु जब मालदेव ने उसपर आक्रमण न किया तब बादशाह ने यह चाल चली कि मालदेव के सरदारों के नाम से झूठे खत लिखवाकर अपने एक दूत के द्वारा गुप्त रूप से मालदेव के

राव मालदेव का भागना और शेरशाह का जोधपुर पर अधिकार

(१) दयालदास की ख्यात, जिल्द २, पत्र १८-१९। मुंशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० ६०-६२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १९।

वीरविनोद में कृष्णसिंह (किशनसिंह) को राव लूणकर्ण का बेटा लिखा है (भाग २, पृ० ४८४)।

उपर्युक्त ख्यातों में रावत किशनदास द्वारा बीकानेर के गढ़ पर अधिकार होने का समय वि० सं० १६०१ पौष सुदि १५ (ई० स० १५४४ ता० २९ दिसम्बर) दिया है। यह नगर के भीतर का प्राचीन गढ़ (क़िला) था।

डेरों मे डलवाये। उनमे यह लिखा था कि यदि हमे अमुक अमुक जागीरें दी जावें तो हम मालदेव को पकडकर आपके सुपुर्द कर देंगे और आपको लड़ने की कोई आवश्यकता न रहेगी[1]। ऐसे पत्र पाकर मालदेव घबराया और अपने सरदारो पर से उसका विश्वास उठ गया, इसलिए उसने अपने सरदारो को पीछे हटने की आज्ञा दी। सरदारो ने शपथ लेकर विश्वास दिलाया कि ये कृत्रिम पत्र शेरशाह ने लिखवाये हैं, परन्तु मालदेव को उनके कथन पर विश्वास न हुआ और उसने वहा से लौटना ही उचित समझा[2]। ज्यों ज्यों मालदेव पीछा हटता गया त्यों त्यो बादशाह आगे बढ़ता गया।

---

(१) ठीक ऐसी ही चाल शाहजादे अकबर के बागी होकर चढ़ आने पर औरंगज़ेब ने भी उसके साथ चली थी।

(२) अल्बदायूनी की 'मुतख़बुत्तवारीख़' का रैकिंग कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, जि॰ १, पृ॰ ४७८।

भिन्न भिन्न ख्यातो में भिन्न भिन्न प्रकार से इस घटना का उल्लेख किया गया है। मुहणोत नैणसी लिखता है—'वीरम जाकर सूर बादशाह को मालदेव पर चढा लाया। राव भी अस्सी हज़ार सवार लेकर मुक़ाबिले को गया। वहा वीरम ने एक तरकीब की—कूपा के डेरे पर बीस हज़ार रुपये भिजवाये और कहलाया कि हमे कम्बल मगवा देना और बीस ही हज़ार जेता के पास भेजकर कहा, सिरोही की तलवारें भेज देना, फिर राव मालदेव को सूचना दी कि जेता और कूपा बादशाह से मिल गये है, वे तुमको पकड़कर हज़ूर मे भेज देंगे। इसका प्रमाण यह है कि उनके डेरे पर रुपयों की थैली भरी देखना तो जान लेना कि उन्होने मतलब बनाया है। राव मालदेव के मन मे वीरम के वाक्यो से शका उत्पन्न हो गई। उसने खबर कराई कि बात सच है या नहीं। जब अपने उमरावो के डेरो पर थैलिया पाईं तो मन मे भय उत्पन्न हो गया (जि॰ २, पृ॰ १९७ ९८)।'

दयालदास का वर्णन भी मुहणोत नैणसी जैसा ही है। उसमें अन्तर केवल इतना हीं है कि वीरम ने रुपये भिजवाकर कूपा से सिरोही की तलवारे और जेता से कम्बल मगवाये थे (जि॰ २, पत्र १९)।

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन है—'बादशाह ने मालदेव से कहलाया कि एक आदमी आप भेजे, एक मै, इस प्रकार द्वन्द्व युद्ध करें। मालदेव ने बीदा भारमलोत का नाम लिखवाकर भेज दिया। वीरमदेव ने बादशाह से कहा कि उससे

जब बादशाह समेल में पहुंचा, उस समय मालदेव गिरीं में ठहरा हुआ था। राव ने वहां से भी पीछा हटना चाहा, परन्तु कूपा, जैता आदि राठोड़ सरदारों ने कहा कि हम तो यहां से पीछे न हटेंगे और यहीं मर मिटेंगे। तब मालदेव अपने कितने एक सरदारों के साथ रात के समय उनको छोड़कर बिना लड़े जोधपुर की तरफ लौट गया। जैता, कूपा आदि ने रात्रि के समय शत्रु पर आक्रमण करने का विचार किया, परन्तु मार्ग भूल जाने के कारण उनका प्रातःकाल समेल नदी के पास मुसलमानों से युद्ध हुआ, जिसमें सबके सब काम आये और विजय शेरशाह की हुई[1]। यह घटना वि० सं० १६०० के चैत्र मास (ई० स० १५४४ मार्च) के आरम्भ में हुई[2]। फिर शेरशाह ने जोधपुर की ओर प्रस्थान किया। उसका आना सुनते ही मालदेव घूघरोट के पहाड़ों में भाग गया और जोधपुर पर शेरशाह का अधिकार हो गया[3], जहां वह कई मास तक रहा।

बीकानेर राज्य के विषय में प्रमोद माणिक्य गणि के शिष्य जयसोम-रचित 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में लिखा है कि मंत्री नगराज ने शेरशाह

युद्ध करने योग्य आपके पास कोई योद्धा नहीं है, मैं ही जाऊं, पर वीरमदेव को उसने जाने न दिया। तब उस (वीरमदेव) ने फरब कर ढालों के भीतर रुक्के रखकर राठोड़ों में भिजवाये और इस प्रकार जेता, कूपा आदि राजपूतों की तरफ़ से राव के मन में अविश्वास उत्पन्न कराया (जि० १, पृ० ७० ७१)।'

ख्यातों में दिये हुए उपर्युक्त सभी वर्णन कल्पित हैं। इस सम्बन्ध में बदायूनी का कथन ही विश्वासयोग्य कहा जा सकता है, क्योंकि वह अकबर के समय में विद्यमान था। अपने बाहुबल एवं चातुरी से भारत के सिंहासन पर अधिकार करनेवाला शेरशाह अपने आश्रित की राय पर चले, यह कल्पना से दूर की बात प्रतीत होती है।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० ७० ७१।

(२) क़ानूनगो, शेरशाह, पृ० ३२६।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० १५८ ९। दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १६। जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० ७२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दी बीकानेर स्टेट, पृ० २१।

शेरशाह का कल्याणमल को बीकानेर का राज्य देना

के हाथ से ही कल्याणमल को टीका दिलवाकर विक्रमपुर (बीकानेर) भेजा और आप बादशाह के साथ गया। फिर किसी समय बादशाह की आज्ञा पाकर नगराज अपने देश की ओर चला, परन्तु मार्ग में, अजमेर में उसका देहात हो गया[1]।

भटनेर के चायल स्वामी अहमद और राव कल्याणमल के भाई ठाकुरसी में अनबन रहा करती थी जिससे वह (ठाकुरसी) भटनेर लेने

कल्याणमल के भाई ठाकुरसी का भटनेर लेना

के उपाय मे था। ठाकुरसी का विवाह जैसलमेर में हुआ था। पीछे से उसने अपने लिए राव की आज्ञा से जैतपुर का इलाका कायम किया। भटनेर का एक तेली जतपुर में ब्याहा था, वह जब अपनी ससुराल आया तो ठाकुरसी ने उसे अपने पास बुलवाकर भटनेर का हाल पूछा और उसकी खूब खातिरदारी की इस प्रकार उस तेली को प्रसन्नकर ठाकुरसी ने उसे अपना सहायक बना लिया। तेली ने भी वचन दिया कि जब कभी आप भटनेर पधारेंगे तब मैं आपको ऐसी रीति से भीतर बुला लूगा कि किसी को पता न चलेगा। जब तेली वहा से जाने लगा तो ठाकुरसी ने उसे वस्त्र, आभूषण, धन आदि बहुतसा सामान विदायगी म दिया और अपना एक मनुष्य उसके साथ कर दिया, जो जाकर भटनेर का एक एक मार्ग देख

---

(१) साम्राज्यतिलक साहिकरेणाकारयत्तरा ।
कल्याणमल्लराजस्य स्वामिधर्मधुरधर ॥ २२१ ॥
राजान प्रेषयामास विक्रमाख्यपुर प्रति ।
स्वय त्वनुययौ साहेर्न संत' स्वार्थलपटा' ॥ २२२ ॥
आज्ञामासाद्य साहेयीमन्यदा मत्रिनायक ।
सतोषपोषभृज्जात स्वदेशमभिगामुकः ॥ २२४ ॥
तूर्णं पथि समागच्छन्मत्री पूर्णमनोरथ ॥
अजमेरपुरे स्वर्गमगात्पण्डितमृत्युना ॥ २२५ ॥

आया। फिर धीरे-धीरे ठाकुरसी ने भटनेर पर आक्रमण करने की तयारी आरंभ की और मूज के मजबूत रस्सों की एक सीढ़ी बनवाई।

जब कुछ दिनों बाद भटनेर का चायल स्वामी (अहमद) अपने पुत्र का विवाह करने के लिए गया तो तेली ने ठाकुरसी के पास इसकी सूचना भेजी और कहलाया कि गढ़ लेने का यही उपयुक्त अवसर है। यहां सिर्फ फीरोज है। यह समाचार सुनकर ठाकुरसी ने अपने सारे साथियों सहित भटनेर की ओर प्रस्थान किया और उसी तेली के घर की तरफ जाकर इशारा किया, जिसपर उस (तेली) ने रस्सा ऊपर खींच लिया और तीरकस (तीर मारने के छिद्र) में कसकर बांध दिया। इस रस्से के सहारे ठाकुरसी अपने एक हजार राजपूतों के साथ गढ़ के भीतर घुस गया। फीरोज ने खबर पाते ही अपने ५०० आदमियों के साथ उसका सामना किया, पर वह मारा गया। इस प्रकार वि० सं० १६०६ (ई० स० १५४९) में भटनेर का किला जीतकर ठाकुरसी ने वहां अपने बड़े भाई कल्याणमल की दुहाई फेर दी और उसकी तरफ से २० वर्ष तक वह वहां का हाकिम रहा[1]।

अनन्तर ठाकुरसी ने सिरसा, फतिहाबाद सिवाणी, अहरवा, रतिया, विठंडा (भटिंडा), लखी जंगल आदि को भी अपने इलाके में शामिल किया और फौज भेज भेजकर बठुआ (भट्टू) के आसपास झगड़ा करता रहा, जिससे उसे नजराने में काफी सामान मिला[2]।

ठाकुरसी की अन्य विजय

हि० स० ६५२ ता० १२ रबीउल्अव्वल (वि० सं० १६०२ ज्येष्ठ

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पत्र १९३-९४। दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २१-२२। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० ९९-१०४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २२-२३।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २२। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २३।

सुदि १३=ई० स० १५४५ ता० २८ मई) को शेरशाह का कालिंजर की चढ़ाई में देहात हो गया[1]। इसकी खबर मिलते ही मालदेव ने जोधपुर पर पुन अधिकार कर लिया[2]।

कल्याणमल का जयमल का सहायतार्थ सेना भेजना

वीरमदेव[3] के पीछे जब जयमल मेड़ते का स्वामी हुआ, तब मालदेव ने उससे छेड़ छाड़ करना आरम्भ किया और कहलाया कि मेरे रहते हुए तू सब भूमि दूसरों को न दे, कुछ खालसे के लिए भी रख। जयमल ने अर्जुन रायमलोत को ईडवे की जागीर दी थी अतएव उस(जयमल)ने यह सब हाल उससे भी कहला दिया। राव मालदेव के तो दिल से लगी थी अतएव दशहरे के बाद ही उसने ससैन्य मेड़ते पर चढ़ाई कर दी और गांव गागरडे में डेरे हुए। उसकी सेना चारों ओर घूम घूम कर निरीह प्रजा को लूटने और मारने लगी[4]। तब जयमल ने बीकानेर आदमी भेजकर राव कल्याणमल से मदद करने के लिए कहलाया, जिस-पर उसने निम्नलिखित सरदारों को उस(जयमल)की सहायता के लिए मेड़ते भेजा[5]—

(१) बील, ओरिएन्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी, पृ० ३८०-८१।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० ७४। दयालदास की ख्यात में मालदेव का १५ वर्ष कष्ट में रहना तथा जब शेरशाह से अकबर ने दिल्ली छुड़ाई तब उस(मालदेव)का जोधपुर पर अधिकार करना लिखा है (जि० २, पत्र २०), परन्तु यह कथन निराधार है, क्योंकि अकबर ने गया हुआ राज्य शेरशाह से नहीं, किन्तु सिकन्दरशाह सूर से पीछा लिया था।

(३) मालदेव को परास्तकर जब शेरशाह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया तो मेड़ते का अधिकार उसने पुन वीरम को सौंप दिया था।

(४) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० १६१-२।

(५) मुहणोत नैणसी तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में बीकानेर से मेड़ते-वालों की सहायता के लिए सरदारों का जाना नहीं लिखा है। अधिक संभव तो यही है कि बीकानेर से जयमल को सहायता प्राप्त हुई हो, क्योंकि बिना किसी प्रकार की सहायता के मालदेव की शक्ति का अकेले सामना करना जयमल के लिए संभव नहीं था।

१—महाजन का स्वामी ठाकुर अर्जुनसिंह।

२—शृंगसर का स्वामी शृंग (श्रीरंग)।

३—चाचाबाद का स्वामी वणीर।

४—जैतपुर का स्वामी किशनसिंह।

५—पूगल के भाटी हरा का पुत्र वैरसी।

६—बछावत महता सागा।

बीकानेर से इन सरदारों के आ जाने से जयमल की शक्ति बहुत बढ़ गई और उसने इस सम्मिलित सेना के साथ मालदेव का सामना करने के लिए प्रस्थान किया[1]। जैतमाल, जयमल का प्रधान था। अखैराज भादावत और चादराव जोधावत जयमल के प्रतिष्ठित सरदार थे। जयमल के कहने से वे राव मालदेव के प्रधान पृथ्वीराज से मिले और उसके साथ मालदेव के पास जाकर उन्होंने कहा कि मेडता आप जयमल के पास रहने दें तो हम आपकी चाकरी करें। पर मालदेव ने इसे स्वीकार न किया, तब वे वापस लौट गये और उन्होंने जयमल से सारी बात कही[2]। अनन्तर दोनों दलों में युद्ध हुआ[3]। मेडते की सम्मिलित सेना के प्रबल आक्रमण को मालदेव की सेना सह न सकी और पीछे हटने लगी। अखैराज और सुरताण पृथ्वीराज तक पहुच गये और कुछ ही देर में वह (पृथ्वीराज) अखैराज के हाथ से मारा गया। फिर तो मालदेव की सेना के पैर उखड गये। जयमल के सरदारों ने कहा कि मालदेव को दबाने का यह उपयुक्त अवसर है, पर जयमल ने ऐसा करना उचित न समझा। फिर भी बीकानेर के सरदारों ने मालदेव का पीछा किया। इस अवसर पर नगा भारमलोत शृंग के हाथ से मारा

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २०।

(२) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० १६२-६३। दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २०-२१।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १६१० (चैत्रादि १६११) वैशाख सुदि २ (ई० स० १५५४ ता० ४ अप्रेल) दिया है (जि० १, पृ० ७४)।

गया और मालदेव अपनी सेना के साथ भाग गया। लगभग एक कोस पर बीकानेर के सरदारों ने उसको पुन जा घेरा। मालदेव के सरदार चादा ने रुककर कुछ साथियों सहित उनका सामना किया, परन्तु वह वणीर के हाथ से मारा गया[1]। इतनी देर में मालदेव अन्य साथियों सहित बहुत दूर निकल गया था, अत बीकानेर के सरदार लौट आये और मालदेव के भाग जाने पर उन्होंने जयमल को बधाई दी। जयमल ने कहा—"मालदेव के भागने की क्या बधाई देते हो ? मेड़ता रहने की बधाई दो। पहले भी मेडता आपकी मदद से रहा था और इस बार भी आपकी सहायता से बचा।" इस लडाई में मालदेव का नगारा बीकानेरवालों के हाथ लग गया था, जिसको जयमल ने एक भाभी (ढोली) के हाथ वापस भिजवाया। गाव लांबिया में पहुचते पहुचते उस (भाभी) के मन में नगारे को बजाने की उत्कट इच्छा हुई, जिससे उसने उसे बजा ही दिया। मालदेव ने जब नगारे की आवाज सुनी तो समझा कि मेडते की फौज आ रही है और उसने शीघ्रता से जोधपुर का रास्ता लिया। भाभी ने वहा जाकर जब नगारा लौटाया तब उसपर सारा भेद खुला[2]। कुछ दिनों बाद जब बीकानेर के सरदार मेडते से लौटने लगे तो जयमल ने उनसे कहा—"राव से मेरा मुजरा कहना। मैं उन्हीं की रक्षा के भरोसे मेडते में बैठा हू[3]।"

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार चादा मारा नहीं गया, वरन् उसने ही मालदेव तथा अन्य घायल सरदारों को सुरक्षित रूप से जोधपुर पहुचाया था (जि० २, पृ० १६५-६६)।

(२) मुहणोत नैणसी की ख्यात में भी मेड़तेवालों के हाथ मालदेव का नगारा लगने और उसके भाभी (बलाई) द्वारा लौटाय जाने का उल्लेख है। बलाई जब गाव लांबिया के पास पहुचा तो उसने सोचा कि नगारा तो बजा लेवें, यह तो मालदेव का है सो कल मेरे हाथ से जाता रहेगा। ऐसा सोचकर उसने नगारा बजा दिया, जिसकी आवाज़ सुनकर मालदेव ने चादा से कहा कि भाई मुझे जोधपुर पहुचा दे। तब चादा ने उसे सकुशल जोधपुर पहुचा दिया (ख्यात, जि० २, पृ० १६५)।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २०-२१। मुन्शी देवीप्रसाद, राव

शेरशाह सूर का गुलाम हाजीखां एक प्रबल सेनापति था। अकबर के गद्दी बैठने के समय उसका मेवात (अलवर) पर अधिकार था। वहां से उसे निकालने के लिए बादशाह अकबर ने पीर मुहम्मद सरवानी (नासिरुलमुल्क) को उसपर भेजा, जिसके पहुंचने से पहले ही वह (हाजीखां) भागकर अजमेर चला गया[1]। राव मालदेव ने उसे लूटने के लिए पृथ्वीराज (जैतावत) को भेजा। हाजीखां की अकेले उसका सामना करने की सामर्थ्य न थी, अतएव उसने महाराणा उदयसिंह के पास अपने दूत भेजकर कहलाया कि मालदेव हमसे लड़ना चाहता है, आप हमारी सहायता करें। ऐसे ही उसने राव कल्याणमल से सहायता मांगी। इसपर महाराणा ५००० फ़ौज लेकर अजमेर आया और इतनी ही सेना बीकानेर से राव कल्याणमल ने निम्नलिखित सरदारों के साथ उस(हाजीखां)की सहायतार्थ भेजी[2]—

हाजीखां की सहायतार्थ सेना भेजना

१—महाजन का स्वामी ठाकुर अर्जुनसिंह।

२—जैतपुर का स्वामी रावत किशनदास और

३—ऐवारे का स्वामी नाराण।

इस बड़े सम्मिलित कटक को देखकर जोधपुर के सरदारों ने पृथ्वीराज से कहा कि राव मालदेव के अच्छे अच्छे सरदार पहले की लड़ाइयों में मारे जा चुके हैं, यदि हम भी मारे गये तो राव का बल बहुत

कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० ६६ ६६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २१।

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी मालदेव का जयमल द्वारा परास्त होकर भागना लिखा है।

जयमलजी जपियो जपमालो। भागो राव मंडोवर वालो॥

(जि० १, पृ० ७५)।

(१) अकबरनामा—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, जि० ६, पृ० २१-२२।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २३। मुंशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० १८।

घट जायगा। इतनी बडी सेना का सामना करना कठिन है इसलिए लौट जाना ही अच्छा है। इसपर मालदेव की सेना बिना लड़े ही लौट गई[1] और महाराणा तथा कल्याणमल के सरदार आदि भी अपने अपने स्थानो को लौट गये।

बैरामखा का बीकानेर म आकर रहना

बैरामखा मुगल दरबार का एक प्रसिद्ध दरबारी था। वह हुमायू के साथ फारस से भारतवर्ष म आया था और जब उस(हुमायू)का पुत्र अकबर सिंहासन पर बैठा तो उसने उसे खानखाना का खिताब देकर प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किया, परन्तु उसके दबाव से बादशाह उससे अप्रसन्न रहने लगा। इसलिए अपने राज्य के पाचवे वर्ष[2], वि० स० १६१७ (ई० स० १५६०) के प्रारम्भ मे ही उसने बैरामखा को मन्त्री पद से हटाकर राज्य का सारा कार्य अपने हाथ मे ले लिया। तब उस(बैरामखा)ने मक्का जाने की आज्ञा मागी और बादशाह ने उसके निर्वाह के लिए ५०००० रुपये वार्षिक नियत कर दिये परन्तु जब उसका इरादा पजाब में जाकर बगावत करने का मालूम हुआ, तब बादशाह ने उसपर चढ़ाई कर

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २३। मुशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० ९८ ६।

मेरे 'राजपूताने के इतिहास' (जि० २, पृ० ७२०) में मुहणोत नैणसी और बाकीदास के आधार पर कल्याणमल का हाजीखा की दूसरी लड़ाई में राणा उदयसिंह के पक्ष मे लड़ना लिखा गया है, परन्तु बाद के शोध से यह निश्चित रूप से पता लग गया है कि मालदेव के हाजीखा पर चढ़ाइ करने के समय कल्याणमल ने हाजीख़ा की सहायतार्थ सेना भेजी थी। उस समय उदयसिंह भी उस(हाजीख़ा) की सहायता को गया था। कल्याणमल का मालदेव से वैर था और शेरशाह ने उसको राज्य दिलवाया था, जिससे वह (कल्याणमल) उसका अनुगृहीत था। ऐसी दशा में उसका शेरशाह के गुलाम की सहायतार्थ पहली लड़ाई में ही सेना भेजना अधिक सभव है।

(२) वि० स० १६१६ फाल्गुन सुदि १४ से वि० स० १६१७ चैत्र वदि १० (ई० स० १५६० ता० ११ मार्च से ई० स० १५६१ ता० १० मार्च) तक।

दी। उस समय खानखाना ने मालदेव के राज्य से होकर गुजरात जाना चाहा, परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि मालदेव ने उधर का रास्ता रोक लिया है तब वह गुजरात का रास्ता छोड़कर बीकानेर चला गया और कुछ समय तक राव कल्याणमल और उसके कुवर रायसिंह के आश्रय में रहा, जिन्होंने उसको बड़े सत्कार-पूर्वक रक्खा[१]।

बादशाह की सेना की भटनेर पर चढाई और ठाकुरसी का मारा जाना

एक बार जब बादशाह (अकबर) का खजाना काश्मीर और लाहौर से दिल्ली को जा रहा था, तो भटनेर परगने के गाव मछली में लूट लिया गया। इसकी सूचना जब बादशाह के पास पहुची तो उसने हिसार के सूबेदार निजामुल्मुल्क को फौज लेकर भटनेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा भेजी। निजामुल्मुल्क ने आज्ञानुसार भटनेर को घेर लिया, परन्तु जब बहुत दिन बीत जाने पर भी वह वहा अधिकार करने मे समर्थ न हुआ, तब उसने हिसार की तरफ से और फौज एकत्र कर गढ़ पर प्रबल रूप से आक्रमण किया तथा रसद का भीतर पहुचना रोक दिया। तब ठाकुरसी अपने कुटुम्ब को दूसरे स्थान में भेज अपने १००० राजपूतो के साथ गढ़ से बाहर निकलकर मुसलमानों पर टूट पडा और वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। निजामुल्मुल्क का क़िले पर अधिकार हो गया और वहा बादशाह का थाना स्थापित हो गया[२]।

ठाकुरसी का पुत्र बाघा कुछ दिनों बीकानेर में राव कल्याणमल

---

(१) तबक़ात इ अकबरी—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, जि० ५, पृ० २६५। मआसिर उल् उमरा—बेवरिज कृत अनुवाद, पृ० ३७३। आईने अकबरी—ब्लाकमैन-कृत अनुवाद, जि० १, पृ० ३१६। अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० २, पृ० १५६। मुशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० १०६ और अकबर-नामा, पृ० १२३।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २२। मुन्शी देवीप्रसाद, राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० १०५। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २३।

के पास रहकर दिल्ली मे बादशाह की सेवा म [illegible] गया। एक बार एक कारीगर ने ईरान से एक धनुष लाकर बादशाह को नजर किया। बादशाह ने अपने सरदारों को उसे चढ़ाने का हुक्म दिया, पर किसी से चढ़ा नहीं, तब बाघा ने उसे चढ़ा दिया। ऐसे ही एक अवसर पर उसने वीरता के साथ एक शेर को मार डाला, जिसपर बादशाह उससे बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि बाघा जो तुम्हारी इच्छा हो मागो। तब बाघा ने उत्तर दिया कि मुझे भटनेर इनायत किया जाय। बादशाह ने उसी समय भटनेर का अधिकार उसे सौंप दिया, जहा लौटने पर उसने गोरखनाथ का एक मदिर बनवाया[1]।

बादशाह का बाघा को भटनेर देना

अपने राज्य के पन्द्रहवे वर्ष[2] वि० स० १६२७ (ई० स० १५७०) में ता० ८ रबिउस्सानी हि० स० ९७८ (वि० स० १६२७ द्वितीय भाद्रपद सुदि १०=ई० स० १५७० ता० ६ सितम्बर) को अकबर ने ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की जियारत के लिए अजमेर की ओर प्रस्थान किया। बारह दिन फतहपुर में रहकर वह अजमेर पहुचा। शुक्रवार ता० ४ जमादिउस्सानी (वि० स० १६२७ कार्तिक सुदि ६=ई० स० १५७० ता० ३ नवबर) को अजमेर से चलकर वह ता० १६ जमादिउस्सानी (मार्गशीर्ष वदि ३=ता० १६ नवबर) को नागोर पहुचा, जहा एक तालाब अपने सैनिकों से खुदवाकर उसने उसका नाम 'शुकरतालाब' रक्खा। इन दिनो बादशाह का प्रभाव बहुत बढ़ रहा था, इसलिए कई राजा उससे मैत्री करने अथवा उसकी सेवा स्वीकार करने के लिए उत्सुक थे। जब बादशाह नागोर मे ठहरा हुआ था उस

कल्याणमल का नागोर में बादशाह के पास जाना

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २२-२३; मुशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० १०५-१०६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १०।

(२) वि० स० १६२७ चैत्र सुदि ५ (ई० स० १५७० ता० ११ मार्च) से वि० स० १६२७ फाल्गुन सुदि १४ (ई० स० १५७१ ता० १० मार्च) तक।

समय अन्य राजाओं के अतिरिक्त बीकानेर का राव कल्याणमल भी अपने कुंवर रायसिंह के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हुआ[1]। नागोर में ६० दिन रहने के बाद जब बादशाह ने पट्टन (?पंजाब) की ओर प्रस्थान किया, तब कल्याणमल तो बीकानेर लौट गया, पर उसका कुंवर रायसिंह बादशाह के साथ रहा[2]।

कल्याणमल की मृत्यु

ख्यातों के अनुसार बीकानेर में ही वि० सं० १६२८ वैशाख वदि ५ (ई० स० १५७१ ता० १४ अप्रेल) को कल्याणमल का स्वर्गवास हो गया, परन्तु उस (कल्याणमल) की स्मारक छत्री के लेख से वि० सं० १६३० माघ सुदि २ (ई० स० १५७४ ता० २४ जनवरी) को उसका देहांत होना पाया जाता है[3]।

कल्याणमल की संतति

कल्याणमल के १० पुत्र हुए[4]—

१—रायसिंह, २—रामसिंह, ३—पृथ्वीराज, ४—अमरसिंह, ५—भाण, ६—सुरताण, ७—सारंगदेव, ८—भाखरसी, ९—गोपालसिंह और १०—राघवदास।

---

(१) अबुलफ़ज़ल, अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ५१६ ९। मुंतखबुत्तवारीख—लो कृत अनुवाद, जि० २, पृ० १३७।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २२। मुंशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० १०७ (तिथि वैशाख वदि २ दी है) पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २३।

(३) संवत् १६३० वर्षे माघ मासे शुक्ले पक्षे बीज दिने बीकानेर मध्ये पर्मपवित्र महाराजाधिराज राइ श्री कल्याणमल सत्य रुह वैकुंठ लक्र प्रप्त शुभ भवतु कल्याणमस्तु

मुहणोत नैणसी की ख्यात में कल्याणमल के पुत्र रायसिंह का वि० सं० १६३० (ई० स० १५७३) में गद्दी बैठना लिखा है (जिल्द २, पृ० १९९), जिससे स्पष्ट है कि कल्याणमल का देहांत उसी संवत् में हुआ होगा।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २२-२३। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८५। मुंशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र, पृ० १०८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २४।

राव कल्याणमल के छोटे पुत्रों मे पृथ्वीराज का चरित्र बडा आदर्श और महत्वपूर्ण है, अतएव उसका सक्षिप्त परिचय यहा देना आवश्यक है।

पृथ्वीराज

उसका जन्म वि० स० १६०६ मार्गशीर्ष वदि १ (ई० स० १५४९ ता० ६ नववर) को हुआ था। वह बडा वीर, विष्णु का परम भक्त और उचे दर्जे का कवि था। उसका साहित्यिक ज्ञान बडा गभीर और सर्वांगीय था। सस्कृत और डिंगल साहित्य का उसको अच्छा ज्ञान था।

कर्नल टॉड ने उसके विषय मे लिखा है—'पृथ्वीराज अपने समय का सर्व्वोच्च वीर व्यक्ति था और पश्चिमीय "ट्रूबेडार" राजकुमारो की भाति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकता था तथा स्वय तलवार लेकर लड़ भी सकता था[1]।'

बादशाह अकबर के दरबारियों मे उसका बड़ा सम्मान था और प्राय वह उसके दरबार में बना रहता था। मुहणोत नैणसी की ख्यात से पाया जाता है कि बादशाह ने उसे गागरोन (कोटा राज्य) का किला दिया था, जो बहुत समय तक उसकी जागीर मे था[2]। अकबर के समय के लिखे हुए इतिहास 'अकबरनामे' में उसका नाम केवल दो तीन स्थानों पर आया है। वि० स०

मुहणोत नैणसी की ख्यात मे ९ पुत्रों के नाम मिलते हैं, जिनमें डूगरसिह का नाम उपरोक्त ख्यातो से भिन्न है (जि० २, पृ० १९९)।

जयसोम रचित 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक काव्यम्' में कल्याणमल की दो स्त्रियों से उसके ८ पुत्र होना लिखा है—

राज्ञीरत्नावतीकुक्षिरत्न कल्याणनदना‌ः।
रायसिहो रामसिह सुरत्राणश्च पार्थराट् ॥ २५८ ॥
अन्यपत्नीसुता अन्ये भाणगोपालनामकौ।
अमरो राघव सर्वे विख्याता सर्वदाभवन् ॥ २५९ ॥

(१) राजस्थान, जि० १, पृ० ३९९।

(२) भाग १, पृ० १८८।

१६३८ (ई० स० १५८१) की मिर्जा हकीम के साथ की काबुल की[1] और वि० स० १६५३ (ई० स० १५९६) की अहमदनगर की लडाइयो मे यह वीर राठोड भी शाही सेना के साथ था[2]।

उसमे देश प्रेम कूट कूटकर भरा हुआ था। स्वय शाही सेवा मे रहने पर भी स्वदेश प्रेमी प्रसिद्ध महाराणा प्रताप पर उसकी असीम श्रद्धा थी। राजपूताने मे यह जनश्रुति है कि एक दिन बादशाह ने पृथ्वीराज से कहा कि राणा प्रताप अब हमे बादशाह कहने लग गया है और हमारी अधीनता स्वीकार करने पर उतारू हो गया है, इस पर उसे विश्वास न हुआ और बादशाह की अनुमति लेकर उसने उसी समय निम्नलिखित दो दोहे बनाकर महाराणा के पास भेजे—

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूंतां बयण।
मिहर पछम दिस मांह, ऊगे कासप राव उत ॥ १ ॥
पटकू मूछा पाण, के पटकू निज तन करद।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक[3] ॥ २ ॥

इन दोहों का उत्तर महाराणा ने इस प्रकार दिया—

तुरक कहासी मुख पतौ, इण तन सू इकलिंग।
ऊगै जाही ऊगसी, प्राची बीच पतग ॥ १ ॥
खुसी हूत पीथल कमध, पटको मूंछा पाण।
पछटण है जेतै पतौ, कलमॉ सिर केवाण ॥ २ ॥

---

(१) बेवरिज, अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद), जि० ३, पृ० ५१८।

(२) ठाकुर रामसिंह तथा प० सूर्यकरण पारीक, 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की भूमिका, पृ० १८।

(३) आशय—महाराणा प्रतापसिंह यदि अकबर को अपने मुख से बादशाह कहे तो कश्यप का पुत्र (सूय) पश्चिम मे उग जावे अर्थात् जैसे सूर्य का पश्चिम मे उदय होना सवथा असम्भव है वैसे ही आप(महाराणा)के मुख से बादशाह शब्द का निकलना भी असम्भव है ॥ १ ॥ हे दीवाण (महाराणा)! मैं अपनी मूछों पर ताव दू अथवा अपनी तलवार का अपने ही शरीर पर प्रहार करू, इन दो मे से एक बात लिख दीजिये ॥ २ ॥

साग मूड सहसी सको, समजस जहर सवाद ।
भड़ पीथल जीतो भला बैण तुरक सू वादं ॥ ३ ॥

यह उत्तर पाकर पृथ्वीराज बहुत प्रसन्न हुआ और महाराणा प्रताप का उत्साह बढाने के लिए उसने नीचे लिखा हुआ गीत लिख भेजा—

नर जेथ निमाणा निलजी नारी,
अकबर गाहक बट अवट ॥
चोहटै तिण जायर चीतोडो,
बेचे किम रजपूत बट ॥ १ ॥
रोजायता तणै नवरोजै,
जेथ ममाणा जणो जण ॥
हींदू नाथ दिलीचे हाटे,
पतो न खरचै खत्रीपण ॥ २ ॥
परपच लाज दीठ नह व्यापण,
खोटो लाभ अलाभ खरो ॥
रज बेचवा न आवै राणो,
हाटे मीर हमीर हरो ॥ ३ ॥
पेखे आपतणा पुरसोतम,
रह अणियाल तणै बळ राण ॥
खत्र बेचिया अनेक खत्रिया,
खत्रवट थिर राखी खुम्माण ॥ ४ ॥

---

(१) आशय—(भगवान) 'एकलिगजी' इस शरीर से (प्रतापसिह के मुख से) तो बादशाह को तुर्क ही कहलावेगे और सूय का उदय जहा होता है वहा ही पूर्व दिशा में होता रहेगा ॥ १ ॥ हे वीर राठोड़ पृथ्वीराज ! जबतक प्रतापसिंह की तलवार यवनों के सिर पर है तबतक आप अपनी मूछों पर खुशी से ताव देते रहिये ॥ २ ॥ (राणा प्रतापसिह) सिर पर साग का प्रहार सहेगा, क्योकि अपने बराबरवाले का यश ज़हर के समान कटु होता है । हे वीर पृथ्वीराज ! तुर्क (बादशाह) के साथ के वचन रूपी विवाद मे आप भलीभाति विजयी हों ॥ ३ ॥

जामी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार ॥
है राख्यो खत्री ध्रम राणै,
सारा ले बरतो ससारं ॥ ५ ॥

पृथ्वीराज की विष्णु भक्ति की कई कथाए प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' को समाप्तकर जब वह उसे द्वारिका में श्रीकृष्ण के ही चरणो मे अर्पित करने जा रहा था, तो मार्ग मे द्वारिकानाथ ने स्वय वैश्य के रूप मे मिलकर उक्त पुस्तक को सुना था। श्रीलक्ष्मीनाथ का इष्ट होने से वह उसकी मानसिक पूजा किया करता था।

अकबर के पूछने पर उसने छ मास पूर्व ही बता दिया था कि मेरी मृत्यु मथुरा के विश्रान्त घाट पर होगी। कहते हैं कि बादशाह को इसपर विश्वास न हुआ और इस कथन को असत्य प्रमाणित करने की इच्छा से उसने पृथ्वीराज को राज्य कार्य के निमित्त अटक पार भेज दिया। कुछ समय बीत जाने पर एक दिन एक भील कही से चकवा चकई का एक

(१) आशय—जहा पर मानहीन पुरुष और निर्लज्ज स्त्रिया हैं और जैसा चाहिये वैसा ग्राहक अकबर है, उस बाजार में जाकर चित्तोड़ का स्वामी (प्रतापसिंह) रजपूती को कैसे बेचेगा ? ॥ १ ॥ मुसलमानों के नौरोज़ मे प्रत्येक व्यक्ति लुट गया, परन्तु हिन्दुओ का पति प्रतापसिंह दिल्ली के उस बाज़ार में अपने क्षत्रिय पन को नहीं बेचता ॥ २ ॥ हम्मीर का वशधर (राणा प्रतापसिंह) प्रपची अकबर की लज्जाजनक दृष्टि को अपने ऊपर नहीं पड़ने देता और पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा तथा अलाभ को अच्छा समझकर बादशाही दुकान पर रजपूती बेचने के लिए कदापि नहीं आता ॥ ३ ॥ अपने पूर्व पुरुषो के उत्तम कर्तव्य देखते हुए आप (महाराणा) ने भाले के बल से क्षत्रिय धर्म को अचल रक्खा, जब कि अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को बेच डाला ॥ ४ ॥ अकबररूपी ठग भी एक दिन इस ससार से चला जायगा और उसकी यह हाट भी उठ जायगी, परन्तु ससार मे यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रियों के धर्म में रहकर उस धर्म को केवल राणा प्रतापसिंह ने ही निभाया। अब पृथ्वी भर में सब को उचित है कि उस क्षत्रियत्व को अपने बर्ताव मे लावें अर्थात् राणा प्रतापसिंह की भांति आपत्ति भोगकर भी पुरुषार्थ से धर्म की रक्षा करे ॥ ५ ॥

जोडा पकडकर राजधानी मे बेचने के लिए लाया। पक्षियो का यह जोडा मनुष्य की भाषा मे बोलता था। बादशाह अकबर ने इसे मगाकर देखा और आश्चर्य प्रकट किया। नवाब खानखाना उस समय मौजूद था, उसने बादशाह को प्रसन्न करने के लिए दोहे का एक चरण बनाकर कहा—

सज्जन वारू कोडवा या दुर्जन की भेट।

पर इसका दूसरा चरण बहुत प्रयत्न करने पर भी न बन सका। उस अवसर पर बादशाह को पृथ्वीराज की याद आई और उसने उसी समय उसे बुलाने के लिए आदमी भेजे। अभी बताई हुई अवधि म पन्द्रह दिन शेष थे। ठीक पन्द्रहवे दिन पृथ्वीराज मथुरा पहुचा, जहा दोहे का दूसरा चरण लिखकर बादशाह के पास भिजवाने के अनन्तर उसने विश्रान्त घाट पर प्राण त्याग किया। यह घटना वि० स० १६५७ (ई० स० १६००) में हुई। पृथ्वीराज का कहा हुआ दूसरा चरण इस प्रकार है—

रजनी का मेला किया वेह (विधि) के अच्छर मेट ॥

'वेलि क्रिसन रुकमणी री' पृथ्वीराज की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। इस ग्रन्थ रत्न का निर्माण वि० स० १६३७ (ई० स० १५८०) मे हुआ था। इसके अतिरिक्त उसके राम कृष्ण सम्बन्धी तथा अन्य फुटकर गीत एव छन्द भी उपलब्ध हैं, जो अपने ढग के अनोखे हैं।

पृथ्वीराज के वश के पृथ्वीराजोत बीका कहलाते हैं, जो दद्रेवा के पट्टेदार हैं और छोटी ताजीम का सम्मान रखते हैं।

राव कल्याणमल बडा दूरदर्शी, दानी और वीरो का सम्मान करने वाला व्यक्ति था। जिन मुसलमानो की सहायता से वह अपना गया हुआ राज्य पीछा पा सका था, उनकी शक्ति को वह खूब अच्छी तरह से समझ गया था। वह समय मुगलो के उत्कर्ष का था, जिनका प्रबल प्रवाह बरसाती नदी के समान अपने आगे सब को बहाता हुआ बहुधा भारत में बड़े वेग से फैल रहा था। बडे बडे राज्य तक उनकी अधीनता स्वीकार करते

राव कल्याणमल का व्यक्तित्व

जा रहे थे और जिन्होने ऐसा नही किया था वे भी उनकी बढ़ती हुई शक्ति से भय खाते थे। राजपूताने के विभिन्न राज्यो की दशा भी बडी कमजोर हो रही थी। परस्पर ऐक्य का सर्वथा अभाव था। ऐसी परिस्थिति मे दूरदर्शी कल्याणमल ने मुग़लो की बढती हुई शक्ति से मेल कर लेने में ही भलाई समझी और बादशाह अकबर के नागोर मे रहते समय वह अपने पुत्र रायसिंह के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हो गया। वास्तव मे राव कल्याणमल का यह कार्य वहुत बुद्धिमानी का हुआ, जिससे अकबर और जहागीर के समय शाही दरबार मे जयपुर के बाद बीकानेर का ही बड़ा सम्मान रहा।

उसके दान की प्रशसा का उल्लेख 'कर्मचन्द्रवशोत्कीर्तनक काव्यम्' में मिलता है[1]। राज्य के हितैषी वीरों का वह बडा आदर करता था और ऐसे व्यक्तियों को उसने जागीर और खिताब आदि देकर सम्मानित किया। उसमे साहस और धैर्य्य का प्रचुर मात्रा में समावेश था। राव जैतसी के हाथ से राज्य चला जाने पर भी वह एक क्षण के लिए हताश न हुआ और उसकी पुन प्राप्ति के उद्योग म निरन्तर लगा रहा। वह शरीर से इतना स्थूल था कि घोड़े पर कठिनता से बैठ सकता था।

महाराजा रायसिंह

जन्म और गद्दीनशीनी

महाराजा रायसिंह का जन्म वि० स० १५९८ श्रावण वदि १२ (ई० स० १५४१ ता० २० जुलाई) को हुआ था[2] और अपने पिता का देहात होने पर वि० स० १६३०

(१) येन दानादिधर्मेण कलि' कृतयुगी कृत ।

॥ २२७ ॥

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २४ । वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८९ । चड्डू के यहा का जन्मपत्रियों का सग्रह ।

महाराजा रायसिंह

(ई० स० १५७४) में वह बीकानेर का स्वामी हुआ[1] तथा उसने अपनी उपाधि महाराजाधिराज और महाराजा रक्खी[2]।

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० १९९। टॉड, राजस्थान, जि० २, पृ० ११३०।

दयालदास की ख्यात (जिल्द २, पत्र २४) तथा पाउलेट के 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' (पृ० २४) में रायसिंह का वि० सं० १६२८ वैशाख सुदि १ (ई० स० १५७१ ता० २५ अप्रेल) को बीकानेर की गद्दी पर बैठना लिखा है, जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि राव कल्याणमल की स्मारक छत्री के लेख से वि० सं० १६३० (ई० स० १५७४) में उस (कल्याणमल) की मृत्यु होना निश्चित है।

(२) संवत् १६३१ वर्षे श्रावणसुदि ८ सोमदिने घटी १६ पल ३५ विशाखा नक्षत्र घटी ३१। ४४ ब्रह्मनामयोगे घटी ५४। १० अचलदास खीची री वचनिका॥ महाराजाधिराय(ज) महाराय(जा) श्रीराइसींघजी विजेराज्ये॥

(डा० टेसीटोरी; बारडिक एण्ड हिस्टॉरिकल मैन्युस्क्रिप्ट्स, सेक्शन २, पोइटरी, बीकानेर स्टेट, पृ० ४१)।

संवत् १६५० वर्षे आसा(ढ) मा(से) शु(क्लप)क्षे नवम्यां तिथौ रव(वि)वार घटिका ५१ चि(त्रा)नक्षत्र घटिका १ ऊ(प)रांत स्व(स्वा)ति नक्षत्रे महाराजाधिराज महाराजा श्रीश्रीश्रीरायसिंघजी वि(जइ) रा(ज्ये)। फल(व)धि(क्रानगर) भुरज करावित।

(ज० ए० सो० ब०, न्यू सीरीज़, ई० स० १९१६, जि० १२, पृ० ६६)।

अथ संवत् १६५० वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठ्या गुरौ रेवतीनक्षत्रे साध्यनाम्नि योगे महाराजाधिराजमहाराजश्रीश्रीश्री २ रायसिंहेन दुर्गप्रतोली संपूर्णीकारिता॥

[बीकानेर दुर्ग के सूरजपोल दरवाज़े की बड़ी प्रशस्ति का अंतिम भाग, ज० ए० सो० ब० (न्यू सीरीज़) जि० १६, पृ० २७९]।

मुसलमान इतिहासलेखक हिन्दू राजा महाराजाओं को सदा तुच्छ दृष्टि से देखते थे। इसीलिए वे अपनी पुस्तकों आदि में उनको 'राय', 'राव', 'राणा' आदि शब्दों से संबोधन करते थे। मुसलमान बादशाहों के फ़रमानों में भी प्रायः सभी राजा-

राम के ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी, जोधपुर के राव मालदेव ने, अपनी भाली राणी स्वरूपदे पर विशेष अनुराग होने के कारण उससे उत्पन्न तीसरे पुत्र चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। तब राम केलवा (मेवाड) गांव में जा रहा और उससे छोटे उदयसिंह को मालदेव ने निर्वाह के लिए फलोधी दे दिया। वि० सं० १६१९ (ई० स० १५६२) में राव मालदेव की मृत्यु होने पर चन्द्रसेन जोधपुर की गद्दी पर बैठा, परन्तु कुछ ही दिनों में उसके दुर्व्यवहार से वहां के कुछ सरदार उससे अप्रसन्न रहने लगे और उन्होंने इसकी सूचना राम, उदयसिंह तथा रायमल (जो मालदेव का चौथा पुत्र था) के पास भेज उन्हें गद्दी लेने के लिए उकसाया। तब वे सब चन्द्रसेन के इलाकों पर आक्रमण करने लगे, परन्तु इसमें उन्हें सफलता न मिली। इसपर सरदारों की सलाह से राम बादशाह अकबर के पास पहुंचा और वहां से सैनिक सहायता लाकर उसने जोधपुर का गढ़ घेर लिया। १७ दिन बाद प्रतिष्ठित सरदारों के बीच में पड़ने से परस्पर सन्धि हो गई, जिसके अनुसार राम को सोजत का इलाक़ा मिल गया और शाही सेना वापस चली गई। उसी वर्ष हुसेनकुलीखां[1] की अध्यक्षता में शाही सेना ने पुनः जोधपुर में प्रवेश किया,

अकबर का रायसिंह को जोधपुर देना

महाराजाओं को ज़मीदार ही लिखा है, परन्तु उन (राजा महाराजाओं) के शिलालेखों में उनकी पूरी उपाधि मिलती है। वे अपनी अपनी उपाधि के अनुसार अपने को राजा, महाराजा, महाराणा, राव और महाराव ही लिखते रहे और प्रजा भी उन्हें वैसा ही मानती रही। बीकानेर के राजाओं के शिलालेखों में बीका, लूणकर्ण और जैतसी को सर्वत्र 'राव' ही लिखा है। जैतसी के उत्तराधिकारी कल्याणमल के स्मारक लेख में उसे 'महाराजाधिराज महाराइ' और रायसिंह के सब लेखों में उसे 'महाराजाधिराज महाराजा' लिखा है, जिससे सिद्ध है कि राज्यासन पर बैठते ही रायसिंह ने अपनी उपाधि 'महाराजाधिराज महाराजा' रख ली थी, जैसा कि ऊपर के अवतरणों से प्रकट है।

(१) हुसेनकुली बेग, वली बेग ज़ुल्क़द्र का पुत्र तथा बैरामख़ां का सम्बन्धी था। जब सरकार मेवात में बैरामखां को शाही सेना के आगमन का समाचार

तब ४००००० रुपये देने का वादा कर चन्द्रसेन ने उससे सुलह कर ली। जब तीसरी बार हुसेनकुलीखां की अध्यक्षता में शाही सेना जोधपुर में आई तब चन्द्रसेन ने ससैन्य उसका सामना किया, परन्तु अंत में उसे गढ़ छोड़ना पड़ा और मुगलों का जोधपुर पर अधिकार हो गया[1]।

वि० सं० १६२७ (ई० स० १५७०) में बादशाह नागोर गया, उस समय जोधपुर की गद्दी के हकदार राम और उदयसिंह दोनों बादशाह के पास गये तथा राव चन्द्रसेन भी पुनः राज्य पाने की आशा से अपने पुत्र रायसिंह सहित बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। वह कई दिनों तक वहां रहा, परन्तु जब राज्य पीछा मिलने की कोई आशा न देखी तब वह अपने पुत्र को शाही सेवा में छोड़कर भाद्राजूण लौट गया। उसी वर्ष अपने पिता की विद्यमानता में ही, बीकानेर का रायसिंह भी बादशाह की सेवा में चला गया था, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। अकबर के सत्रहवें राज्य वर्ष (वि० सं० १६२८=ई० स० १५७१) में गुजरात में बड़ी अव्यवस्था फैल गई। उधर मेवाड़ के महाराणा प्रताप का आतंक भी बढ़ने लगा। अतएव ता० २० सफ़र हि० स० ९८० (वि० सं० १६२९ श्रावण वदि ७=ई० स० १५७२ ता० २ जुलाई) को उस(अकबर)ने गुजरात विजय करने के लिए फ़ौज के साथ प्रस्थान किया। इस अवसर पर

मिला तो वह हुसेनकुली बेग के हाथ अपने पद के सब चिह्न बादशाह के पास भिजवाकर मक्का जाने के बहाने पंजाब की तरफ़ चला गया। बादशाह ने हुसेनकुली बेग की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे ख़ानेजहां का ख़िताब दिया।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० ८४-८८।

अकबरनामे में भी अकबर के ८ वें राज्य वर्ष (वि० सं० १६१९=ई० स० १५६३) में हुसेनकुलीखां द्वारा जोधपुर पर चढ़ाई होने और वहां पर मुगलों का अधिकार हो जाने का उल्लेख है (बेवरिज कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ३०५)।

जोधपुर राज्य की ख्यात में तीन बार अकबर की सेना की चढ़ाई होने पर जोधपुर छूटना लिखा है, परन्तु अकबरनामे में एक ही चढ़ाई होने का उल्लेख है।

रायसिंह भी मुगल सेना के साथ था। ता० १५ रबीउलअव्वल (भाद्रपद वदि १=ता० २६ जुलाई) को अजमेर पहुंचने पर अकबर ने मीरमुहम्मद खानेकला[1] को तो कुछ फौज के साथ आगे रवाना कर दिया और आप पीछे रहकर ता० ६ जमादिउलअव्वल (आश्विन सुदि १० = ता० १७ सितंबर) को नागोर पहुंचा। मार्ग में ही उसे तीसरे शाहजादे के जन्म का शुभ सम्वाद प्राप्त हुआ। अजमेर में शेख़ दानियाल के यहां शाहजादे का जन्म होने से, उसने उसका नाम भी दानियाल रक्खा। मेड़ता पहुंचने पर उसे ज्ञात हुआ कि सिरोही से मीरमुहम्मद खानेकला के पास मेल करने के लिए गये हुए दूतों में से एक ने उसपर धोखे से वार कर दिया, परन्तु सौभाग्य से घाव गहरा न लगा था। जब बादशाह सिरोही पहुंचा तो १५० राजपूतों ने उसका सामना किया, परन्तु वे सब के सब मारे गये। विद्रोह की अग्नि को आरंभ में ही रोकना आवश्यक था। अतएव रायसिंह को अकबर ने जोधपुर देकर गुजरात की तरफ़ भेजा, ताकि राणा कीका (प्रतापसिंह) गुजरात के मार्ग को रोककर हानि न पहुंचा सके[2]।

---

(१) मीर मुहम्मद, शम्सुद्दीन मुहम्मद अत्काख़ां का ज्येष्ठ भ्राता था। वह हुमायूं तथा कामरां की सेवा में रहा था तथा अकबर के राज्य काल में उसकी काफ़ी पद-वृद्धि हुई। जब वह पंजाब का हाकिम था तो गक्खरों के साथ के युद्ध में उसने बड़ी ख्याति पाई। अकबर के तेरहवें राज्यवर्ष (वि० सं० १६२५=ई० स० १५६८) में उसे पंजाब से बुला लिया और सम्भल की जागीर दी गई। गुजरात की विजय के पश्चात् अकबर ने उसे पट्टन का हाकिम नियुक्त किया, जहां वि० सं० १६३२ (हि० स० ६८३=ई० स० १५७५) में उसकी मृत्यु हो गई। वह एक वीर योद्धा होने के साथ ही बड़ा अच्छा कवि भी था। अकबर के समय में उसे पांच हजारी मनसब प्राप्त था।

(२) तबकात इ अकबरी—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इण्डिया, जि० ५, पृ० ३४०१। अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ५३८ ४४ तथा जि० ३, पृ० ६८। अलबदायूनी, मुन्तखबुत्तवारीख—लो कृत अनुवाद, जि० २, पृ० १४३ ४। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा, पृ० ३५५। मुंशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० ४७ ८ (इस ग्रन्थ में दिये हुए संवतों और बेवरिज कृत अकबरनामे के अनुवाद में लगभग एक वर्ष का अन्तर है)।

बादशाह (अकबर) ने गुजरात के अन्तिम सुलतान मुजफ्फर शाह (तीसरा) से गुजरात को फतह कर उसे मुगल साम्राज्य में मिला लिया था। कुछ ही समय बाद उधर मिर्जा बन्धुओं ने उपद्रव खड़ा किया। मालवे से जाकर इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा[1] ने बड़ोदा, मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा[2] ने

रायसिंह की इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा पर चढ़ाई

जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १६२६ (ई० स० १५७२) में बादशाह द्वारा रायसिंह को जोधपुर दिया जाना लिखा है (जि० १, पृ० ८८)।

जोधपुर पर रायसिंह का अधिकार कब तक रहा, यह फ़ारसी तवारीखों से स्पष्ट नहीं होता। दयालदास की ख्यात में लिखा है कि वहां उसका तीन वर्ष तक अधिकार रहा और वहां रहते समय उसने ब्राह्मणों, चारणों, भाटों आदि को बहुत से गांव दान में दिये (जि० २, पत्र ३०)। ख्यात में दिये हुए संवत् ठीक न होने से समय के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

उक्त (दयालदास की) ख्यात में यह भी लिखा है—'उदयसिंह (राव मालदेव का कुंवर) ने महाराजा रायसिंह से मिलकर कहा—"जोधपुर सदा आपके पास नहीं रहेगा। आप भाई हैं और बड़े हैं तथा बादशाह आपका कहना मानता है। अपने पूर्वजों का बांधा हुआ जोधपुर का राज्य अभी तो अपना ही है, पर संभव है पीछे से बादशाह के खालसे में रह जाय और अपने हाथ से चला जाय।" महाराजा ने जाना कि बात ठीक है, अतएव उसने बादशाह के पास अर्ज़ी भेजकर वि० सं० १६३६ (ई० स० १५८२) में जोधपुर का मनसब उदयसिंह के नाम करा उसको 'राजा' का खिताब दिला दिया (जि० २, पत्र ३०), परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है। उस (महाराजा) के वि० सं० १६४४ माघ वदि ५ (ई० स० १५८८ ता० ५ जनवरी) के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने चारण माला सादू को सरकार नागोर की पट्टी का गांव भदहरा सासण में दिया था (मूल ताम्रपत्र के फोटो से)। इससे स्पष्ट है कि रायसिंह का अधिकार नागोर और उसके आसपास तो बहुत वर्षों तक रहा था।

(१) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा तैमूर के वंशज मुहम्मद सुलतान मिर्ज़ा का पुत्र और कामरां का दामाद था। अपने अन्य भाइयों के साथ जब वह विद्रोही हो गया तो हि० स० ९७५ (वि० सं० १६२४=ई० स० १५६७) में बादशाह अकबर के हुक्म से सम्भल के क़िले में क़ैद कर दिया गया, परन्तु कुछ ही दिनों बाद वह वहां से निकल भागा। वह हि० स० ९८१ (वि० सं० १६३० = ई० स० १५७३) में फिर शाही सेना द्वारा बन्दी बना लिया गया और मखसूसख़ां द्वारा मार डाला गया।

(२) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का बड़ा भाई।

सूरत तथा शाह मिर्जा[1] ने चापानेर पर अधिकार कर लिया। बादशाह ने उन तीनो पर अलग अलग सेनाएं भेजी। जब उसको यह ज्ञात हुआ कि इब्राहीम हुसेन मिर्जा ने भडोच के क़िले मे रुस्तमखा रूमी[2] को मार डाला है और वह विद्रोह करने पर कटिबद्ध है, तब उसने आगे गई हुई फौजो को वापस बुला लिया और आप (बादशाह) सरनाल (तत्कालीन अहमदाबाद की सरकार के अन्तर्गत) की ओर अग्रसर हुआ, जहा उसे इब्राहीम हुसेन मिर्जा के होने का पता लगा था। शाही सेना के आक्रमण से इब्राहीम हुसेन मिर्जा की फौज के पैर उखड गये और वह भाग गई। वहा से भागकर वह ईडर म मुहम्मद हुसेन मिर्जा और शाह मिर्जा के पास पहुचा, परन्तु उनसे कहा सुनी हो जाने के कारण, वह अपने भाई मसऊद[3] को साथ लेकर जालौर होता हुआ नागोर पहुचा। खानेकला का पुत्र फर्रुखखा उन दिनों वहा का शासक था। इब्राहीम हुसेन मिर्जा ने उसे घेर लिया और निकट था कि नागोर पर उसका अधिकार हो जाता, परन्तु ठीक समय पर रायसिंह को जोधपुर मे इसकी सूचना मिल गई, जिससे उसने नागोर की ओर फौज लेकर प्रस्थान किया। इस अवसर पर मीरक कोलाबी, मुहम्मद हुसेन शेख, राय राम (मालदेव का पुत्र) आदि कई अफसर भी उस(रायसिंह)के साथ थे। इब्राहीम हुसेन मिर्जा को जब उसके आने की ख़बर मिली तो वह घेरा उठाकर भाग गया। ता० ३ रमजान (वि० स० १६३० पौष सुदि ४ = ई० स० १५७३ ता० २८ दिसम्बर) सोमवार को रायसिंह नागोर पहुचा, जहा फर्रुखखा भी उससे आकर मिल गया। अन्य सरदारो का इरादा तो इब्राहीम हुसेन मिर्जा का पीछा करने का न था, परन्तु रायसिंह के जोर देने पर उसका पीछा किया गया और कठौली नामक

(१) इब्राहीम हुसेन मिजा का पाचवा भाइ।

(२) शाही अफ़सर, गुजरात में भड़ोच के क़िले का हाकिम।

(३) मसऊद को बाद मे ग्वालियर के किले मे क़ैद कर दिया गया था, जहा कुछ दिनो बाद उसकी मृत्यु हो गई।

स्थान मे वह शाही सेना द्वारा घेर लिया गया। वहा की लड़ाई मे मुगल सेना की स्थिति डावा डोल हो ही रही थी, कि रायसिंह, जो पीछे था, पहुच गया, जिससे मिर्जा भागकर पजाब की तरफ चला गया[1]।

रायसिंह का बादशाह के साथ गुजरात को जाना

गुजरात के विद्रोहियों का दमन कर तथा मिर्जा अजीज कोकलताश[2] को वहा का हाकिम नियुक्त कर बादशाह फतहपुर लौट गया, परन्तु उसके उधर प्रस्थान करते ही विद्रोहियो ने फिर सिर उठाया। मुहम्मद हुसेन मिर्जा को जब दौलताबाद मे इस बात की सूचना मिली तो वह भी गुजरात मे चला आया और इख्तियारुल्मुल्क[3] आदि उपद्रव कारियो से मिल गया। बादशाह को जब इस उपद्रव का समाचार मिला तो हि० स० ९८१ ता० २४ रबीउल्आखिर (वि० स० १६३० भाद्रपद वदि ११=ई० स० १५७३ ता० २३ अगस्त) रविवार को उसने स्वय फतहपुर से प्रस्थान किया और चार सौ कोस का लम्बा सफर, केवल ९ दिन मे ही समाप्त कर वह विद्रोहियों के सम्मुख जा पहुचा। रायसिंह भी, जो गुजरात के निकट था, बादशाह की सेना से मिल गया। मुहम्मद हुसेन मिर्जा ने अपनी फौज के साथ शाही सेना का मुकाबला किया, परन्तु वह अधिक देर तक ठहर न सका और शाही सैनिको द्वारा बन्दी कर लिया गया।

---

(१) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० १५ ५१। तबकात-इ अकबरी—इलियट् हिस्ट्री ऑव् इडिया, जि० ५, पृ० ३५४। बदायूनी, मुन्तख़बुत्तवारीख—लो कृत अनुवाद, जि० २, पृ० १५३ ४। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ३५५। मुशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० ५२।

(२) यह शम्सुद्दीन मुहम्मद अत्काख़ा का पुत्र और अकबर का एक सरदार था। इसकी एक पुत्री का विवाह शाहज़ादे मुराद से हुआ था। जहागीर के १९ वें राज्यवर्ष (वि० स० १६८१=ई० स० १६२४) मे इसकी अहमदाबाद (गुजरात) में मृत्यु हुई।

(३) यह अबीसीनिया का निवासी तथा गुजरात का एक अमीर था और इसी युद्ध मे शाही सैनिकों द्वारा मार डाला गया।

रायसिंह ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई। बादशाह ने बन्दी मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा को उस(रायसिंह)के सुपुर्द कर दिया, ताकि वह उसे हाथी पर बिठाकर नगर मे ले जाय। ठीक इसी समय इख़्तियारुल्मुल्क ५००० सेना के साथ शाही सेना पर चढ़ आया। बादशाह ने भी युद्ध के नक्कारे बजवा दिये और रायसिंह तथा राजा भगवानदास[1] के कहने से उसी समय मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा कत्ल करवा दिया गया[2]।

बादशाह का रायसिंह को चन्द्रसेन पर भेजना

१६ वे राज्य वर्ष (वि० सं० १६३०=ई० स० १५७४) के आरंभ में जब बादशाह अजमेर में था, उसे चन्द्रसेन (मालदेव का पुत्र) के विद्रोही हो जाने का समाचार मिला। चन्द्रसेन ने उन दिनों सिवाना के गढ़ को, जिसे उसने अपना निवास स्थान बना लिया था और भी दृढ़ कर लिया था। बादशाह ने तत्काल रायसिंह को शाहकुलीख़ा महरम[3], शिमालख़ा[4], केशोदास (मेड़ते के जयमल का पुत्र), जगतराय (धर्मचन्द का पुत्र) आदि सरदारो के साथ चन्द्रसेन को दड देने के लिए भेजा। उस समय सोजत पर कल्ला[5] का अधिकार था, जो शाही सेना के पहुचते ही

---

(१) आमेर के राजा भारमल कछवाहे का पुत्र। हि० स० ९९८ (वि० सं० १६४६=ई० स० १५८९) के आरभ मे लाहौर में इसका देहांत हुआ।

(२) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० ५९ ६२, ७३, ८१ २, ८५-६।

आईने अकबरी (ब्लाकमैन कृत अनुवाद, जि० १, पृष्ठ ४६३) मे रायसिंह के हाथ से मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा का मारा जाना लिखा है। मुतख़बुत्तवारीख़ (लो कृत अनुवाद, जि० २, पृ० १७२) मे उसका रायसिंह के नौकरो द्वारा मारा जाना लिखा है।

(३) अकबर का एक प्रसिद्ध पाच हज़ारी मनसबदार। वि० स० १६५७ (ई० स० १६००) में इसका आगरे में देहात हुआ।

(४) यह अकबर का गुलाम और शस्त्र वाहक था। बाद में एक हज़ारी मनसबदार बना दिया गया। हि० स० १००१ (ई० स० १५९३) के पूर्व ही इसका देहांत हो गया।

(५) जोधपुर के राव मालदेव का पौत्र और राम का पुत्र।

सिरवारी (सिरयारी) को भाग गया। शाही सैनिकों ने जब उसका पीछा करके वह गढ़ भी जला दिया तो वह वहां से भागकर गोरम के पहाड़ों में चला गया। शाही सेना के वहां भी उसका पीछा करने पर, जब उस (कल्ला)ने देखा कि अब बचना कठिन है, तो वह शाही अफसरों से मिल गया और उसने अपने भाई केशोदास को उनके साथ कर दिया। इस प्रकार जब चन्द्रसेन की शक्ति घट गई तो शाही सेना ने सिवाने की ओर प्रस्थान किया, जो उस समय चन्द्रसेन के सेवक रावल सुख(मेघ)राज के अधिकार में था। चन्द्रसेन ने सूजा देवीदास आदि को उसकी सहायता के लिए भेजा, परन्तु रायसिंह के राजपूतों ने गोपालदास की अध्यक्षता में उनपर आक्रमण कर उन्हे मार लिया। पराजित रावल अपने पुत्र को विजेताओं के पास भेज वहां से भाग गया। तब शाही सेना सिवाने के गढ़ पर पहुंची। चन्द्रसेन ने इस अवसर पर गढ़ के भीतर रहना उचित न समझा और राठोड़ पत्ता एव मुहता पत्ता के अधिकार में गढ़ छोड़कर वह वहां से हट गया। शाही सेना ने गढ़ को घेर लिया, परन्तु गढ़ के सुदृढ़ होने और शाही सेना कम होने के कारण जब गढ़ विजय न हो सका तो रायसिंह ने अजमेर में बादशाह के पास उपस्थित होकर अधिक सेना भेजने के लिए निवेदन किया। इसपर बादशाह ने तय्यबख़ां[1], सैय्यदबेग तोकबाई, सुभानकुली तुर्क ख़र्रम, अजमतख़ां, शिवदास आदि अफसरों को चन्द्रसेन पर भेजा, तो भी दो वर्ष तक सिवाने का गढ़ विजय न हो सका। तब बादशाह ने रायसिंह आदि को पीछा बुला लिया और उनके स्थान पर शहबाजख़ां[2] को इस कार्य पर नियुक्त किया, जिसने

(१) मुहम्मद ताहिरख़ां मीर फ़रासत का पुत्र।

(२) इसका छठा पूर्वज हाजी जमाल, मुलतान के शेख बहाउद्दीन ज़करिया का शिष्य था। शहबाजख़ां का प्रारम्भिक जीवन बड़ी सादगी में बीता था, परन्तु बाद में अकबर इसकी सेवाओ से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने इसे अपना अमीर तक बना लिया। हि० स० ९९२ (वि० स० १६४१=ई० स० १५८४) मे बादशाह ने इसे बगाल का शासक नियुक्त किया। ७० वष की अवस्था में हि० स० १००८ (वि० स० १६५६=ई० स० १५९९) में इसकी मृत्यु हुई।

कुछ ही दिनों में उक्त गढ़ को जीत लिया[1]।

२१ वें राज्य वर्ष (वि० स० १६३३=ई० स० १५७६) के आरम्भ मे जब बादशाह को खबर मिली कि जालोर का ताजखा एव सिरोही का सुरताण देवड़ा विद्रोहियों (राणा प्रताप) के साथ मिलकर उपद्रव कर रहे हैं, तो उसने रायसिंह,

बादशाह का रायसिंह को देवडा सुरताण पर भेजना

(१) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० ११३ ४, १५५, २३७ ८। मुन्शी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० ५६ ६१, ६४ ७४ । उमराए हनूद, पृ० २१३ । व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृष्ठ ३५५-६ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी वि० स० १६३२ (ई० स० १५७५) में चन्द्रसेन का शहबाज़खा को सिवाने का गढ़ सौंपना लिखा है (जि० १, पृ० ६०)।

सिवाना छूटने पर राव चद्रसेन पिपलूद के पहाड़ों मे चला गया, तो भी शाही सेना बराबर उसका पीछा करती रही। तब वह सिरोही इलाक़े मे चला गया, जहा वह लगभग डेढ़ वर्ष तक रहा । जब उसे वहा भी शाही सेना पहुचने का सम्वाद मिला, तब वह डूगरपुर में अपने बहनोई आसकरण के यहा जा रहा । इतने में शाही सेना डूगरपुर इलाक़े के निकटवर्ती मेवाड़ प्रदेश में पहुच गई, तो वह वहा से बासवाड़े में पहुचा। कुछ दिनो वहा रहने के उपरान्त वह महाराणा प्रतापसिह के अधीनस्थ भोमट प्रदेश में जाकर रहा, जहा एक वर्ष से अधिक समय तक वह ठहरा। फिर मारवाड़ में आकर वह सिचियायी की गाळ में रहने लगा, जहा वि० स० १६३७ माघ सुदि ७ (ई० स० १५८१ ता० ११ जनवरी) को उसका देहात हुआ ।

सिंढायच दयालदास, बीकानेर राज्य की ख्यात में लिखता है कि पीछे से जालोर[?] की तरफ से होता हुआ जोधपुर का राव चद्रसेन अपने राजपूतो के साथ मारवाड़ में आया। पिपलाणा के पास उसका महाराजा रायसिह के भाई रामसिह से युद्ध हुआ, जिसमे वह (चद्रसेन) भाग गया । उसका नक्कारा रामसिह के हाथ लगा (जिल्द २, पत्र ३०) । इस युद्ध का जोधपुर राज्य की ख्यात मे कुछ भी उल्लेख नही है, परतु यह नक्कारा (जोड़ी) बीकानेर राज्य में अब तक सुरक्षित है। नक्क़ारे की जोड़ी ताबे की कुडी पर चमडे से मढ़ी हुई है और उसपर निम्नालिखित लेख है—

राव चदसेन राठोडाऊ नर

राव चदसेन राठोडाऊ

तरसूखां[1], सैय्यद हाशिम बारहा[2] आदि को उनपर भेजा। शाही सेना के जालोर पहुचते ही, ताजखा ने अधीनता स्वीकार कर ली। फिर वे लोग सिरोही की ओर अग्रसर हुए। सुरताण ने भी इस अवसर पर मेल करना ही उचित समझा, अतएव वह भी रायसिंह के पास उपस्थित हो गया और ताजखा के साथ बादशाह की सेवा में चला गया। ताजखा तो बादशाह की आज्ञानुसार पट्टन (गुजरात) मे गया और रायसिंह तथा सैय्यद हाशिम नाडोल[3] मे ठहर गये, जहा के विद्रोहियो का दमन कर उन्होने मेवाड़ के राणा के राज्य से उधर आने जाने के मार्ग बन्द कर दिये।

कुछ दिनो पश्चात् सुरताण बादशाह की आज्ञा के बिना ही अपने देश चला गया, जिससे बादशाह ने रायसिंह तथा सैय्यद हाशिम आदि को पुन उसपर भेजा। गढ़ को घेरने के उपरान्त, रायसिंह ने बीकानेर से अपने परिवार को बुलाने के लिए मनुष्य भेजे। सुरताण ने मौक़ा देखकर रायसिंह के आते हुए परिवार के लोगों पर आक्रमण कर दिया, परन्तु रायमल के साथ के राठोडो ने उस (सुरताण) को भगा दिया तो वह (सुरताण) आबू मे जा रहा। शाही सेना द्वारा वहा भी पीछा होने पर उसने आबू का क़िला रायसिंह के सुपुर्द कर दिया। इसकी सूचना बादशाह के पास ता० १६ अस्फन्दारमज (वि० स० १६३३ फाल्गुन सुदि १०=ई० स० १५७७ ता० २७ फरवरी) को पहुची। बाद मे योग्य व्यक्तियों को आबू के गढ की व्यवस्था के लिए छोड़कर, रायसिंह सुरताण को

---

(१) शाह मुहम्मद सैफुलमुल्क की बहिन का पुत्र। पहले यह बैरामखा की सेवा में था। अकबर के समय में इसे पाच हजारी मनसब मिला। हि० स० ९९२ (वि० स० १६४१=ई० स० १५८४) मे मासूमखा ने इसे मार डाला।

(२) सैय्यद महमूदखां, कुन्डलीवाल का पुत्र। अहमदाबाद के निकट सरकिच (सरखेज) के युद्ध में मारा गया।

(३) फ़ारसी तवारीखों में नादोत लिखा है, परन्तु यह स्थल नाडोल होना चाहिये, जो आजकल जोधपुर राज्य के गोडवाड़ जिले मे है।

साथ लेकर बादशाह के पास चला गया[1]।

रायसिंह का काबुल पर जाना

अकबर के २५ वे राज्य वर्ष के अन्तिम दिनों (वि० स० १६३७= ई० स० १५८१) मे उसके सौतेले भाई हकीम मिर्जा[2] (मिर्जा मुहम्मद हकीम) ने, जो काबुल का शासक था, अपने बड़े भाई से विरोधकर भारतवर्ष की तरफ भी पैर बढ़ाये। उन दिनो मुहम्मद यूसुफखा सिन्धु के निकटवर्ती प्रदेश पर नियुक्त था, परन्तु उसका प्रबन्ध ठीक न होने के कारण बादशाह ने उसे हटाकर कुवर मानसिंह[3] को उसके स्थान पर भेजा। स्यालकोट से चलकर जब मानसिंह रावलपिंडी पहुचा तो उसे पता लगा कि हकीम मिर्जा का एक सेनापति शादमान ससैन्य सिन्धु के तट तक आ गया है। मानसिंह ने शीघ्रता से पहुचकर उसका अवरोध किया। तब शादमान घायल होकर भाग गया और उसकी मृत्यु हो गई। अकबर को जब यह समाचार मिला तो उसने उसी समय मान लिया कि युद्ध की यही इतिश्री नही हुई है और रायसिंह, जगन्नाथ[4], राजा गोपाल[5]

---

(१) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० २६६ ७, २७८-९। उमरा ए हनूद, पृ० २१३ ४। व्रजरत्नदास, मआसिरुल उमरा (हिन्दी), पृ० ३१६-७। मुशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० ८४ ७।

निज़ामुद्दीन की 'तबकात इ अकबरी' और बदायूनी की 'मुतख़बुत्तवारीख' में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(२) हुमायू का पुत्र और अकबर का सौतेला भाइ। ता० १५ जुमादिउल्-अव्वल हि० स० ९६१ (वि० स० १६११ ज्येष्ठ वदि १ = ई० स० १५५४ ता० १८ अप्रेल) को इसका काबुल मे जन्म हुआ था और अकबर के ३० वे राज्य वर्ष में ता० १६ अमरदाद (वि० स० १६४२ श्रावण सुदि ३=ई० स० १५८५ ता० २९ जुलाई) को वही इसकी मृत्यु हुई।

(३) आमेर के राजा भगवानदास कछवाहे का पुत्र।

(४) राजा भारमल का पुत्र। जहागीर के समय में इसे पाच हजारी मनसब प्राप्त था।

(५) अकबर का दो हज़ारी मनसबदार।

आदि को फौज के साथ आगे रवाना किया एव सिन्धु प्रदेश पर नियुक्त मानसिंह को खबर भेजी कि मिर्जा हकीम यदि नदी पार करने के लिए बढ़े तो उसे रोका न जाय तथा युद्ध टाला जाय। ता० १४ बहमन (हि० स० ९८८ ता० १७ जिलहिज्ज=वि० स० १६३७ फाल्गुन वदि ३=ई० स० १५८१ ता० २३ जनवरी) को जब बादशाह को मिर्जा के पजाब पहुचने का समाचार मिला, तो राजधानी का समुचित प्रबन्ध कर हि० स० ९८९ ता० २ मुहर्रम (वि० स० १६३७ फाल्गुन सुदि ३=ई० स० १५८१ ता० ६ फरवरी) सोमवार को उसने स्वय पजाब की ओर प्रस्थान किया। मिर्जा को बादशाह के आगमन की सूचना मिलते ही, वह वहा से अपनी फौज लेकर भाग गया। बादशाह ने योग्य व्यक्तियो को उसे समझाने के लिए भेजा, परन्तु जब उसने उनके कथन पर कुछ ध्यान न दिया तो ता० ११ तीर (हि० स० ९८९ ता० २१ जमादिउल्अव्वल=वि० स० १६३८ प्रथम श्रावण वदि ७=ई० स० १५८१ ता० २३ जून) को उसने शाहजादे मुराद को मानसिंह, रायसिंह आदि के साथ मिर्जा को समझाने के लिए और यदि इस कार्य मे सफलता न मिले तो उसे परास्त करने के लिए भेजा। मिर्जा ने बादशाह की अधीनता स्वीकार करने के बजाय शाही सेना का मुक़ाबला करना आरम्भ किया, परन्तु ता० २० अमरदाद (वि० स० १६३८ द्वितीय श्रावण सुदि ३=ई० स० १५८१ ता० २ अगस्त) बुधवार को उसे हारकर भागना पड़ा। ता० २९ अमरदाद (वि० स० १६३८ द्वितीय श्रावण सुदि १२=ई० स० १५८१ ता० ११ अगस्त) को बादशाह भी काबुल के क़िले मे पहुच गया। हकीम मिर्जा के गत अपराधो को क्षमाकर उसने काबुल का अधिकार फिर उस (मिर्जा) को सौंप दिया और स्वय भारतवर्ष को लौट आया। ता० २९ आबान (हि० स० ९८९ ता० १३ शव्वाल=वि० स० १६३८ मार्गशीर्ष वदि १=ई० स० १५८१ ता० ११ नवम्बर) को बादशाह सरहिन्द पहुचा, जहा से रायसिंह तथा भगवानदास[1] आदि पजाब मे रहे

(१) कछवाहा, आमेर के स्वामी राजा भारमल का पुत्र। इसे अकबर के समय में 'अमीरुल्उमरा' का खिताब प्राप्त था।

हुए सरदार अपने अपने ठिकानो को लौट गये[1]।

महाराणा उदयसिंह ने अपने ज्येष्ठ कुवर प्रतापसिंह को अपना उत्तराधिकारी न बनाकर अपनी प्रीतिपात्र राणी भटियाणी से उत्पन्न छोटे कुवर जगमाल को अपना युवराज बनाया था, परतु यह बात मेवाड़ की प्रचलित प्रथा के विरुद्ध होने से महाराणा उदयसिंह की मृत्यु होने पर सरदारों आदि ने उस(उदयसिंह)के ज्येष्ठ कुवर प्रतापसिंह को मेवाड़ का महाराणा बनाया। इससे जगमाल अप्रसन्न होकर बादशाह की सेवा में जा रहा। इधर सुरताण (सिरोही के स्वामी) का सारा राज कार्य बीजा देवडा के हाथ में था, जिसको कुछ दिनो बाद उसने निकाल दिया। तब वह अपनी बसी (ठिकाना) मे जा रहा। इसी अवसर पर रायसिंह बादशाह की तरफ से सोरठ को जाता था। मार्ग मे सिरोही के राव सुरताण ने उसकी खूब खातिरदारी की। देवडा बीजा ने भी रायसिंह के पास पहुचकर उसको कई प्रकार से लालच दिखलाया, परन्तु उसने उसकी बात न मानी। राव सुरताण से बात कर रायसिंह ने सिरोही का आधा राज्य बादशाह का रक्खा और आधा राव का तथा बीजा को सिरोही के इलाक़े से निकाल दिया। बादशाह के पास जब इसकी ख़बर रायसिंह ने पहुचाई तब उसने सिरोही राज्य का आधा हिस्सा राणा उदयसिंह के पुत्र जगमाल को दे दिया। बीजा देवडा भी बादशाह की सेवा मे गया हुआ था, पर उसकी कुछ सुनवाई न हुई तब वह भी जगमाल के साथ सिरोही चला गया। राव सुरताण ने आधा राज्य जगमाल के सुपुर्द तो कर दिया पर धीरे धीरे उनमे वैमनस्य बढता गया, जिससे जगमाल को पुन बादशाह की सेवा मे जाना पडा। इसबार बादशाह ने उसके साथ चन्द्रसेन के पुत्र रायसिंह आदि को कर दिया। इसपर

रायसिंह का राव सुरताण से आधा सिरोहा लेना

---

(१) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० ४६३-५, ५०८, ५१८, ५४२, ५४६। उमराए हनूद, पृ० २१४। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ३५७ ८। मुशी देवीप्रसाद; अकबरनामा, पृ० ११८-२१।

राव सुरताण सिरोही छोडकर पहाडो मे चला गया। जगमाल ने सेना के कई भाग कर अलग अलग रास्तो से सुरताण पर भेजे, पर वि० स० १६४० कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १५८३ ता० १७ अक्टोबर) को जब दताणी के रणक्षेत्र मे जगमाल आदि थे, सुरताण उनपर आ टूटा और वे मारे गये[1]।

रायसिंह का बलूचियों पर भेजा जाना

अकबर के ३० वे राज्य वर्ष (वि० स० १६४२=ई० स० १५८५) मे जब बलूचिस्तान के निवासियो के विद्रोही हो जाने का समाचार मिला तो बादशाह ने उनका दमन करने के लिए इस्माईल कुलीखा[2] को रायसिंह, अबुलकासिम तमकिन (नमकिन)[3] आदि सहित भेजा। शाही सेना के पहुचने पर पहले तो बलूचिस्तान के जागीरदारो ने अधीनता स्वीकार न की, परन्तु पीछे से ग़ाजीखा, बहादुरखा, नसरतखा आदि वहा के सब सरदार रायसिंह तथा इस्माईलकुलीखा आदि के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गये और उनकी प्रार्थना के अनुसार उनकी जागीरे पुन उन्हें सौंप दी गई[4]।

---

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० १, पृ० १३१ ३।

(२) खानजहा हुसेनकुलीखा का भाई। अकबर की अनेकों चढ़ाइयों मे यह शाही सेना का अध्यक्ष था। ४२ वें राज्य वर्ष (वि० स० १६५४=ई० स० १५९७) में बादशाह ने इसे चार हज़ार का मनसब दिया था।

(३) यह पहले काबुल के मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम की सेवा में था। अकबर की सेवा में प्रविष्ट होने पर पजाब में भिरह तथा खुशाब इसको जागीर में मिले। जहागीर के राज्यकाल में इसे तीन हज़ारी मनसब प्राप्त हुआ।

(४) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० ७१६ ३१। तबकात-इ अकबरी—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इडिया, जि० ५, पृ० ४५० ५३। बदायूनी, मुन्तख़बुत्तवारीख़—लो कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ३६० ६४ (इसमे रायसिह के स्थान पर रायसिंह दरबारी लिखा है, जो ठीक नहीं है)। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ३५८।

रायसिंह की लाहौर में नियुक्ति

वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८६) में बादशाह ने जब शासन-प्रबन्ध में परिवर्त्तन किये तो रायसिंह को राजा भगवानदास के साथ लाहौर में नियत किया[1]।

काश्मीर में रायसिंह के चाचा शृंग का काम आना

सन् जलूस ३२ (वि० सं० १६४४ = ई० स० १५८७) में कासिमखां[2] ने, जिसे बादशाह ने काश्मीर विजय करने के लिए भेजा था, उस प्रदेश को अधीनकर वहां के विद्रोहियों को दंड दे, बादशाह का अधिकार पीछा स्थापित किया, परन्तु पीछे से जब वह स्वयं वहां के निवासियों पर अत्याचार करने लगा तो फिर अशान्ति का सूत्रपात हुआ। इसलिए विद्रोहियों का दमन करने में कासिमखां को फिर व्यस्त होना पड़ा। शाही सेना की विद्रोहियों के द्वारा जिस समय बड़ी क्षति हो रही थी उस समय रायसिंह के काका शृंग (भूकरकावालों का पूर्वज) ने वीरोचित साहस एवं निर्भीकता का परिचय दिया और अपने चालीस राजपूतों सहित विद्रोहियों का सामना करता हुआ मारा गया। वास्तव में उसी की अद्भुत वीरता के कारण शाही सेना को दूसरे दिन विजय प्राप्त हुई। बाद में अकबर का भेजा हुआ यूसुफखां[3] वहां पहुंच गया, जिसने सारा प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर कासिमखां को दरबार में भेज दिया[4]।

---

(१) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० ७७६।

(२) मीर बहूर चम्मनाराय (?) खुरासान, मिर्ज़ा दोस्त की भगिनी का पुत्र। अकबर ने तख्त पर बैठने के बाद इसे तीन हजारी मनसबदार बनाया था।

(३) मीर अहमद इ रजवी का पुत्र। अकबर ने अपने ३०वें राज्यवर्ष में इसे ढाई हजारी मनसब दिया था। हि० स० १०१० (वि० सं० १६५८=ई० स० १६०१) में जालनापुर में इसका देहान्त हुआ।

(४) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० ७९६-८। मुंशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० १७२।

अबुलफज़ल तथा मुंशी देवीप्रसाद ने श्रीरंग (शृंग) को रायसिंह का चचेरा भाई लिखा है, जो ठीक नहीं है। वह राव कल्याणमल का भाई और महाराजा रायसिंह का काका था, जैसा कि ऊपर लिखा गया है।

रायसिंह का नया क़िला बनवाना

वि० सं० १६४५ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १५८९ ता० ३० जनवरी) बृहस्पतिवार को बीकानेर के वर्तमान क़िले का सूत्रपात हुआ। फाल्गुन सुदि १२ (ई० स० १५८९ ता० १७ फ़रवरी) सोमवार को नींव रक्खी जाकर वि० सं० १६५० माघ सुदि ६ (ई० स० १५९४ ता० १७ जनवरी) बृहस्पतिवार को गढ़ सम्पूर्ण हुआ[1]। यह काम मन्त्री कर्मचन्द्र के निरीक्षण में हुआ।

---

(१) बीकानेर के राजा रायसिंह की प्रशस्ति—

अथ संवत्सरेऽस्मिन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् संवत् १६४५ वर्षे शाके १५१० प्रवर्त्तमाने महामहप्रदायिनि फाल्गुने मासे कृष्णपक्षे नवम्यां तिथौ बृहस्पतिवासरे अनुराधानक्षत्रे व्याघातयोगे श्रीदुर्गस्य प्रथमं सूत्रपातं कृतं ॥ ततो दशमी १० शुक्रवारे ज्येष्ठानंतरं मूलनक्षत्रे दिनभुक्तघटिका २३। ५५ उपरि दुर्गस्य खात[1] कृतं ॥ अथ संवत् १६४५ वर्षे फाल्गुनसुदि १२ द्वादश्यां सोमे पुष्यनक्षत्रे शोभननाम्नि योगे दुर्गस्य शिलान्यासः कृतं ॥ अथ संवत् १६५० वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठ्यां गुरौ रेवतीनक्षत्रे साध्यनाम्नि योगे महाराजाधिराज-महाराज श्री श्री श्री २ रायसिंहेन दुर्गप्रतोलीसंपूर्णीकारिता सा च सुचिरस्थायिनी भवतु ॥

(जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल, न्यू सीरीज़ १६, ई० स० १९२०, पृ० २७९)।

दयालदास की ख्यात में रायसिंह का बुरहानपुर से अपने मन्त्री कर्मचन्द्र को गढ़ बनवाने के लिए आज्ञा देना लिखा है (जि० २, पृ० ३०)। उक्त पुस्तक में गढ़ के निर्माण करने का समय वि० सं० १६४५ वैशाख सुदि ३ से वि० सं० १६५० तक दिया है। रायसिंह की प्रशस्ति के अनुसार वि० सं० १६४५ (ई० स० १५८९) के फाल्गुन मास में गढ़ का शिलान्यास हुआ, जो अधिक विश्वसनीय है।

राव बीका का बनवाया हुआ गढ़ शहर के भीतर होने से रायसिंह ने शहर से बाहर एक विशाल और सुदृढ़ दुर्ग बनवाया (इसके विस्तृत हाल के लिए देखो ऊपर पृ० ४४-४६)।

वि० स० १६४६ ४७ (ई० स० १५९०) मे रायसिंह बादशाह से आज्ञा लेकर बीकानेर गया । इसके कुछ ही दिनों बाद (सन् जुलूस ३६ में) रायसिंह का भाई अमरा (अमरसिंह) बादशाह का विरोधी हो गया । भिंभर के जागीरदार हमजा ने जब उसे उपयुक्त दड दिया, तो एक दिन अवसर पाकर उसका पुत्र केशोदास बदला लेने के लिए, हमजा के पुत्र के धोखे मे करमबेग[1] को मारकर अपने साथियों सहित निकल भागा । इसकी सूचना मिलते ही चतुर मनुष्य उस(केशोदास)के पीछे भेजे गये । देपालपुर तथा कनूला के बीच मे नौशहरा नामक स्थान में उन्होंने विद्रोहियो को घेर लिया । इस अवसर पर रायसिंह के कुछ राजपूत एव खानखाना[2] के आदमी भी पीछा करनेवालो से मिल गये । फलस्वरूप केशोदास अपने पाच सहायको सहित मारा गया और शेष तीन क़ैद कर लिये गये[3] ।

रायसिंह के भाई अमरा का विद्रोही होना

(१) शेरबेग का पुत्र ।

दयालदास की ख्यात (जि० २, पृ० ३३) और कप्तान पाउलेट के 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' (पृ० २८, टिप्पण) में लिखा है कि अमरसिंह ने अरबखा को मारा । इसपर अरबखा के साथी शाही अफसर ने अमरसिह को मार डाला । तब अमरसिह का पुत्र केशवदास उसका बदला लेने के लिए तैयार हुआ और उसने एक शाही अफसर को मार डाला ।

(२) बैरामखा का पुत्र मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना । इसका जन्म हि० स० ९६४ ता० १४ सफर (वि० स० १६१३ माघ वदि १ = ई० स० १५५६ ता० १७ दिसम्बर) को लाहौर मे हुआ था और अकबर तथा जहांगीर की अधिकाश बड़ी चढ़ाइयो मे इसने सेना का सचालन किया था । जहांगीर के २१ वें राज्यवर्ष (वि० स० १६८३=ई० स० १६२७) मे इसका देहात हुआ ।

(३) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद जि० ३, पृ० ९०८ । दयालदास की ख्यात (जि० २, पृ० ३२ ३) में भी अमरा के विद्रोही हो जाने तथा बाद में शाही सेना द्वारा युद्ध में मारे जाने का उल्लेख है ।

बादशाह ने पहले खानखाना को कन्दहार विजय करने के लिए नियुक्त किया था, परन्तु जब दरबारियों ने ठट्ठा के वैभव का उल्लेख किया तो बादशाह ने उसे उधर भेज दिया। खान-खाना ने सर्वप्रथम लाखी पर अधिकार करके शेवा के गढ पर आक्रमण किया। ठट्ठा के स्वामी

रायसिंह का खानखाना की सहायतार्थ भेजा जाना

जानीबेग[1] ने भी उसका सामना करने का आयोजन किया और अपनी रक्षा के लिए नसीरपुर के दर्रे के निकट एक गढ़ बना लिया। इसी अवसर पर रायसिंह का पुत्र दलपत और जैसलमेर का रावल भीम भी अमरकोट के रास्ते से होते हुए खानखना से जा मिले। वे अमरकोट को विजयकर वहा के स्वामी को भी अपने साथ लेते गये। जानीबेग ने जल और स्थल दोनो मार्ग से शाही सेना पर आक्रमण किया, परतु अत में उसकी पराजय हुई तथा उसे अपने बनाये हुए गढ मे शरण लेनी पड़ी। शाही सेना ने ता० ६ आजर इलाही सन् ३६ (हि० स० १००० ता० १४ सफर=वि० सं० १६४८ पौष सुदि १ = ई० स० १५६१ ता० २१ नवम्बर) को उस स्थान पर भी आक्रमण किया। पर जानीबेग सतर्कता के साथ युद्ध टालता हुआ वर्षा ऋतु के आगमन की बाट देखने लगा जब कि उसे शाही सेना का सामना करने मे हर प्रकार से सुविधा होने की सभावना थी। इधर शाही सेना की शक्ति दिन पर दिन क्षीण होने लगी, जिससे खानखाना को बादशाह के पास से सहायता मगवानी पडी। इसपर बादशाह ने धन, जन तथा अन्य युद्ध की सामग्री के अतिरिक्त ता० २१ आजर (हि० स० १००० ता० २६ सफर = वि० स० १६४८ पौष वदि १३ = ई० स० १५६१ ता० ३ दिसबर) को अपने

(१) मिर्ज़ा जानी बेग तर्खान यह अपने दादा मिर्ज़ा मुहम्मद बाकी की मृत्यु पर हि० स० ६६३ (वि० स० १६४१=ई० स० १५८४) मे सिन्ध के अवशेष भाग का स्वामी हुआ। इसकी एक पुत्री का विवाह ख़ानख़ाना (अब्दुर्रहीम) ने अपने पुत्र के साथ किया। बाद मे इसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। हि० स० १००८ (वि० स० १६५६ = ई० स० १५६६) मे बुरहानपुर में इसकी मृत्यु होने पर ठट्ठा की जागीर इसके पुत्र मिर्ज़ा गाजी को दी गई।

चार हजारी मनसबदार[1] रायसिंह को उस (खानखाना) की सहायता के लिए भेजा[2]।

रायसिंह की एक पुत्री का विवाह बान्धोगढ (रीवा) के रामचन्द्र बघेला के पुत्र वीरभद्र से हुआ था। जब रामचन्द्र की मृत्यु हो गई तो बादशाह ने उसके पुत्र वीरभद्र को अपना राज्य सभालने के लिए भेजा, परन्तु दुर्भाग्यवश मार्ग में वह पालकी से नीचे गिर पड़ा और कुछ समय बाद खुर्जा पहुचने पर उसके प्राण पखेरु उड़ गये। जब बादशाह के पास यह दु खद समाचार पहुचा तो ता० १२ अमरदाद सन् जलूस ३८ (हि० स० १००१ ता० ५ जीकाद् = वि० स० १६५० श्रावण सुदि ८ = ई० स० १५९३ ता० २५ जुलाई) को उसने रायसिंह के पास जाकर हार्दिक शोक प्रकट किया। वीरभद्र की राणी सती होना चाहती थी, परन्तु बादशाह ने उसके बच्चों की बाल्यावस्था के कारण उसे ऐसा करने से रोक दिया[3]।

रायसिंह के जामाता वीरभद्र की मृत्यु

(१) तबकात इ अकबरी—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इडिया, जि० ५, पृ० ४६२। बदायूनी, मुतख़बुत्तवारीख़—लो कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ३६२।

इससे स्पष्ट है कि अकबर के ३७ वे राज्य वर्ष से पूर्व किसी समय रायसिंह को चार हज़ारी मनसब प्राप्त हो गया था, पर इसका ठीक ठीक समय फ़ारसी तवारीख़ों से निश्चित नहीं होता। दयालदास ने वि० स० १६३४ (ई० स० १५७७) में रायसिंह को बादशाह की तरफ़ से ४००० का मनसब ५२ परगने एव राजा का ख़िताब मिलना लिखा है (जि० २, पत्र २५)।

(२) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० ६१६, ६२४, ६२५। तबकात इ अकबरी—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इडिया, जि० ५, पृ० ४६१ २। बदायूनी, मुतखबुत्तवारीख—लो कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ३६२। ब्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ३५८।

(३) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० ६८५। मुशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० २१४ ६। उमराए हनूद, पृ० २१४। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी) पृ० ३५८ ६।

वि० सं० १६५० (ई० स० १५९३) में शेख़ फैजी[1], मीर मुहम्मद अमीन आदि दक्षिण की तरफ गये हुए अफसर वापस लौटे। बुरहानुल्मुल्क[2] को कई अवसर पर शाही सहायता तथा सम्मान प्राप्त हो चुका था, परन्तु उन दिनों उसने प्रचुर मात्रा में शाही सेवा मे नजराना न भेजा। इस अवज्ञा का दड देने के लिए बादशाह की इच्छा स्वयं आगरे जाकर उसपर फौज भेजने की थी, परन्तु वहा रसद आदि की महगाई होने के कारण, उसने विवश होकर ता० २५ मेहर (हि० स० १००२ ता० २२ मुहर्रम = वि० स० १६५० कार्तिक वदि ६ = ई० स० १५९३ ता० ८ अक्टोबर) को शाहज़ादे सुलतान दानियाल[3] को ७०००० सवारों[4] के साथ उसके विरुद्ध भेजा। इस अवसर पर रायसिंह, खानखाना आदि भी उसके साथ थे तथा शाहजादे मुराद[5] को भी दक्षिण की ओर अग्रसर होने का

रायसिंह का दक्षिण में जाना

(१) नागोर के शेख़ मुबारक का पुत्र तथा शेख़ अबुलफ़ज़ल का ज्येष्ठ भ्राता। इसका पूरा नाम अबुलफ़ैज़ था और हि० स० ९५४ ता० १ शाबान (वि० स० १६०४ आश्विन सुदि २ = ई० स० १५४७ ता० १६ सितम्बर) को इसका जन्म हुआ था। यह इतिहास, वेदान्त और हिक्मत आदि का प्रकाड पडित होने के अतिरिक्त उच्च कोटि का कवि भी था। यह सबसे पहला मुसलमान था, जिसने हिन्दी साहित्य एव विज्ञान का अध्ययन किया। कई सस्कृत पुस्तको के अतिरिक्त इसने 'लीलावती' एव बीजगणित का भी अनुवाद किया था। आगरे मे हि० स० १००४ ता० १० सफ़र (वि० स० १६५२ आश्विन सुदि १२ = ई० स० १५९५ ता० ५ अक्टोबर) को इसकी मृत्यु हुई।

(२) अहमदनगर का शासक।

(३) अकबर का तीसरा पुत्र। अत्यधिक मदिरा सेवन के कारण बुरहानपुर में हि० स० १०१३ ता० १ जिलहिज्ज (वि० स० १६६२ वैशाख सुदि २ = ई० स० १६०५ ता० १० अप्रेल) को इसकी मृत्यु हुई।

(४) तबकात इ-अकबरी—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इडिया, जि० ५, पृ० ४६७। बदायूनी, मुतख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ४०३।

(५) अकबर का दूसरा पुत्र। हि० स० ९७८ (वि० सं० १६२७ = ई० स० १५७०) मे सीकरी में इसका जन्म हुआ था। हि० स० १००७ ता० १५ शव्वाल

आदेश भेजा गया। लाहौर से ३५ कोस सुल्तानपुर की नदी तक बादशाह स्वयं इस सेना के साथ गया। ख़ानखाना भी सरहिन्द तक पहुंच गया था। उसे बुलाकर उससे परामर्श करने के उपरान्त बादशाह ने केवल खानखाना को इस सेना का अध्यक्ष बनाकर भेज दिया और दानियाल को पीछा बुला लिया[2]।

अकबर का रायसिंह को जूनागढ देना

उसी वर्ष बादशाह ने आजमखां[2] के नाम फरमान भेजकर उसे दरबार में बुला लिया और जूनागढ का प्रदेश (दक्षिणी काठियावाड), जिसे उस(आजमखां)ने जीता था, रायसिंह के नाम कर दिया[3]।

अकबर की रायसिंह से अप्रसन्नता तथा बाद में उसे सोरठ देकर दक्षिण भेजना

कुछ समय पहले रायसिंह के एक कृपापात्र सेवक ने किसी पर अत्याचार किया था[4], जिसकी शिकायत होने पर बादशाह ने रायसिंह से जवाब तलब किया, परन्तु उस(रायसिंह)ने नौकर को छिपा लिया और बादशाह से कहला दिया कि वह भाग गया। इसपर बादशाह उससे अप्रसन्न रहने लगा और उसने कुछ दिनों के लिए उसका मुजरा

(वि० सं० १६५६ ज्येष्ठ वदि १ = ई० स० १५९९ ता० १ मई) को दक्षिण में इसका देहान्त हुआ।

(१) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० ९९४-५। तबकात इ-अकबरी—इलियट्, हिस्ट्री आव् इंडिया, जि० ५, पृ० ४६७। बदायूनी, मुतख-बुत्तवारीख—लो कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ४०३।

(२) खानआज़म, मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका (देखो ऊपर पृ० १९९, टिप्पण २)।

(३) बदायूनी, मुन्तखबुत्तवारीख—लो कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ४००।

(४) फ़ारसी तवारीखों में इस घटना का स्पष्टीकरण नहीं किया है। दयालदास की ख्यात में एक स्थल पर लिखा है कि वि० सं० १६४४ (ई० स० १५८७) में महाराजा रायसिंह भटनेर गया था। उसके वहां रहते समय बादशाह(अकबर)का श्वसुर नसीरखां भी वहां जाकर ठहरा। उसके वहां की किसी एक लड़की से अनुचित छेड़ छाड़ करने पर रायसिंह के इशारे से उसके सेवक तेजा ने उसको पीटा। वहां रहते समय तो उस(नसीरखां)ने कुछ न कहा, परन्तु दिल्ली पहुंचने पर उसने बादशाह से

बन्द कर दिया। अंत मे बादशाह ने उसका अपराध क्षमा कर दिया और सोरठ (सौराष्ट्र, सारा दक्षिणी काठियावाड) की जागीर उसे प्रदानकर दक्षिण मे भेजा[1], परन्तु उधर प्रस्थान न कर वह (रायसिंह) बीकानेर जाकर बैठ रहा। कई बार समझाये जाने पर भी जब उसने कुछ ध्यान न दिया तो बादशाह ने सलाहुद्दीन को उसके पास भेजकर कहलाया कि यदि उसे दक्षिण मे न जाना हो तो शाही सेवा मे उपस्थित हो। इसपर ता० २६ दे सन् जुलूस ४१ (हि० स० १००५ ता० २७ जमादिउलूअव्वल = वि० स० १६५३ माघ वदि १४ = ई० स० १५६७ ता० ६ जनवरी) को वह बादशाह के पास उपस्थित हो गया। पीछे से उसका अपराध क्षमाकर ता० ५ बहमन (हि० स० १००५ ता० ५ जमादिउस्सानी = वि० स० १६५३ माघ सुदि ७ = ई० स० १५६७ ता० १४ जनवरी) को बादशाह ने उसे दक्षिण मे भेज दिया[2]।

अकबर के ४५ वे राज्यवर्ष (वि० स० १६५७ = ई० स० १६००) के आरंभ

शिकायत कर दी। इसपर बादशाह ने महाराजा को तेजा को सौंप देने का हुक्म दिया, पर उसने नही सौंपा। पीछे से भटनेर तथा कसूर आदि परगने उससे तागीर होकर दलपतसिंह के पट्टे मे कर दिये गये (जि० २, पत्र ३२)। किसी अज्ञात कवि की बनाई हुई 'राजा रायसिंहजी री वेल' (वेलिया गीत मे लिखा हुआ काव्य) मे भी इस घटना का उल्लेख है (डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टॉरिकल मैन्युस्क्रिप्ट्स, सेक्शन २, भाग १, बीकानेर स्टेट, पृ० ५६)।

फ़ारसी तवारीख़ो के अनुसार रायसिंह की ड्योढ़ी बादशाह ने बन्द करवा दी थी। इससे स्पष्ट है कि उसका अपराध काफ़ी बड़ा रहा होगा। दयालदास का उपर्युक्त कथन इसी घटना से सम्बन्ध रखता है, पर उसमे दिया हुआ संवत् ग़लत है।

(१) बादशाह अकबर के रायसिंह के नाम के सन् जुलूस ४२ ता० ६ दे (हि० स० १००६ ता० २० जमादिउल्अव्वल = वि० स० १६५४ पौष वदि ७ = ई० स० १५६७ ता० २० दिसम्बर) के फ़रमान मे सोरठ एवं अन्य जागीरें उसे पुन दी जाने का उल्लेख है। उक्त फ़रमान मे अकबर की प्रसन्नता का भी वर्णन है।

(२) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० १०६८ ६६। मुंशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० २४५। उमराए हनूद, पृ० २१५। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ३५६।

दलपत का भागकर बीकानेर जाना

मे मुजफ्फर हुसेन मिर्जा[1] विद्रोही हो गया और एक दिन अवसर पाकर भाग निकला। रायसिंह का पुत्र दलपत उसे खोजने के बहाने बीकानेर चला गया। वास्तव मे उसका उद्देश्य भी बीकानेर जाकर फसाद करने का था[2]।

अकबर का रायसिंह को नागोर आदि परगने देना

उसी वर्ष (वि० स० १६५७ = ई० स० १६०० मे) बादशाह ने माधोसिंह[3] को हटाकर नागोर आदि परगने रायसिंह को जागीर मे दिये[4]।

रायसिंह की नासिक मे नियुक्ति

अहमदनगर विजय हो जाने पर भी दक्षिण की अराजकता का अन्त नही हुआ था। अतएव खानखाना तो अहमदनगर भेजा गया और बादशाह ने शेख़ अबुल-फजल[5] को ता० २३ बहमन (हि० स० १००६ ता० ६ शाबान = वि० स० १६५७ माघ सुदि ८ = ई० स० १६०१ ता० ३१

(१) ऊपर पृ० १६७ मे आये हुए इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का पुत्र।

(२) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० ११५१। मुशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० २६८। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ३६०।

(३) राजा भगवतदास कछवाहे का ज्येष्ठ पुत्र तथा अकबर का तीन हज़ारी मनसबदार। शाहजहा के तीसरे राज्य वर्ष (वि० स० १६८६ ७ = ई० स० १६३०) मे यह अपने दो पुत्रो के साथ दक्षिण मे मारा गया।

(४) अकबर का इलाही सन् ४५ ता० ३ आबान (हि० स० १००६ ता० १७ रबीउस्सानी = वि० स० १६५७ कार्तिक वदि ४ = ई० स० १६०० ता० १५ अक्टोबर) का फ़रमान।

(५) नागोर के शेख़ मुबारक का दूसरा पुत्र तथा शेख़ फ़ैज़ी का छोटा भाई। इसका जन्म हि० स० ९५८ (वि० स० १६०८ = ई० स० १५५१) मे हुआ था और अकबर के १६वे राज्य वर्ष (वि० स० १६३० = ई० स० १५७४) मे यह उसकी सेवा मे प्रविष्ट हुआ। इसने 'अकबरनामा' एव 'आईने अकबरी' नामक अकबर के राज्यकाल से सम्बन्ध रखनेवाले दो बृहद् ऐतिहासिक ग्रन्थो की रचना की। हि० स० १०११ ता० ४ रबीउलअव्वल (वि० स० १६५९ भाद्रपद सुदि ६ = ई० स० १६०२ ता० १२ अगस्त) को यह वीरसिंहदेव बुदेला के हाथ से मारा गया।

जनवरी) को नासिक जाने का आदेश दिया। इस अवसर पर रायसिंह, राय दुर्गा[1], राय भोज[2], हाशिमबेग[3] आदि को भी उसके साथ जाने को आज्ञा हुई। सन् जुलूस ४६ ता० १४ उर्दीबहिश्त (हि० स० १००६ ता० २६ शव्वाल=वि० स० १६५८ वैशाख सुदि १=ई० स० १६०१ ता० २३ अप्रेल) को अपने देश की तरफ बखेडे की खबर पाकर रायसिंह आज्ञा लेकर उधर चला गया[4]।

रायसिंह का आंतरी में रहना

वि० स० १६५६ (ई० स० १६०२) में जब अबुलफजल नरवर की ओर से अपने साथियो सहित जा रहा था, शाहजादे सलीम के इशारे पर वीरसिंहदेव बुन्देला[5] ने उसे मार डालने का जाल फैलाया। जब अबुलफजल के साथियो को इस बात का पता लगा तो उन्होने उस (अबुलफजल) से रायसिंह तथा रायराया[6] की शरण मे जाने की सलाह दी, जो उस समय केवल दो कोस

---

(१) चित्तोड़ के निकट के रामपुरा परगने का सीसोदिया स्वामी तथा अकबर का डेढ़ हज़ारी मनसबदार। जहागीर के दूसरे राज्य वर्ष (वि० स० १६६४=ई० स० १६०७) के आसपास इसकी मृत्यु हुई।

(२) राय सुजन हाड़ा का पुत्र। जब दूदा (भोज का बड़ा भाई) से बूंदी ली गई तो वहा का अधिकार भोज को दिया गया। वि० स० १६६४ (ई० स० १६०७) के आसपास इसने आत्महत्या कर ली।

(३) कासिमखा का पुत्र। अकबर के राज्य काल में इसे डेढ़ हज़ारी मनसब प्राप्त था, जो जहांगीर के समय मे तीन हज़ार हो गया।

(४) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३ पृ० ११७३ और ११८४। मुशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० २७५ ६। उमराए हनूद, पृ० २१५। ब्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा, (हिन्दी), पृ० ३५६।

(५) ओरछे का स्वामी।

(६) खत्री हरदासराय, जिसे अकबर नें रायराया का खिताब दिया था। बाद में जहागीर ने इसको राजा विक्रमाजीत का ख़िताब दिया। अकबर के समय में पहले यह हाथियों का हिसाब रक्खा करता था, परन्तु बाद मे अपनी योग्यता के कारण दीवान बना दिया गया। जहागीर ने इसे तोपखाने का अफ़सर भी बना दिया था।

की दूरी पर २००० सवारों के साथ आंतरी में थे, परन्तु अबुलफजल ने उनकी सलाह पर ध्यान न दिया, जिसके फलस्वरूप वह मारा गया[1]।

रायसिंह का बादशाह की नाराजगी दूर होने पर दरबार में जाना

पहले की बादशाह की नाराजगी तो दूर हो गई थी, परन्तु फिर कुछ मनमुटाव हो गया था, जिसके मिटने पर बादशाह ने उसे अपनी सेवा में बुला लिया, परन्तु उसका पुत्र दलपत अब तक पिता के विरुद्ध आचरण करता था अतएव उसके लिए आज्ञा हुई कि जब तक वह अपने पिता को प्रसन्न न कर लेगा उसे शाही सम्मान प्राप्त न होगा[2]।

रायसिंह की सलीम के साथ मेवाड़ की चढ़ाई के लिए नियुक्ति

बादशाह ने अपने ४८ वें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६६० = ई० स० १६०३) में दशहरे के दिन शाहजादे सलीम को फिर मेवाड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी और एक बड़ी सेना उसके साथ कर दी, जिसमें रायसिंह, जगन्नाथ, माधोसिंह, राय दुर्गा, राय भोज, दलपतसिंह, मोटे राजा का पुत्र सकतसिंह आदि कितने ही राजपूत सरदार भी थे। शाहजादा अपने पिता की आज्ञा को टाल नहीं सकता था, इसलिए वहां से ससैन्य चला, परन्तु उसको मेवाड़ की चढ़ाई का पहले कटु अनुभव हो चुका था, इसलिए वह इस बला को अपने सिर से टालना चाहता था। वह फतहपुर में जाकर ठहर गया। वहां से उसने अपनी सेना तैयार न होने का बहाना कर बादशाह के पास अर्जी भेजी कि मुझे अधिक सेना तथा खजाने की आवश्यकता है, अतएव ये दोनों बातें स्वीकार की जावें या मुझे अपनी जागीर इलाहाबाद जाने की आज्ञा

(१) तकमील इ अकबरनामा (शेख इनायतुल्ला कृत)—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, जि० ६, पृ० १०७। अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० १२१८। मुंशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० २६४ ६।

(२) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० १२१९। मुंशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० २६४।

दी जाय। बादशाह समझ गया कि वह फिर महाराणा (अमरसिंह) से लड़ना नहीं चाहता है, इसलिए उसने उसे इलाहाबाद जाने की आज्ञा दे दी[1]।

रायसिंह को परगना शम्साबाद मिलना

बादशाह ने अपने ४९ वें राज्यवर्ष (वि० स० १६६१=ई० स० १६०४) में परगना शम्साबाद के दो भाग—एक शम्साबाद तथा दूसरा नूरपुर—कर दिये और उन्हें रायसिंह को जागीर में दे दिया[2]।

बादशाह की बीमारी पर रायसिंह का बुलवाया जाना तथा बादशाह की मृत्यु

वि० स० १६६२ के आश्विन (ई० स० १६०५ सितम्बर) मे बादशाह की तबियत खराब हो गई और वह बहुत क्षीण हो गया। इस अवसर पर शाहजादे सलीम ने रायसिंह को बुलाने के लिए निशान भेजा, जिसमें उसे बिना रुके हुए शीघ्रातिशीघ्र आने को लिखा था[3]। रायसिंह को इतनी शीघ्रता से इस अवसर पर बुलाने मे भी एक रहस्य था, जिसका उल्लेख मुशी देवीप्रसाद ने इस प्रकार किया है—'ता० २० जमादिउल्अव्वल को बादशाह बीमार हुआ। उस वक्त दरबार मे राजा मानसिंह (कछवाहा) और खानआजम कर्त्ता धर्त्ता थे। खुसरो आमेर के मानसिंह का भानजा और खानआजम का जामाता था, इसलिए ये दोनों बादशाह के पीछे खुसरो को तख्त पर बिठाने के जोड तोड मे लगे हुए

(१) तकमील इ अकबरनामा—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, जि० ६, पृ० ११०। अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, पृ० १२३३ ४। मुशी देवीप्रसाद, अकबरनामा, पृ० ३०४ ५। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिंदी), पृ० ३६०।

(२) अकबर का इलाही सन् ४९ ता० २१ खुरदाद (हि० स० १०१३ ता० ११ मुहर्रम=वि० स० १६६१ ज्येष्ठ सुदि १४=ई० स० १६०४ ता० ३१ मई) का फ़रमान।

(३) जहांगीर का इलाही सन् ५० ता० २९ मेहर (हि० स० १०१४ ता० ७ जमादिउस्सानी = वि० स० १६६२ कार्तिक सुदि १०=ई० स० १६०५ ता० ११ अक्टोबर) का निशान।

थे तथा जो लोग शाह सलीम को नहीं चाहते थे वे सब इनके सहायक थे। शाहजादे ने यह सब हाल देखकर किले में आना जाना छोड़ दिया था[1]।' इससे यह स्पष्ट है कि ऐसे समय में रायसिंह ही एक ऐसा व्यक्ति था, जिसकी सहायता पर सलीम भरोसा कर सकता था। दुश्मनों से भरे हुए दरबार में उसे रायसिंह ही विश्वासपात्र दिखाई पड़ता था, इसलिए उसने अपना पक्ष दृढ करने के लिए रायसिंह को शीघ्रातिशीघ्र आने को लिखा था। लगभग एक मास बाद वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदि १४ (ई० स० १६०५ ता० १५ ऑक्टोबर) मंगलवार को १४ घड़ी रात गये आगरे में अकबर का देहांत हो गया[2]।

रायसिंह के मनसब में वृद्धि

अकबर के देहावसान के पश्चात् सलीम जहांगीर के नाम से हि० स० १०१४ ता० २० जमादिउस्सानी (वि० सं० १६६२ मार्गशीर्ष वदि ७ = ई० स० १६०५ ता० २४ ऑक्टोबर) बृहस्पतिवार को लगभग ३८ वर्ष की अवस्था में आगरे में सिंहासनारूढ़ हुआ। हि० स० १०१४ ता० ११ ज़िल्काद (वि० सं० १६६३ प्रथम चैत्र वदि १२ = ई० स० १६०६ ता० ११ मार्च) मंगलवार को पहले जुलूस के उत्सव में उसने अपने बहुतसे अफसरों के मनसब आदि में वृद्धि की। अकबर के जीवनकाल में रायसिंह का मनसब चार हजारी था, जो इस अवसर पर बढ़ाकर पांच हजारी कर दिया गया[3]।

जहांगीर के पहले राज्य वर्ष के मध्य में शाहजादा खुसरो बाग़ी होकर पंजाब की तरफ भाग गया। पहले तो बादशाह ने अन्य अफसरों को उसके पीछे भेजा, परन्तु बाद में उसने स्वयं प्रस्थान किया। इस

(१) मुंशी देवीप्रसाद, जहांगीरनामा, पृ० १६।

(२) अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद, जि० ३, पृ० १२६०।

(३) तुज़ुक इ जहांगीरी—राजर्स और बेवरिज कृत अनुवाद, जि० १, पृ० १ और ४६। मुंशी देवीप्रसाद, जहांगीरनामा, पृ० २२ और ५२। उमराए हनूद, पृ० २१५। ब्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६०।

रायसिंह का बादशाह की आज्ञा के बिना बीकानेर जाना

अवसर पर रायसिंह को उसने यह कहकर आगरे मे रक्खा था कि जब बेगमो को बुलवाया जाय तो वह उनको लेकर आवे[1]। बेगमो के बुलवाये जाने पर दो तीन मजिल तक तो वह उनके साथ गया, पर मथुरा में कुछ अफवाहे[2] सुनते ही वह उनका साथ छोडकर बीकानेर चला गया और वही से खुसरो की गति विधि लक्ष्य करने लगा[3]।

जब बादशाह को, नागोर के पास दलपत के बागी हो जाने का समाचार मिला, तो उसने राजा जगन्नाथ, मुइज्जुलमुल्क[4] आदि को

शाही सेना द्वारा दलपत की पराजय

उसपर भेजा। इसके कुछ ही दिनो बाद उसे सूचना मिली कि जाहिदखा[5], अब्दुर्रहीम[6], राणा

(१) अन्य तवारीख़ों (इकबालनामा, पृ० ६, मआसिर-इ-जहागीरी, पृ० ७१, क़ज़वीनी, पृ० ४२) से पाया जाता है कि इस अवसर पर जहागीर, शेख सलीम के पौत्र शेख़ अलाउद्दीन, मिर्ज़ा गयासबेग तेहरानी, दोस्तमुहम्मद ख़्वाजाजहा और रायसिंह की एक सम्मिलित कमेटी बनाकर राजधानी की हिफ़ाज़त करने के लिए छोड़ गया था और शाहज़ादा खुर्रम इस कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया था।

(२) 'तुज़ुक इ जहागीरी' में आगे चलकर लिखा है कि बादशाह अकबर की मृत्यु हो जाने पर जब शाहज़ादा खुसरो बागी होकर भागा और जहागीर उसके पीछे गया तो रायसिंह ने मानसिंह सेवड़ा (जैन साधु) से पूछा कि जहागीर का राज्य कबतक रहेगा। उसके यह उत्तर देने पर कि अधिक से अधिक दो वर्ष तक रहेगा, रायसिंह इसपर विश्वास कर शाही आज्ञा प्राप्त किये बिना ही बीकानेर चला गया। परन्तु जब बादशाह सकुशल राजधानी को लौट आया तब वह शाही सेवा मे उपस्थित हो गया (राजर्स और बेवरिज कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० १, पृ० ४३७-८)।

(३) मुशी देवीप्रसाद, जहागीरनामा, पृ० ६७।

(४) बारवज ('आईने अकबरी' में मशअद दिया है) का सैय्यद।

(५) हिरात के बाकर के पुत्र सादिक़खा का पुत्र। अकबर के समय में इसे साढ़े तीन सौ का मनसब प्राप्त था, जो जहागीर के समय मे दो हज़ार हो गया।

(६) शेख़ अबुलफज़ल का पुत्र तथा जहागीर का दो हज़ारी मनसबदार। बाद में इसे अफजलखा का ख़िताब दिया गया था। जहागीर के आठवे राज्यवर्ष में ता० १० खुरदाद (वि० स० १६७० ज्येष्ठ सुदि ११ = ई० स० १६१३ ता० २० मई) को इसकी मृत्यु हुई।

शकर[1] (सगर) आदि ने दलपत के नागोर के पास होने का पता पा उस-पर चढाई कर दी और उसे घेर लिया है। दलपत ने कुछ देर तक तो शाही सेना का सामना किया परन्तु अत में उसे भागना पडा[2]।

रायसिंह का शाही सेवा में उपस्थित होना

हि० स० १०१६ ता० ६ शाबान (वि० स० १६६४ माघ सुदि ८ = ई० स० १६०८ ता० १४ जनवरी) को रायसिंह अमीर-उल् उमरा[3] के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। बादशाह ने उसे क्षमा प्रदान की तथा अमीर उल्-उमरा के कहने से उसका पुराना पद तथा जागीरें बहाल रक्खी गईं[4]।

दलपत का खानजहा की शरण में जाना

जहागीर के तीसरे राज्यवर्ष में ता० २२ जमादिउल्अव्वल हि० स० १०१७ (वि० स० १६६५ द्वितीय भाद्रपद वदि १० = ई० स० १६०८ ता० २४ अगस्त) को दलपत ने भी खानजहा[5] की शरण ली, जिसपर उसके अपराध क्षमा कर दिये गये[6]।

---

(१) राणा उदयसिंह का पुत्र तथा राणा अमरसिंह का चाचा। आगे चलकर इसका मनसब तीन हज़ारी हो गया।

(२) तुज़ुक इ जहागीरी (अग्रेज़ी अनुवाद), जि० १, पृ० ८४। मुशी देवीप्रसाद, जहागीरनामा, पृ० ६६ और ७०।

(३) अबदुस्समद का पुत्र शरीफख़ा। जहागीर ने इसे पांच हजारी मनसब प्रदान कर अमीर उल् उमरा का ख़िताब दिया। जहागीर के ७ वें राज्यवर्ष में ता० २७ आबान (हि० स० १०२१ ता० २३ रमज़ान = वि० स० १६६९ मार्गशीर्ष वदि १० = ई० स० १६१२ ता० ८ नवम्बर) रविवार को इसका बुरहानपुर में देहात हुआ।

(४) तुज़ुक इ जहागीरी (अग्रेज़ी अनुवाद), जि० १, पृष्ठ १३०। मुशी देवीप्रसाद, जहागीरनामा, पृष्ठ ६७।

(५) पीरख़ा लोदी, जिसे जहागीर ने अपने राज्यकाल में पांच हज़ारी मनसब तथा ख़ानजहा का खिताब दिया था।

(६) तुज़ुक इ जहागीरी (अग्रेजी अनुवाद), जि० १, पृ० १४८। मुशी देवीप्रसाद, जहागीरनामा, पृ० १०६। अपने हि० स० १०१५ (वि० स० १६६४ = ई० स० १६०७) के फरमान मे जहागीर ने रायसिह को लिखा था कि दलपत के पिता के विरुद्ध चढ़ाई करने का समाचार मिला है। यदि यह ख़बर सच हो तो रायसिंह फ़ौरन उसे सूचित करे ताकि शाही सेना दलपत को दड देने के लिए भेजी जाय।

फारसी तवारीखो आदि से जो कुछ वृत्तान्त रायसिंह का ज्ञात हुआ वह ऊपर दिया जा चुका है । अब हम ख्यातो के आधार पर उसके सम्बन्ध की उन घटनाओ का वर्णन करगे, जिनका उल्लेख ऊपर नहीं आया है । अधिकाश ख्याते बहुत पीछे की लिखी हुई होने से उनमे कुछ बातें जनश्रुति के आधार पर भी लिख दी गई हैं, तो भी उनसे कई नई बातो पर प्रकाश पडता है, इसलिए उनका उल्लेख करना नितान्त आवश्यक है ।

ख्यातें और रायसिंह

ख्यातों से पाया जाता है कि वि० स० १६३३ (ई० स० १५७६) में कुवर मानसिंह (आमेर का कछवाहा) के कहलाने पर रायसिंह बादशाह अकबर की सेवा मे गया । फिर ६ ७ मास दिल्ली रहने पर जब वह बीकानेर लौटा तो उसने नागोर के तोगमखा पर चढाई की, जो उस समय बादशाह का विरोधी हो रहा था । फिर मानसिंह के अकेले पठानो का दमन करने में असमर्थ होने पर बादशाह ने रायसिंह को उसकी सहायतार्थ भेजा, जहा से सफल होकर लौटने पर वि० स० १६३४ (ई० स० १५७७) में उसे राजा का खिताब, चार हजारी मनसब एव ५२ परगने दिये गये[1] । पर उपर्युक्त कथन कल्पनामात्र ही प्रतीत होता है, क्योकि रायसिंह तो वि० स० १६२७ (ई० स० १५७०) मे अपने पिता की विद्यमानता मे ही उसके साथ बादशाह की सेवा मे प्रविष्ट हो गया था । फिर उसके तोगमखा को परास्त करने एव मानसिंह की सहायतार्थ अटक जाने की पुष्टि भी किसी फारसी तवारीख से नही होती ।

आगे चलकर ख्यातो मे लिखा है कि बादशाह ने फिर उसे अहमदाबाद के स्वामी अहमदशाह पर भेजा, जिसे परास्त कर उसने क़ैद कर लिया । इस युद्ध में उसके छोटे भाई रामसिंह ने बडी वीरता दिखलाई[2] । साथ

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २५ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २४ ।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २५ ६ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २४ ।

ही उसकी तरफ के कितने ही वीरो ने वीर गति पाई[1]। सभवत ख्यातकार का आशय अहमदशाह से ऊपर लिखे हुए मुहम्मद हुसेन मिर्जा से हो, परतु वह तो वि० स० १६३० (ई० स० १५७३) मे ही मार डाला गया था।

वि० स० १६५२ (ई० स० १५६५) मे मत्री कर्मचन्द्र अन्य कई मनुष्यो से मिलकर, रायसिंह को गद्दी से उतारने का उद्योग करने लगा। उसका उद्देश्य रायसिंह के पुत्रो मे से दलपत को गद्दी पर बैठाने का था, परन्तु इसकी सूचना रायसिंह को मिल जाने से उसने ठाकुर मालदे को उसे (कर्मचन्द्र) मारने के लिए नियत किया। कर्मचन्द्र को किसी प्रकार इसका पता लग गया, जिससे वह सपरिवार भागकर बादशाह अकबर की सेवा मे चला गया[2]।

दयालदास लिखता है—'वि० स० १६५४ (ई० स० १५६७) में बादशाह ने रायसिंह से अप्रसन्न रहने के कारण[3] भटनेर, कसूर आदि की

(१) दयालदास की ख्यात मे दिये हुए कुछ नाम ये है—

१—साहोर के रतनसिंह के वश के अर्जुनसिंह का पुत्र जसवन्त।
२—श्रृंग का वशज भगवान, भूकरके का स्वामी।
३—नारण का वशज भोपत, एवारे का स्वामी।
४—नारण का वशज जैमल, तिहाणदेसर का स्वामी।
५—नारण भीमराज का पुत्र, राजपुर का स्वामी।
६—नीबा का वशज सादूल, वाणदे का स्वामी।
७—तेजसिंह के वशज मानसिंह का पुत्र रायसल, जैतासर का स्वामी।
८—राजसिंह के वशज सोमसिंह का पुत्र गौरीसिंह, हासासर का स्वामी।
९—मानसिंह का पुत्र माधोसिंह, पारवे का स्वामी।
१०—घड़सी के वशज अमरसिंह का पुत्र भाण, घड़सीसर का स्वामी।
११—बीदावत केशवदास का पुत्र गोयददास, बीदासर का स्वामी।

इनके अतिरिक्त बहुत से दूसरे राठोड़ तथा भाटी सरदार आदि भी काम आये (जि० २, पत्र २६)।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पृ० ३२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० २८।

(३) ख्यात मे दिया हुआ इस नाराज़गी का विस्तृत हाल ऊपर पृ० १८५ टिप्पण ४ में लिखा है।

जागीर दलपतसिंह को दे दी, पर शाही सेवा करने के बजाय वह बीकानेर पर चढ़ गया। इसमे उसे सफलता न हुई और बादशाह ने उसकी जागीर खालसे कर ली। इसपर वह दिल्ली गया, जहा बादशाह ने उसका अपराध क्षमा कर उसे फिर मनसब दिया। कुछ दिनो बाद दलपत ने फिर बीकानेर पर चढ़ाई की। रायसिंह के सरदारो ने उसका सामना किया, पर उनकी पराजय हुई और वहा दलपत का अधिकार हो गया। उन दिनों महाराजा रायसिंह दिल्ली मे था। वहा से रुखसत लेकर वह बीकानेर गया। उसने नागोर से दलपत को बुलाकर गाव आदि दिये, पर कोई परिणाम न निकला और नागोर के पास लड़ाई होने पर महाराजा की पराजय हुई। महाराजा ने एक बार फिर उसे समझाने का प्रयत्न किया, पर इसी बीच दिल्ली से फरमान आने पर उसे उधर जाना पड़ा। अनन्तर दलपतसिंह को पता लगा कि सिरसा पर जोहियो, भाटियो व राजपूतो को मारकर जावदीखा ने अधिकार कर लिया है, जिसपर उसने वहा जाकर जावदीखा को परास्त कर वहा से निकाल दिया। बादशाह को इसकी खबर जावदीखा द्वारा मिलने पर उसने कछवाहे मनोहरसिंह, हाडा रायसाल, हाड़ा परशुराम आदि के साथ एक फौज दलपत के विरुद्ध नागोर भेजी। इसपर दलपत भागकर मारोठ चला गया। जब शाही सेना ने वहा भी उसका पीछा किया तब वह फिर भटनेर चला गया, जहा वह शाही सेना-द्वारा बन्दी कर लिया गया। बाद मे खानजहा की मारफत वह छूटा[1]।' फारसी तवारीखो मे जहागीर के राज्यकाल मे दलपत का रायसिंह के विरुद्ध होना, बाद मे शाही सेना द्वारा उसका परास्त होना एव खानजहा के कहने से माफ किया जाना लिखा है। सभव है ख्यात का उपर्युक्त कथन उसी घटना से सम्बन्ध रखता हो। इस हिसाब से ख्यात का दिया हुआ समय ठीक नहीं हो सकता।

जहागीर ने रायसिंह की नियुक्ति दक्षिण मे कर दी थी, जिससे वह बीकानेर से सूरसिंह को साथ लेकर बुरहानपुर चला गया कुछ दिनो

(१) दयालदास की ख्यात जि० २, पत्र ३२।

रायसिंह का मृत्यु

पश्चात् वह सख्त बीमार पड़ा। उस समय सूरसिंह ने, जो उसके पास ही था, उससे पूछा कि आपकी अभिलाषा क्या है मुझसे कह। रायसिंह ने उत्तर दिया कि मेरी यही अभिलाषा है कि मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करनेवालों का समूल नाश कर दिया जाय। सूरसिंह ने उसी समय प्रतिज्ञा की कि यदि मैं बीकानेर का स्वामी हुआ तो आपकी इस आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करूंगा[1]। अनन्तर वि० सं० १६६८ माघ वदि ३० (ई० स० १६१२ ता० २२ जनवरी) बुधवार को उस (रायसिंह) का बुरहानपुर में देहांत हो गया[2]।

रायसिंह का एक विवाह महाराणा उदयसिंह की पुत्री जसमादे के साथ हुआ था[3]। 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक काव्य' से पाया जाता है कि

विवाह तथा संतति

इस राणी से भूपति और दलपत नामक दो पुत्र हुए[4], जिनमें से भूपसिंह (भूपति) कुंवरपदे में ही मर गया[5]। रायसिंह का दूसरा विवाह वि० सं० १६४९ (ई० स० १५९२) में जैसलमेर के रावल हरराज की पुत्री गंगा से हुआ था, जिससे

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३०।

(२) श्रीविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १६६८ वर्षे महामङ्गलदायिनि माघे मासे कृष्णपक्षे अमावास्यायां बुधे ... श्रीराठोडान्वये महाराजाधिराजमहाराजाश्रीश्रीरायसिंहो दैववशात् धर्मध्यानं कुर्वन् सन् दिवंगतस्तेन सहैता स्त्रियः सत्यो बभूवुः। ... द्रौपदा। सोढी भाणा। भटियाणी अमोलक॥

टॉड ने वि० सं० १६८८ (ई० स० १६३१) में रायसिंह के बाद कर्णसिंह का गद्दी बैठना लिखा है (राजस्थान, जि० २, पृ० ११३५)। उसने दलपतसिंह तथा सूरसिंह के नामों का उल्लेख तक नहीं किया, जो भूल ही है।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र २६।

(४) भूपतिदलपतिनामकसुतौ च जसवंतदेविजौ यस्य ॥३३॥

(५) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३४।

सूरसिंह का जन्म हुआ। उसी वर्ष माघ सुदि १५ को तीसरी राणी निरवाण से किशनसिंह का जन्म हुआ[1]। इनके अतिरिक्त सोढी भाणमती, भटियाणी अमोलक तथा तवर द्रौपदी नाम की तीन राणिया और थीं, जिनके सती होने का उल्लेख रायसिंह की स्मारक छत्री म है।

वैसे तो बीकानेर के राजाओ का मुसलमानो से मेल शेरशाह के समय से ही हो चुका था, परन्तु उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध महाराजा रायसिंह के समय से प्रारम्भ होता है। जिस सम्बन्ध का सूत्रपात राव कल्याणमल ने अकबर के १५ वे राज्यवर्ष में उसकी सेवा मे उपस्थित होकर किया, उसको रायसिंह ने उत्तरोत्तर बढ़ाया। अकबर बडा ही योग्य शासक था और योग्य व्यक्तियों का सम्मान करने मे वह हमेशा तत्पर रहता था। रायसिंह अकबर के वीर तथा कार्य कुशल एव राजनीति निपुण योद्धाओं में से एक था। बहुत थोडे समय मे ही वह उस(अकबर)का प्रीतिपात्र बन गया। अकबर के राज्य का हम उसे एक सुदृढ स्तभ कह सकते हैं। अधिकाश लडाइयों में अकबर की सेना का रायसिंह ने सफलतापूर्वक सचालन किया। गुजरात, काबुल, दक्षिण, हर तरफ उसने अपने वीरोचित गुणो का प्रदर्शन किया। फलस्वरूप कुछ ही दिनो में वह अकबर का चार हजारी मनसबदार हो गया। फिर जहागीर के गद्दी बैठने पर उसका मनसब पाच हजारी हो गया। अकबर के समय हिन्दू नरेशों मे जयपुर के बाद बीकानेरवालों का ही सम्मान बढ़ा चढ़ा था।

रायसिंह का शाही सम्मान

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३१ ३२।

'कर्मचन्द्रवशोत्कीर्तनक काव्य' में भी निर्वाणकुल की स्त्री से कचरा नाम के पुत्र होने का उल्लेख है (श्लोक ३३३)।

किशनसिंह को राजा सूरसिंह ने साखू की जागीर दी। इसके वशज किशन-सिंहोत बीका कहलाये।

टॉड ने रायसिह के केवल एक पुत्र कर्ण का होना लिखा है (राजस्थान, जि० २, पृ० ११३५), परन्तु कर्ण तो रायसिह का पौत्र था।

अकबर और जहांगीर का विश्वासपात्र होने के कारण विशेष अवसरों पर रायसिंह की नियुक्ति हुआ करती थी और समय समय पर उसे बादशाह की ओर से जागीरें भी मिलती रहीं। वि० सं० १६५४ (ई० स० १५९७) से पहले ही जूनागढ़ और सोरठ के जिले रायसिंह को जागीर में मिल गये थे।

पाउलेट ने 'गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' में अकबर के ४३ वें राज्यवर्ष के रबीउल्‌अव्वल (वि० सं० १६५६ = ई० स० १५९९) के उस फरमान का उल्लेख किया है, जिसमें रायसिंह को निम्नलिखित परगने मिलना लिखा है[1]—

बीकानेर	
बीकानेर	३२५०००० दाम
बाटलोद	६४०००० ,,
	३८९०००० ,,
हिसार	
बारथल	९८००३२ ,,
सीदमुख	७२१५२ ,,
	१०५२१८४ ,,
सूबा अजमेर	
द्रोणपुर	७८१३८६ ,,
	७८१३८६ ,,
भटनेर	
भटनेर (सरकार हिसार में)	९३२७४२ ,,

(१) पृ० २५। दयालदास ने भी अपनी ख्यात में नागरी लिपि में कई फरमानों की फारसी इबारत की प्रतिलिपि दी है (जि० २, पत्र २८-३०)।

मारोठ (सरकार मुलतान मे)	२८०००० दाम
	१२१२७४२ ,,
सरकार सूरत (सोरठ[1])	
जूनागढ़ तथा अन्य ४७ परगने	३३२६१६६२ ,,
	३३२६१६६२ ,
कुलजोड	४०२०६२७४ दाम[2]

(अर्थात् अनुमान १००५१५७ रुपये)।

वि० स० १६५७ (ई० स० १६००) मे सरकार नागोर आदि के परगने भी उसकी जागीर मे शामिल कर दिये गये[3]। वि० स० १६६१ (ई० स० १६०४) मे परगना शम्साबाद के दो भाग कर दोनो ही रायसिंह को दे दिये गये। बादशाह अकबर रायसिंह को कितना मानता था यह इसी से स्पष्ट है कि जब एक बार रायसिंह ने शाही सेवा में पत्रादि भेजना बद कर दिया तो शाहजादे सलीम की मुहर का निम्नलिखित आशय का निशान उसके पास पहुचा[4]—

"साम्राज्य के विश्वासपात्र, शाही सम्मानो के योग्य राय रायसिंह ने जिसे शाही कृपाओ तथा उपकारो की प्रतिष्ठा प्राप्त है, अपनी गत

(१) यह सोरठ ही होना चाहिये। फारसी लिपि की अपूर्णता के कारण ही यह भिन्नता आ गई है।

(२) तत्कालीन प्राचीन ताबे का सिक्का, जिसका मूल्य आजकल के रुपये के चालीसवे अश के बराबर था। उस समय राज्यो की आमदनी बहुत कम थी।

(३) अकबर का इलाही सन् ४५ ता० ३ आबान (हि० स० १००६ ता० १७ रबीउस्सानी=वि० स० १६५७ कार्तिक वदि ४=ई० स० १६०० ता० १५ अक्टोबर) का फरमान।

(४) इलाही सन् ४७ ता० ४ आज़र (हि० स० १०११ ता० ११ जमादि उस्सानी=वि० स० १६५६ मार्गशीर्ष सुदि १२=ई० स० १६०२ ता० १६ नवम्बर) का निशान।

सेवाओ को भूलकर, शाह को अपनी स्मृति दिलाना बन्द कर दिया है।

"तथापि (उसकी लापरवाही का कुछ भी विचार न करके) शाह के हृदय में साम्राज्य के सब से बडे शुभचिंतक (रायसिंह) की प्राय हरेक शुभ अवसर पर स्मृति आती रही है।

"अतएव, रायसिंह को उचित है कि गत समय के आचरण के विरुद्ध, वह अब से सदैव पत्र भेजा करे, जिनके उत्तर में उसे शाही कृपा पत्रो से सम्मानित किया जायगा।"

यही नही बादशाह अकबर के रुग्ण होने पर वि० स० १६६२ (ई० स० १६०५) मे शाहजादे सलीम की मुहर का, नीचे लिखे आशय का एक और निशान उसे प्राप्त हुआ[1]—

"साम्राज्य के आधार स्तम्भ, शाही कृपाओ के योग्य तथा बहुत से उपहारो से सम्मानित रायसिंह को सूचित किया जाता है कि शाहशाह गत कुछ दिनो से बहुत कमज़ोर हो गये हैं और उनकी कमजोरी अब तक वैसी ही बनी हुई है।

"अतएव यह आवश्यक है कि साम्राज्य का आधार (रायसिंह) शाही दरबार मे शीघ्रातिशीघ्र रात और दिन अधिक से अधिक चलकर पहुंच जावे। किसी भी कारण से उसे रुकना नही चाहिये।"

बाद मे जब शाहजादा सलीम जहागीर के नाम से गद्दी पर बैठा और शाहजादे खुसरो के पीछे गया तो उसने बेगमो के साथ आने के लिए रायसिंह को आगरे मे रख दिया था। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक विषय में रायसिंह का इन बादशाहो के दिल मे बडा सम्मान और विश्वास था। साथ ही रायसिंह के पुत्रो तथा रिश्तेदारों को भी शाही दरबार मे सम्मानित स्थान प्राप्त था।

महाराजा रायसिंह के नाम के तेरह फरमान तथा निशान हमारे देखने मे आये हैं।

---

(१) इलाही सन् ५० ता० २६ मेहर (हि० स० १०१४ ता० ७ जमादि उस्सानी = वि० स० १६६२ कार्तिक सुदि १० = ई० स० १६०५ ता० ११ अक्टोबर) का निशान।

ख्यातों मे रायसिंह की दानशीलता का बहुत उल्लेख मिलता है। उदयपुर और जैसलमेर मे अपने विवाह के समय उसने चारणो आदि को बहुत कुछ दान दिया था। इसके अतिरिक्त उसने कई अवसरों पर अपने आश्रित कवियों और ख्यातकारो को करोड और सवा करोड़ पसाव दिये थे[1]। मुशी देवीप्रसाद ने लिखा है—'यदि चारणो की बातें मानें और बीकानेर के इतिहास को सत्य जाने तो यह (रायसिंह) राजपूताने के कर्ण ही थे[2]।' उसके समय मे कवियो और विद्वानो का बड़ा सम्मान होता था और वह स्वय भी भाषा और सस्कृत दोनों में उच्च कोटि की कविता कर लेता था। उसके आश्रय मे कई अति उत्तम ग्रन्थों का निर्माण हुआ[3]। उसने स्वय भी 'रायसिंह

रायसिंह की दानशीलता और विद्यानुराग

(१) ऐसा प्रसिद्ध है कि एक बार रायसिह ने शकर बारहट को करोड़ पसाव देने का हुक्म दिया। दीवान ने रुपये ख़ज़ाने से निकलवा तो दिये, परन्तु देखकर दिलवाये जाने की प्रार्थना की। रायसिह उसके मन्तव्य को समझ गया और उसने रुपये देखकर कहा कि बस करोड़ रुपये यही हैं। मैं तो समझता था कि बहुत होते है। सवा करोड़ दिये जावे।

(२) राजरसनामृत, पृ० ३६।

(३) महाराजा रायसिह के समय बीकानेर में रहकर जैन साधु ज्ञानविमल ने कार्तिकादि वि० स० १६५४ आषाढ सुदि २ (चैत्रादि वि० स० १६५५ = ई० स० १५९८ ता० २५ जून) रविवार को महेश्वर के 'शब्दभेद' की टीका समाप्त की थी—

श्रीमद्विक्रमनगरे राजच्छ्रीराजसिहनृपराज्ये ।
सल्लोकचक्रवाकप्रमोदसूर्योदये सम्यक् ॥ २४ ॥
चतुराननवदनेन्द्रियरसवसुधासमिते लसद्वर्षे ।
श्रीमद्विक्रमनृपतौ नि:क्रान्ते(१६५४)तीवकृतहर्षे ॥२५॥
शुभोपयोगे शुभयोगयुक्ते चरे द्वितीयादिवसेतिशुद्धे ।
आषाढमासस्य विशुद्धपक्षे पुष्यर्क्षसयुक्तगभस्तिवारे ॥२६॥
सदृब्धा वृत्तिरिय विद्वज्जनवृदवाच्यमाना वै ।
तावन्नदतु वसुधा चद्रादित्यादयो यावत् ॥२७॥

चतुर्भि कुलकम् ॥

महोत्सव[1]' और 'ज्योतिष रत्नाकर' (रत्नमाला)[2] नाम के दो अमूल्य ग्रन्थ लिखे। इनमे से पहला ग्रन्थ बहुत बडा और वैद्यक का तथा दूसरा ज्योतिष का है, जो रायसिंह की तद्विषयक योग्यता प्रकट करते हैं।

एक बार दक्षिण मे नियुक्त होने पर उस निर्जन स्थान मे एक 'फोग' का बूटा देखकर उसने निम्नाकित भावमय दोहा कहा था—

तू सैंदेशी रूंखडा, म्हे परदेशी लोग।
म्हॉने अकबर तेडिया, तू क्यों आयो 'फोग' ॥

यह पुस्तक जैसलमेर के जैन पुस्तक भडार मे सुरक्षित है।

किसी अज्ञात कवि ने महाराजा रायसिंह की प्रशसा मे वेलिया गीतों में 'राजा रायसिंह री वेल' नामक पुस्तक की रचना की थी। इसमे कुल ४३ गीत है, जिनमें उसकी गुजरात की लड़ाइयों आदि का उल्लेख है।

(टेसिटोरी, ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैन्यु-स्क्रिप्ट्स, सेक्शन २, पार्ट १, पृ० ५६, बीकानेर)।

(१) इति श्रीराठोडान्वयकमलकाननविकाशनदिनकरमहाराजाधिराजमहाराजाश्रीरायसिहविरचिते श्रीरायसिहोत्सवे वैद्यकसारसग्रहापरनामनि ग्रंथे मिश्रवर्गकथननामचतु षष्टितमो विश्राम ॥ ६४ ॥

(मूल ग्रन्थ का अन्तिम भाग)।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में राव सीहा (सिंह) से लगाकर रायसिंह तक की सस्कृत श्लोकों मे वशावली देकर रायसिह का भी कुछ वृत्तान्त दिया है। यह पुस्तक बीकानेर दुर्ग के राजकीय पुस्तक भडार मे सुरक्षित है।

(२) मुशी देवीप्रसाद ने इस पुस्तक का नाम 'ज्योतिषरत्नाकर' लिखा है, जो ठीक नही है। मूल पुस्तक के देखने से पाया जाता है कि श्रीपति-रचित 'ज्योतिष रत्नमाला' की उस(महाराजा रायसिह)ने 'बालबोधिनी' नाम की भाषाटीका की थी। वि० स० १६४१ पौष वदि ११ (इ० स० १५८४ ता० १७ दिसम्बर) गुरुवार की उक्त पुस्तक की हस्तलिखित प्रति के अन्त में लिखा है—

इतिश्री श्रीपतिविरचिताया ज्योतिषरत्नमालाया भाषाटीकाया परमकारुणिकमहाराजाधिराजमहारायश्रीरायसिहविरचिताया बालावबोधिन्या देवप्रतिष्ठा प्रकरण बिंशतितम ॥ २० ॥

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, मुगलो के साथ बीकानेरवालो का सम्बन्ध राव कल्याणमल के समय स्थापित हुआ था, परन्तु वह स्वय शाही दरबार मे नही गया। उसका पुत्र रायसिंह उसकी विद्यमानता मे ही शाही सेवा मे प्रविष्ट हुआ और थोडे समय मे ही अपने वीरोचित गुणों के कारण वह अकबर का प्रीतिपात्र और विश्वासभाजन बन गया।

महाराजा रायसिह का व्यक्तित्व

बादशाह की तरफ की अनेको चढाइयो मे वह भी साथ था। गुजरात, काबुल, कन्दहार आदि की चढाइयो मे उसने अद्भुत शौर्य का परिचय दिया। इसी तरह इब्राहीम हुसेन मिर्जा देवडा सुरताण, बलूचियो आदि के साथ की लडाइयों मे भी उसने बहादुरी के साथ भाग लिया। बादशाह उसका कितना अधिक विश्वास करता था यह इसी से स्पष्ट है कि चद्रसेन से जोधपुर खालसा कर लेने पर उसने उस(रायसिंह)को ही वहा का राज्य दे दिया। फिर बादशाह के बीमार पडने पर शाहजादे सलीम ने उसे ही शीघ्रातिशीघ्र दरबार मे आने के लिए लिखा था, क्योकि वह उसके अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति का वैसी सकट की दशा मे विश्वास न कर सकता था। अधिकतर शाही सेवा मे सलग्न रहने पर भी वह अपने राज्य की तरफ से कभी उदासीन न रहा और उधर के उपद्रवी सरदारों पर उसने कडी नजर रक्खी।

शाही दरबार में उस समय जयपुर को छोडकर बीकानेर से ऊँचा सम्मान अन्य किसी राज्य का न था। अकबर के राज्यकाल में तो रायसिंह का मनसब चार हजारी ही रहा, परन्तु सलीम के सिंहासनारूढ़ होने पर उसका मनसब बढ़कर पाच हजारी हो गया। उसके वीरता आदि गुणों पर विमुग्ध होकर अकबर ने उसे कई बार जागीरें आदि दी थी, जिनमें से जूनागढ, नागोर, शम्साबाद आदि का उल्लेख किया जा चुका है।

वह काव्य और साहित्य से भी बडा अनुराग रखता था। स्वय कवि और विद्याव्यसनी होने के साथ ही वह काव्यानुरागियों का बडा

आदर करता और समय समय पर उन्हे सहायता देकर प्रोत्साहन देता था। उसके आश्रय मे रहकर कई महत्वपूर्ण ग्रन्थो और टीकाओ का निर्माण हुआ। उसने स्वय 'रायसिंहमहोत्सव' और 'ज्योतिषरत्नमाला' की भाषा टीका की रचना की। बीकानेर दुर्ग के भीतर की उसकी खुदवाई हुई बृहत् प्रशस्ति इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्व की है। वह बडा दानशील भी था। ख्यातों आदि मे विवाह तथा अन्य अवसरो पर उसके चारणों आदि को सवा करोड़ पसाव तक देने का उल्लेख है।

उसको भवन निर्माण का भी बडा शौक था। बीकानेर का सुदृढ़ और विशाल किला उसकी आज्ञा से उसके मत्री कर्मचद ने बनवाया था। ख्यातो से पाया जाता है कि उसके बनवाने मे पाच वर्ष का दीर्घ समय लगा था। रायसिंह स्वभाव का बडा नम्र, उदार और दयालु था। प्रजा के कष्टों की ओर भी उसका ध्यान सदैव बना रहता था। वि० स० १६३५ (ई० स० १५७८) के सर्वदेशव्यापी दुर्भिक्ष मे राज्य की तरफ से तेरह महीने तक अन्नसत्र खुला रहा और क्षुधा एव रोगग्रस्त प्रजाजनों के कष्ट दूर करने तथा उन्हे आराम पहुचाने का हर एक प्रयत्न किया गया[1]। हिन्दू धर्म में उसकी आस्था अधिक होने पर भी वह इतर धर्मों का समादर करता था। उसका मत्री कर्मचद्र जैन धर्मावलम्बी था, जिसके उद्योग से उस (रायसिंह) के समय में अनेकों जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार

---

(१) आत्रयोदशमास य पचत्रिंशेऽथ वत्सरे।
पवित्र सत्रमारेभे दुर्भिक्षे सार्वदेशिके ॥ १९८ ॥

रोगग्रस्ताबलक्षीणजनाना य कृपानिधिः।
पथ्यौषधप्रदान च निर्ममस्तत्र निर्ममौ ॥ १९९ ॥

अतिसारामयग्रस्तान् त्रस्तान् क्रूरकरम्भकै।
प्रीणयामास पुण्यात्मा सर्वशालासु मानवान् ॥ २०० ॥

(कर्मचन्द्रवशोत्कीर्तनक काव्यम्)।

हुआ[1]। प्रसिद्ध है कि जब तरसूखा (तुरसमखा) ने सिरोही पर आक्रमण कर उसे लूटा, उस समय वहा के जन मदिरो से सर्वधातु की बनी हुई एक हजार जैन मूर्तिया वह अपने साथ ले गया। उनको गलवाकर उनमें से वह स्वर्ण निकालना चाहता था। यह बात ज्ञात होते ही महाराजा रायसिंह ने बादशाह से निवेदन कर वे सब मूर्तिया हस्तगत कर ली और अपने मत्री कर्मचद्र के पास पहुचा दी, जिसने उनको बीकानेर के जैन मदिर में रखवा दिया[2]। 'कर्मचन्द्रवशोत्कीर्तनक काव्य' म उसे 'राजेन्द्र कहा है और उसके सम्बन्ध में लिखा है कि वह विजित शत्रुओ के साथ भी बडे सम्मान का व्यवहार करता था[3]।

महाराजा दलपतसिंह

ख्यातों से रायसिंह के ज्येष्ठ कुवर दलपतसिंह का जन्म वि० स० १६२१ फाल्गुन वदि ८ (ई० स० १५६५ ता० २४ जनवरी) को होना पाया जाता है[4]। अपने पिता की विद्यमानता में उसने जो जो कार्य किये उनका वर्णन रायसिंह के साथ

जन्म

(१) शत्रुजये मध्वपद्मे जीर्णोद्धार चकार य।
येनैतत्सदृश पुण्यकारण नास्ति किंचन ॥ ३१३ ॥
(कर्मचन्द्रवशोत्कीतनक काव्यम्)।

(२) ये मूर्तियां अब तक बीकानेर के एक जैन मदिर के तहखाने में रक्खी हुई हैं और जब कभी कोई प्रसिद्ध जैन आचार्य आता है, तब उनका पूजन अर्चन होता है। पूजन में अधिक व्यय होने के कारण ही व पीछी तहखाने में रख दी जाती हैं।

(३) चतुःपर्वी समग्रोपि कारुलोको यदाज्ञया।
पालयामास राजेन्द्रराजसिहस्य मडले ॥ ३१८ ॥
या बदी निजसैन्ये समागता वैरिविषयसभूता।
वस्त्रान्नदानपूर्वं सा नीता येन निजगेहे ॥ ३२५ ॥
(कर्मचद्रवशोत्कीर्तनक काव्यम्)।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३०।

यथास्थान कर दिया गया है।

दलपतसिंह के ज्येष्ठ होने पर भी अपनी भटियाणी राणी गंगा पर विशेष प्रेम होने के कारण रायसिंह की इच्छा थी कि उसके बाद उसका पुत्र सूरसिंह बीकानेर का स्वामी हो। अतएव उसने उस (सूरसिंह) को ही अपना उत्तराधिकारी नियत किया था। रायसिंह का दक्षिण में देहांत हो जाने पर दलपतसिंह बीकानेर की गद्दी पर बैठा।

जहांगीर का दलपतसिंह को टीका देना

जहांगीर के सातवें राज्यवर्ष[1] की ता० १६ फ़रवरदीन (हि० स० १०२१ ता० ४ सफ़र=वि० सं० १६६६ चैत्र सुदि ६=ई० स० १६१२ ता० २८ मार्च) को वह बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ, जिसने उसे राय का खिताब देकर खिलअ़त प्रदान की। सूरसिंह भी इस अवसर पर दरबार में उपस्थित था। उसने उद्दंड भाव से कहा कि मेरे पिता ने मुझे टीका दिया है और अपना उत्तराधिकारी बनाया है। जहांगीर इस वाक्य को सुनकर बड़ा रुष्ट हुआ और उसने कहा कि यदि तुझे तेरे पिता ने टीका दिया है तो मैं दलपतसिंह को टीका देता हूं। इसपर उसने अपने हाथ से दलपतसिंह के टीका लगाकर उसका पैतृक राज्य उसे सौंप दिया[2]।

कुछ दिनों बाद जब ठट्ठा में एक अफ़सर भेजने की आवश्यकता हुई, तो बादशाह ने मिर्ज़ा रुस्तम[3] के मनसब में वृद्धि कर ता० २ शहरेवर

---

(१) वि० सं० १६६८ चैत्र वदि ४ से १६६९ चैत्र वदि १४ (ई० स० १६१२ ता० १० मार्च से ई० स० १६१३ ता० ९ मार्च) तक।

(२) तुज़ुक इ जहांगीरी— राजर्स-कृत अनुवाद, जि० १, पृ० २१७-८। उमरा ए हनूद, पृ० १९४। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ३६१-२। मुंशी देवीप्रसाद, जहांगीरनामा, पृ० १५२। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८८।

मुहणोत नैणसी की ख्यात में दलपतसिंह का वि० सं० १६६८ में पाट बैठना लिखा है (जि० २, पृ० १९९)।

(३) यह फ़ारस के बादशाह शाह इस्माइल के पौत्र मिर्ज़ा सुलतान हुसेन का पुत्र था, जो हि० स० १००१ (वि० सं० १६४९=ई० स० १५९२) में बादशाह अकबर की सेवा में प्रविष्ट हुआ। इसकी साम्राज्य के अमीरों में गणना होती थी और बड़े बड़े

दलपतसिंह का ठट्ठा भेजा जाना

(हि० स० १०२१ ता० २६ जमादिउस्सानी = वि० स० १६६६ भाद्रपद वदि १३ = ई० स० १६१२ ता० १४ अगस्त) को उसे वहा का हाकिम बनाकर भेजा। इस अवसर पर दलपतसिंह का मनसब भी बढ़ाकर डेढ़ हजारी से दो हजारी[1] कर दिया गया तथा बादशाह ने उसे भी मिर्जा रुस्तम का सहायक बनाकर ठट्ठा भेजा[2]। 'उमराए हनूद' मे लिखा है—'इस अवसर पर दलपतसिंह ठट्ठा जाने के बजाय सीधा बीकानेर चला गया[3]।' इससे बादशाह की उसपर फिर अप्रसन्नता हो गई और वह उसके विरुद्ध हो गया।

दलपतसिंह का चूडेहर में गढ बनवाने का असफल प्रयत्न

आसपास के भाटियो पर अधिक नियन्त्रण रखने के लिए दलपतसिंह ने चूडेहर (वर्त्तमान अनूपगढ के निकट) में एक गढ़ बनवाना आरम्भ किया, परन्तु इस कार्य का भाटी बराबर विरोध करते रहे, जिससे वह कृतकार्य न हो सका। वि० स० १६६६ मार्गशीर्ष वदि ३ (ई० स० १६१२ ता० १ नवंबर) को भाटियों ने वहा का थाना भी उठवा दिया[4]।

कार्य इसे सौंपे जाते थे। हि० स० १०५१ (वि० स० १६६८=इ० स० १६४१) मे आगरे मे इसका देहात हुआ।

(१) अकबर के समय मे इसका मनसब केवल पाच सौ था। सभव है बाद मे बढकर डेढ़ हज़ारी हो गया हो, पर ऐसा कब हुआ इसका पता नही चलता।

(२) मुशी देवीप्रसाद, जहागीरनामा पृ० १५६। उमराए हनूद, पृ० १६४। ब्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ३६२।

'तुज़ुक इ जहागीरी' (राजर्स और बेवरिज कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० २२६) मे 'ठट्ठा' के स्थान मे 'पटना' लिखा है। मुशी देवीप्रसाद के मतानुसार 'पटना' पाठ अशुद्ध है, शुद्ध पाठ 'ठट्ठा' होना चाहिये।

(३) उमराए हनूद, पृ० १६४।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३१।

रायसिंह ने सूरसिंह को ८४ गांवों के साथ फलोधी दी थी, जहा वह रहता था। दलपतसिह ने अपने मुसाहब पुरोहित मानमहेश के कहने मे आकर फलोधी के अतिरिक्त अन्य सब गाव खालसा कर लिये। अन्य लोगो ने इस सम्बन्ध मे उसे बहुत समझाया, परन्तु उसके दिल में उनकी बात न जमी। तब सूरसिंह एक बार पुरोहित मानमहेश से मिला, परतु वहा से भी जब उसे निराशा हुई तब वह दो मास बीकानेर ठहरकर फिर फलोधी चला गया, जहा से उसने पुरोहित लक्ष्मीदास को बादशाह की सेवा मे भेजा[1]।

दलपतसिंह का सूरसिंह की जागीर जब्त करना

जिन दिनों सूरसिंह बीकानेर मे था उन दिनों उसकी माता ने सोरम (सोरो) की यात्रा करने की इच्छा प्रकट की थी, अतएव चार मास फलोधी मे रहने के उपरान्त वह फिर बीकानेर गया और वहा से अपनी माता को साथ ले उसने सोरम तीर्थ की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे वह सागानेर में ठहरा जहा कछवाहे राजा मानसिह से उसका मिलना हुआ। चार दिन बाद मानसिंह तो आमेर चला गया और सूरसिंह अपनी माता सहित सीधा सोरो पहुचा। उसी स्थान पर उसके पास बादशाह का फरमान पहुचा, जिसके अनुसार वह दिल्ली गया जहा बादशाह ने बीकानेर का राज्य उसे दे दिया तथा दलपतसिंह को गद्दी से हटाने के लिए नवाब जावद्दीनखा (जियाउद्दीनखा) एक विशाल सैन्य के साथ उसकी सहायता को भेजा गया[2]।

जहागीर का सूरसिंह को बीकानेर का मनसब देना

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३४ ५। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३१।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३५। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३१।

'तुज़ुक इ जहांगीरी' मे इसका उल्लेख नहीं है।

सूरसिंह के शाही फौज के साथ आने पर दलपतसिंह भी अपनी सेना सहित छापर में आया। दोनो दलों मे युद्ध होने पर जावदीन(जियाउद्दीन)खा भाग गया और दलपतसिंह की विजय हुई। तब जावदीन खा ने दिल्ली से और सहायता मगवाई। इस अवसर पर सूरसिंह ने बड़े साहस और बुद्धिमत्ता से कार्य लिया। उसने दलपतसिंह के प्राय सभी सरदारो को, जो उसके दुर्व्यवहार के कारण पहले से ही असन्तुष्ट थे, अपनी तरफ मिला लिया। केवल ठाकुरसी जीवणदासोत, जो उस समय दलपतसिंह की ओर से भटनेर का शासक था, उसका पक्षपाती बना रहा। दूसरे दिन लड़ाई छिड़ने पर दलपतसिंह हाथी पर चढकर युद्धक्षेत्र में आया। उस समय उसके पीछे खवासी मे चूरू का ठाकुर भीमसिंह बलभद्रोत बैठा था। सेनाओ की मुठभेड़ होते ही विरोधी सरदारों ने इशारा किया, जिसपर भीमसिंह ने पीछे से दलपतसिंह के हाथ पकड लिये। फिर वह (दलपतसिंह) कैद कर हिसार भेजा गया, जहा से अजमेर पहुचाया जाकर बन्दी कर दिया गया[1]।

दलपतसिंह का हारना और कैद होना

'तुजुक इ जहागीरी' मे लिखा है कि आठ वे राज्यवर्ष[2] मे हि० स० १०२२ ता० ११ रज्जब (वि० स० १६७० भाद्रपद सुदि १३=ई० स० १६१३ ता० १८ अगस्त) को बादशाह के पास सूरसिंह द्वारा, जिसे उसने विद्रोही दलपतसिंह को हटाने के लिए नियुक्त किया था, उस(दलपतसिंह)के हराये जाने का समाचार पहुचा। फिर दलपतसिंह ने हिसार की सरकार में उपद्रव करना शुरू किया, जिससे खोस्त के हाशिम एव अन्य जागीरदारो ने उसे गिरफ्तार करके बादशाह की सेवा में भेज दिया। दलपतसिंह के साम्राज्य-

जहागीर द्वारा दलपतसिंह का मरवाया जाना

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३९-६। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८६ ६०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३१।

(२) वि० स० १६६९ चैत्र वदि अमावास्या से वि० स० १६७१ चैत्र सुदि १० (ई० स० १६१३ ता० ११ मार्च से ई० स० १६१४ ता० १० मार्च) तक।

विरोधी आचरण से बादशाह पहले से ही उसपर कुपित था, अतएव उसे मृत्यु दंड दे दिया गया। सूरसिंह की सेवाओं के बदले में उसका मनसब पहले से पांच सौ अधिक कर दिया गया[1]।

ख्यातें और दलपतसिंह की मृत्यु

दलपतसिंह की मृत्यु के विषय में ख्यातों में यह लिखा है कि हिसार से अजमेर भेजे जाने पर दलपतसिंह वहां पर ही (आनासागर के बंद के नीचे के जहांगीरी महलों में) सौ सैनिकों के निरीक्षण में कैद कर दिया गया। उन्हीं दिनों अपनी ससुराल को जाता हुआ चांपावत हाथीसिंह (गोपालदासोत) दलपतसिंह के बन्दीगृह के निकट ठहरा। दलपतसिंह ने उससे मिलने की अभिलाषा प्रकट की, परन्तु चोबदारों ने आज्ञा न दी। तब हाथीसिंह ने कहा कि मैं ससुराल से लौटते समय अवश्य मिलूंगा। इसपर दलपतसिंह ने कहा कि मैं उस समय तक जीवित रहूंगा इसमें मुझे सन्देह है। तब तो हाथीसिंह ने अपने राठोड़ों से सलाह की कि जीवन सार्थक करने का ऐसा अवसर फिर न जाने कब आवे। हम भी राठोड़ हैं और यह भी राठोड़, अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम इसके लिए प्राण दे दें। ऐसा विचार कर वि० सं० १६७० फाल्गुन वदि ११ (ई० स० १६१४ ता० २५ जनवरी) को केसरिया बाना पहनकर वे सब दलपतसिंह के रक्षकों पर टूट पड़े और उन्हें मारकर उसे निकाल अपने साथ ले चले। जब अजमेर के सूबेदार को इस घटना की खबर मिली तो उसने चार हजार फौज के साथ उनको घेर लिया। फलस्वरूप दलपतसिंह, हाथीसिंह[2]

(१) जि० १, पृ० २५८६। उमराए हनूद (पृ० १६४) में भी ऐसा ही लिखा है।

अपने ८ वें राज्यवर्ष ता० २ बहमन (हि० स० १०२२ ता० १० जिलहिज = वि० सं० १६७० माघ सुदि ११ = ई० स० १६१४ ता० ११ जनवरी) के फ़रमान में जहांगीर ने दलपत की पराजय और सूरसिंह की वीरता का उल्लेख किया है।

(२) इस ख़ैरख्वाही के बदले में हरसोलाव (मारवाड़) के ठाकुर बीकानेर में सूरजपोल तक घोड़े पर सवार होकर जा सकते हैं। दूसरे सरदार, जिनको सवारी पर बैठकर भीतर जाने की इज़्ज़त नहीं है, किले के बाहर ही घोड़े से उतर जाते हैं।

आदि सब राठोड़ मारे गये। दलपतसिंह के मारे जाने की सूचना भटनेर पहुचने पर उसकी छ राणिया सती हो गई[1]।

महाराजा सूरसिंह

महाराजा रायसिंह के दूसरे कुवर सूरसिंह का जन्म वि० स० १६५१ पौष वदि १२ (ई० स० १५९४ ता० २८ नवबर) को होना ख्यातो से पाया जाता है[2]। बादशाह (जहागीर) की आज्ञा से अपने बडे भाई दलपतसिंह को परास्त कर वि० स० १६७० (ई० स० १६१३) मे वह बीकानेर की गद्दी पर बैठा[3]।

जन्म और गद्दीनशीनी

अनन्तर सूरसिंह दिल्ली गया, जहा बादशाह ने उसके मनसब में वृद्धि की। कर्मचन्द्र के वशज लक्ष्मीचन्द्र, भागचन्द्र (सोभागचन्द्र) आदि उस समय दिल्ली मे ही थे, उनकी बहुत खातिर कर वहा से लौटते समय सूरसिंह उन्हे अपने सग बीकानेर ले गया और दीवान के पद पर नियुक्त

कर्मचन्द्र के पुत्रों को मरवाना

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३५। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८० १। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३१ २।

मुहणोत नैणसी की ख्यात मे भी भटनेर समाचार पहुचने पर दलपतसिंह की ६ राणियो का सती होना लिखा है (जि० २, पृ० १९९)।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३२।

चडू के यहां से मिले हुए प्राचीन जन्मपत्रियो के सग्रह मे भी यही समय दिया है।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३२।

मुहणोत नैणसी की ख्यात मे भी सूरसिंह का वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) मे बीकानेर का स्वामी होना लिखा है (जि० २, पृ० १९९)।

'तुज़ुक इ जहागीरी' से भी पाया जाता है कि वि० स० १६७० मे सूरसिह ने दलपतसिंह को परास्त किया, जिसकी सूचना बादशाह के पास हि० स० १०२२

कर दिया। मरते समय कर्मचन्द्र ने अपने पुत्रों का सूरसिंह की तरफ से सचेत कर दिया था, परन्तु वे उसकी चिकनी चुपडी बातो में फस गये। सूरसिंह को अपने पिता के अन्त समय की हुई अपनी प्रतिज्ञा याद थी। अतएव दो मास बीतने पर चार हजार सैनिक भेजकर उसने उनके मकानों को घेर लिया। लक्ष्मीचन्द तथा भागचद के पास उस समय ५०० राजपूत थे। जब उन्होने देखा कि अब बचकर निकल जाना कठिन है, तो अपने परिवार की स्त्रियों को मारकर तथा अपनी सम्पत्ति नष्टकर वे अपने ५०० राजपूतों सहित बीकानेर के सैनिकों पर टूट पड़े और वीरता-पूर्वक लड़ते हुए मारे गये। केवल उनके वश का एक बालक, जो उन दिनो अपनी ननिहाल (उदयपुर) में था, बच गया, जिसके वंशज[1] उदयपुर मे अब तक विद्यमान हैं[2]।

पिता के साथ विश्वासघात करनेवालों को मरवाना

फिर सूरसिंह ने उसी वर्ष पुरोहित मान महेश[3] और बारहट चौथ[4] की जागीरे जब्त कर ली। इसका विरोध करने के लिए वे बीकानेर गये, परन्तु जब कुछ सुनवाई नहीं हुई, तो दोनो चिता लगाकर जल मरे। उसी दिन से तोलियासर के पुरोहितो से 'पुरोहिताई' तथा बारहटों से 'पोल-पात' और उनके 'नेग' का हक़ जाता रहा एव उनके स्थान में डाडसर के चारण को वह हक मिलने लगा। पिता के विरुद्ध विद्रोह करनेवालों मे से सारण भरथा (जाट) बच रहा था उसे भी उसने द्रोणपुर के

ता० ११ रजब (वि० स० १६७० भाद्रपद सुदि १२ = ई० स० १६१३ ता० १७ अगस्त) को पहुची, तब सूरसिंह का मनसब बढ़ाया गया (जि० १, पृ० २४८ ६)।

(१) इनके विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास,' जि० २, पृ० १३११-२३।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३६। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८१-२।

(३ ४) ये दोनों भी रायसिंह के विरुद्ध किये हुए षड्यन्त्र में कर्मचन्द्र के सहायक थे।

गोपालदास सांगावत[1] के हाथ से मरवा डाला[2]। इस प्रकार अपने पिता के विरोधियों को उपयुक्त दंड दे, सूरसिंह ने उसकी मृत्यु शैय्या के निकट की हुई अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

दयालदास लिखता है कि जब शाहजादा खुर्रम[3] बागी होकर दिल्ली से निकल गया और दक्षिण के सूबों में उसके उपद्रव करने का समाचार

(१) ठाकुर बहादुरसिंह की लिखी हुई बीदावतों की ख्यात में भी लिखा है कि सारण भरथा एवं ईसर को मारने के लिए गोपालदास की नियुक्ति हुई थी। गोपालदास बीदा के वंश के संसारचन्द के पुत्र सांगा का तीसरा पुत्र था। बाद में यही द्रोणपुर का स्वामी हुआ (भाग १, पृ० १३६)।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३६। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४६२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३३।

(३) शाहज़ादा खुर्रम जहांगीर का बड़ा ही प्रिय पुत्र था, जिसकी उसने बहुत प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। उसको वह अपना उत्तराधिकारी भी बनाना चाहता था, परन्तु बादशाह अपने राज्य के पिछले वर्षों में अपनी प्यारी बेगम नूरजहां के हाथ की कठपुतली सा हो गया था, जिससे वह जो चाहती वही उससे करा लेती थी। नूरजहां ने अपने प्रथम पति शेर अफ़गन से उत्पन्न पुत्री का विवाह शाहज़ादे शहरयार से किया था, जिसको वह जहांगीर के पीछे बादशाह बनाना चाहती थी। इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त करने के लिए वह खुर्रम के विरुद्ध बादशाह के कान भरने लगी और उसने उसको हिन्दुस्तान से दूर भिजवाना चाहा। उन्हीं दिनों ईरान के शाह अब्बास ने कन्धार का क़िला अपने अधीन कर लिया था, जिसको पीछा विजय करने के लिए नूरजहां ने खुर्रम को भेजने की सम्मति बादशाह को दी। तदनुसार बादशाह ने उसको बुरहानपुर से कंधार जाने की आज्ञा दी। शाहज़ादा भी नूरजहां के प्रपंच को जान गया था, जिससे उसने वहां जाना न चाहा। वह समझ गया था कि यदि हिन्दुस्तान से बाहर जाना पड़ा और हिन्दुस्तान का कोई भी प्रदेश मेरे हाथ में न रहा, तो मेरा प्रभाव इस देश में कुछ भी न रहेगा। वह बादशाह की आज्ञा न मानकर वि० सं० १६७६ (ई० स० १६२२) में उसका विद्रोही बन गया और दक्षिण से मांडू जाकर सैन्य सहित आगरे की ओर बढ़ा, जहां के अमीरों की सम्पत्ति छीनता हुआ वह मथुरा की तरफ़ गया। फिर आगे बढ़ने पर वह बिलोचपुर की लड़ाई में शाही सेना से हारा और भागते समय आंबेर के पास पहुंचकर उसने उसे लूटा। फिर वहां से वह उदयपुर में महाराणा कर्णसिंह के पास गया, क्योंकि उन दोनों में परस्पर स्नेह था।

सूरसिंह का खुरम पर भेजा जाना

बादशाह के पास पहुचा तो उस(बादशाह)ने सूरसिंह को फौज के साथ उसपर भेजा । खुर्रम ने बडा उपद्रव मचा रक्खा था, अतएव उससे कई लड़ाइया कर सूरसिंह ने वहा बादशाह का सिक्का जमाया[1] ।

'मश्रासिरुल् उमरा' (हिन्दी) से पाया जाता है कि बादशाह जहा-गीर के समय सूरसिंह का मनसब तीन हजार जात और दो हजार सवार तक पहुच गया[2] । हि० स० १०३७ ता० २८ सफ़र (वि० स० १६८४ कार्तिक वदि अमावास्या = ई० स० १६२७ ता० २८ अक्टोबर) को जहागीर का काश्मीर से लाहौर

सूरसिंह के मनसब में वृद्धि

कुछ समय तक वहा रहकर मेवाड़ के सेनाध्यक्ष कुवर भीमसिंह के साथ वह बड़ी सादडी में होता हुआ माडू पहुचा । फिर माडू से नमदा को पारकर असीरगढ़ और बुरहानपुर होता हुआ गोल्कुडे के मार्ग से उड़ीसा और बगाल मे पहुचा । वहा ढाका और अकबरनगर आदि की लड़ाइयों में विजय पाकर उसने बगाल पर अधिकार कर लिया । इसके बाद उसने बिहार, अवध और इलाहाबाद को जीतने का विचार कर भीमसिंह को पटना पर भेजा, जहा का शासक परवेज़ की तरफ से दीवान मुख़-लिसख़ा था । भीमसिंह के वहा पहुचते ही वह बिना लड़े ही पटना छोड़कर इलाहाबाद की तरफ़ भाग गया और किले पर भीमसिंह का अधिकार हो गया । वहा से खुर्रम ने उसको अब्दुल्लाख़ा के साथ इलाहाबाद की ओर भेजा और स्वय भी उसके पीछे गया । उसने टौंस नदी के किनारे कम्पत के पास डेरा डाला । उधर से शाहज़ादे परवेज़ की अध्यक्षता मे शाही सेना लडने को आई । यहा लड़ाइ हुई, जिसमे भीमसिंह के वीरतापूर्वक प्राणोत्सर्ग कर चुकने पर खुर्रम हारकर पटना होता हुआ दक्षिण को लौट गया ।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३७ ।

'वीरविनोद' मे भी लिखा है कि जब बाग़ी खुर्रम और उसके भाई परवेज़ का मुक़ाबला हुआ, उस समय सूरसिंह भी शाही सेना के साथ था (भाग २, पृ० ४६२), परन्तु फ़ारसी तवारीखो में सूरसिंह का उल्लेख नहीं मिलता ।

(२) व्रजरत्नदास, मश्रासिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ४५६ ।

मुशी देवीप्रसाद, ने 'जहागीरनामे' के प्रारम्भ में दी हुई मनसबदारों की सूची में सूरसिंह का मनसब दो हज़ार ज़ात और दो हज़ार सवार दिया है (पृ० ३६) ।

आते हुए देहांत हो गया[1]। शाहजादे खुर्रम को इसका पता मिलते ही वह दक्षिण से आगरे आकर शाहजहां नाम धारण कर तख्त पर बैठ गया। उस समय उसने बहुत से रुपये बांटे और अपने अफसरों के मनसबों में वृद्धि की। इस अवसर पर सूरसिंह (बीकानेरी) का मनसब बढ़ाकर चार हजार जात और ढाई हजार सवार कर दिया गया तथा उसे हाथी, घोड़ा, नक्कारा, निशान आदि मिले[2]।

उसी वर्ष बुखारे के इमाम कुलीखां के भाई नजर मुहम्मदखां ने काबुल पर चढ़ाई की। मार्ग में जुहाक के किलेदार खंजरखां ने उसे परास्त किया, परन्तु इससे वह अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ और ज्येष्ठ वदि २ (ई० स० १६२८ ता० १० मई) को उसने काबुल पर घेरा डाल दिया।

सूरसिंह का काबुल भेजा जाना

जब बादशाह के पास इसकी सूचना पहुंची तो उसने २०००० सवारों के साथ सूरसिंह, राव रतन हाड़ा[3], राजा जयसिंह[4], महाबतखां खानखाना[5] और मोतमिदखां को उस (नजर मुहम्मदखां) के मुकाबले पर भेजा, परन्तु उनके वहां पहुंचने से पूर्व ही, वि० सं० १६८५ भाद्रपद सुदि ११ (ई० स० १६२८ ता० २९ अगस्त) शुक्रवार को काबुल के सूबेदार लश्करखां ने आक्रमण कर नजर मुहम्मदखां को भगा दिया। तब

(१) मुंशी देवीप्रसाद, जहांगीरनामा, पृ० ५११।

(२) मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० ६।

(३) बूंदी का स्वामी।

(४) कछवाहे राजा मानसिंह के पुत्र प्रतापसिंह के बेटे राजा महासिंह का पुत्र, जिसे मिर्ज़ा राजा जयसिंह भी कहते थे।

(५) इसका वास्तविक नाम ज़मानाबेग था और यह काबुल के निवासी ग़ोरबेग का पुत्र था। अकबर के समय में इसका मनसब केवल ५०० था, पर जहांगीर के समय इसको उच्चतम सम्मान प्राप्त था। शाहजहां के राज्यकाल में भी यह उसी पद पर बहाल रहा। इसकी मृत्यु हि० स० १०४४ (वि० सं० १६९१ = ई० स० १६३४) में दक्षिण में हुई।

बादशाह ने सूरसिंह, महाबतखां आदि को वापस बुला लिया[1]।

शाहजहां के गद्दी पर बैठने पर जुझारसिंह बुंदेला भी उसकी सेवा में उपस्थित हुआ था पर बीच में वह बिना आज्ञा प्राप्त किये ही फिर अपने देश चला गया। ओरछा में पहुंचने पर उसने युद्ध की तैयारी की। बादशाह को जब इसकी खबर लगी तो उसने एक बड़ी फ़ौज देकर महाबतखां को सैयद मुजफ्फरखां, दिलावरखां[2], राजा रामदास नरवरी[3], भगवानदास बुंदेला आदि के साथ उसपर भेजा। मालवे के सूबेदार खान-जहां लोदी को भी राजा विट्ठलदास गौड़[4], अनीराय सिंहदलन[5],

सूरसिंह का ओरछे पर जाना

(१) मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० १५८। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ४५६। उमराए हनूद, पृ० २५७।

(२) शाहजहां के दरबार का अमीर—बहादुरखां रुहेले का पुत्र।

(३) दसवीं शताब्दी में नरवर तथा ग्वालियर पर कछवाहों का राज्य था। फिर वहां पड़िहारों का राज्य हुआ, जिनसे शाह अल्तमश ने उसे ले लिया। तैमूर की चढ़ाई के समय वहां तवरों ने अधिकार कर लिया। ई० स० १५०७ (वि० स० १५६४) के आसपास सिकंदर लोदी ने नरवर का दुर्ग जीत लिया फिर कछवाहों को दे दिया, जिनका वहां मुग़लों के समय में भी अधिकार था।

(४) राजा गोपालदास गौड़ का पुत्र।

(५) अनीराय बड़गूजर वंश का राजपूत था। उसके पूर्वज ज़मींदार थे, परन्तु उसका दादा ग़रीब हो जाने के कारण, बहुधा हरिणों को मार मार कर उनके मांस से अपने कुटुम्ब का पालन किया करता था। एक दिन शिकार के समय उसने धोखे में बादशाह अकबर का शिकारी चीता मार डाला। इसका पता लगने पर शाही शिकारी उसको पकड़कर बादशाह के पास ले गये। बादशाह के पूछने पर जब उसने सारा हाल सच सच निवेदन कर दिया, तो बादशाह ने उसकी हिम्मत और निशाना लगाने की कुशलता से प्रसन्न होकर उसे अपनी सेवा में रख लिया और शिकार में अधिक रुचि होने के कारण उसको उचित पद पर नियत किया। उसका पुत्र वीरनारायण हुआ। वीरनारायण का पुत्र अनूपसिंह था, जो पीछे से 'अनीराय सिंहदलन' के ख़िताब से प्रसिद्ध हुआ। अकबर के अंतिम दिनों में वह ख़वासों का अफ़सर बनाया गया। जहांगीर के समय कुछ काल तक वह उसी पद पर नियत रहा। अपने

राज्य के पाचवें वर्ष (वि० सं० १६६७ = ई० स० १६१०) में एक दिन बादशाह जहांगीर बाड़ी के परगने में चीतों का शिकार करने में लगा हुआ था। वहा कुछ दूर पर चीलों को एक वृक्ष पर बैठे हुए देखकर धनुष तथा बिना फलवाले तीर लेकर अनूपसिंह उधर बढ़ा। उस वृक्ष के निकट आधा खाया हुआ बैल उसे नज़र आया। समीप ही झाड़ी में से एक बड़ा और प्रबल शेर निकला। यद्यपि सन्ध्या होने मे कुछ ही समय शेष था तथापि उसने और उसके साथियो ने शेर को घेरकर इसकी ख़बर बादशाह को दी। जहांगीर तुरन्त घोड़े पर सवार होकर उधर गया और बाबा खुर्रम, रामदास, एतमादराय, हयातख़ां तथा एक दो और आदमी उसके साथ चले। शेर वृक्ष की छाया मे बैठा था। उसने घोड़े से उतरकर शेर पर निशाना लगाया। दो बार निशाना लगाने पर भी शेर मरा नहीं वरन् एक शिकारी को घायल कर फिर अपनी जगह जा बैठा। तीसरी बार बादशाह बन्दूक़ चलानेवाला ही था कि इतने में गर्जना करता हुआ शेर उसपर झपटा। उसने बन्दूक़ चलाई तो गोली शेर के मुह और दातों में होकर निकल गइ, लेकिन बन्दूक़ की आवाज़ से वह और भी क्रुद्ध हो गया। बहुत से सेवक, जो वहा थे, डरकर एक दूसरे पर गिर गये। स्वय बादशाह उनके धक्के से दो क़दम पीछे जा गिरा। दो तीन आदमी तो उसकी छाती पर पाव रखकर ऊपर से निकल गये। ऐसी दशा मे अनूपसिंह शेर के सामने गया तो वह फुर्ती से उसपर लपका। उस पुरुषसिंह ने वीरता से सामने जाकर दोनो हाथों से एक लाठी उसके सिर पर मारी। शेर ने मुह फाड़कर उसके दोनो हाथ चबा डाले, परन्तु उसके हाथ में लाठी और कडे होने से उसे बड़ा सहारा मिला और उसके हाथ बेकार न हुए। अनूपराय ने बल से अपने हाथ उसके मुख से छुड़ाकर उसके जबड़े पर दो तीन घूंसे मारे और करवट लेकर वह घुटने के बल उठ खड़ा हुआ। शेर के दात उसके हाथों के आर पार हो गये थे, इसलिए उसके मुह से खींचते समय वे फट गये। शेर के पंजे उसके दोनों कन्धों पर लग गये थे। जब वह खड़ा हुआ, तो शेर भी खड़ा हो गया और उसने अपने पंजों से उसकी छाती मे प्रहार किया। ज़मीन ऊंची नीची होने से वे दोनों कुश्ती लड़ते हुए पहलवानों की तरह लुढ़कते हुए, एक दूसरे के ऊपर नीचे होते गये। शेर उसको जब छोड़कर भागने लगा तो अनूपसिंह खड़ा होकर उसके पीछे दौड़ा और उसने उसके सिर में तलवार का प्रहार किया। जब शेर ने उसकी ओर मुह किया तो उसने अपनी तलवार का दूसरा वार उसके मुह पर किया, जिससे उसकी आँखों पर की चमड़ी लटक गई। इसी बीच दूसरे लोगों ने आकर शेर को मार डाला। बादशाह अनूपसिंह के वीरतापूर्ण कार्य और स्वामिभक्ति से बहुत प्रसन्न हुआ और उसके अच्छे होने पर उसने उसे 'अनीराय सिंहदलन' के ख़िताब से सम्मानित किया तथा उसको अपनी तलवारों मे से एक ख़ासा तलवार बख़्शी और

राजा गिरधर[1], राजा भारत[2] आदि के साथ जुझारसिंह पर जाने को लिखा गया। इधर कन्नौज के सूबेदार अब्दुल्लाखा को भी पूरब की तरफ से ओरछा जाने की आज्ञा हुई। इस फौज के साथ सूरसिंह, बहादुरखा रुहेला, पहाडसिंह बुदेला[3], किशनसिंह भदोरिया[4] तथा आसफखा[5] भी थे। तीन ओर से आक्रमण होने पर जुझारसिंह ने तग आकर महाबतखा की मारफत माफी माग ली और वह दरबार मे हाजिर हो गया[6]।

वि० स० १६८६ कार्तिक वदि १२ (ई०स० १६२६ ता० ३ अक्टोबर) शनिवार की रात को खानजहा लोदी[7] आगरे से भाग गया। तब बादशाह

उसका मनसब बढाया। पुष्कर मे वराहघाट के सामनेवाले तट की तरफ़, वर्तमान श्मशानो के निकट बना हुआ जहागीरी महल, जो अब खडहर के रूप में है, अनीराय की अध्यक्षता में ही बना था। पन्द्रहवे राज्यवर्ष मे बगश की चढ़ाई में महाबतख़ा की सिफारिश से बादशाह ने उसको सेनापति नियत किया। वि० स० १६८३ (ई० स० १६२६) में वह कागड़े का हाकिम नियत किया गया। शाहजहा के राज्य समय उसके पिता वीरनारायण के मरने पर अनीराय को राजा का ख़िताब मिला और उसका मनसब तीन हज़ारी ज़ात व डेढ़ हज़ार सवार का हो गया। वि० स० १६९३ (ई० स० १६३६) में उसका देहात हुआ। उसका पुत्र जयराम था।

(१) राजा रायसल दरबारी का ज्येष्ठ पुत्र।

(२) राजा मधुकर के पुत्र राजा रामचन्द्र का पौत्र।

(३) बुदेले राजा वीरसिहदेव का पुत्र।

(४) आगरे से तीन कोस पर एक स्थान भदावर है, जहां के रहनेवाले चौहान इस पदवी से प्रसिद्ध है।

(५) यह नूरजहा बेगम का भाई तथा शाहजहा का श्वसुर था।

(६) मुशी देवीप्रसाद, शाहजहानामा, भाग १, पृ० १५ २०। ब्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ४५६।

(७) इसका ठीक ठीक वश-परिचय ज्ञात नही होता। जहागीर के राज्यकाल में इसे पांच हज़ारी मनसब प्राप्त था।

सूरसिंह का खानजहां पर भेजा जाना

ने सूरसिंह, राजा विट्ठलदास गौड़, राजा भारत बुंदेला, माधोसिंह हाडा[1], पृथ्वीराज राठोड़, राजा वीरनारायण[2], राय हरचंद पड़िहार आदि के साथ ख्वाजा अब्दुलहसन को फ़ौज देकर उसके पीछे भेजा। धौलपुर में उन्होंने उसे जा घेरा। पहले तो कुछ देर तक खानजहां ने लड़ाई की, पर अंत में वह भाग गया और जुझारसिंह बुंदेले के मुल्क में पहुंचने पर उस (जुझारसिंह) के बेटे ने उसे गुप्तमार्ग से बाहर निकाल दिया, जहां से वह निज़ामुल्मुल्क के पास पहुंच गया[3]। तब बादशाह ने अपनी फ़ौज को वापस बुला लिया।

सूरसिंह का खानजहां पर दूसरी बार भेजा जाना

उसी वर्ष चैत्र वदि ६ (ई० स० १६३० ता० २२ फ़रवरी) को शाहजहां ने अलग अलग तीन फ़ौजें खानजहां लोदी पर भेजीं। एक फ़ौज का संचालन दक्षिण के सूबेदार इरादतखां के हाथ में था, दूसरी महाराजा गजसिंह[4] की मातहती में थी और तीसरी में अन्य अफ़सरों के अतिरिक्त सूरसिंह भी था। कुछ दिनों बाद राजोरी नामक स्थान में खानजहां से इन फ़ौजों का सामना हुआ। उस समय शाही फ़ौज का हरावल राजा जयसिंह[5] था। उसके प्रबल आक्रमण से खानजहां हारकर भाग निकला। इस अवसर पर कुछ लोग तो लूट मार में लग गये, परन्तु शेष ने उसका पीछा किया, जिसपर खानजहां ने पलटकर युद्ध किया, पर सूरसिंह आदि के आक्रमण के आगे वह ठहर न सका और भाग गया[6]।

---

(१) राव रत्नसिंह हाड़ा का दूसरा पुत्र।

(२) राजा अनूपसिंह बड़गूजर (अनीराय सिंहदलन) का पिता।

(३) मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० २३ ६। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ४५६।

(४) जोधपुर के राजा सूरसिंह का पुत्र।

(५) राजा महासिंह कछवाहे का पुत्र।

(६) मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० २७ ३०।

ख्यातों से पाया जाता है कि सूरसिंह की एक भतीजी (रामसिंह की पुत्री) का विवाह जैसलमेर के रावल हरराज के पुत्र भीमसिंह[1] के साथ हुआ था। भीमसिंह की मृत्यु होने पर जैसलमेर के सरदारों ने उसके पुत्र को मारने का निश्चय किया। तब रानी ने अपने चाचा सूरसिंह से कहलाया कि मेरे पुत्र की रक्षा करो। इसपर सूरसिंह ने एक हजार राजपूतों के साथ जैसलमेर की ओर प्रस्थान किया, परन्तु मार्ग में लाठी गांव के पास उसे बालक की हत्या किये जाने का समाचार मिला। जैसलमेरवालों के इस नृशंस कार्य से उसका दिल उनसे हट गया और उसने प्रतिज्ञा की कि बीकानेर की किसी भी राजकुमारी का विवाह जैसलमेर में नहीं किया जायगा[2]। बीकानेर में इस प्रतिज्ञा का पालन अबतक होता है।

सूरसिंह का जैसलमेर में राजकुमारी न ब्याहने का प्रतिज्ञा करना

रायसिंह ने अपने जीवनकाल में शाही दरबार में जो सम्मानित स्थान अपनी वीरता के कारण प्राप्त किया था, उसे दलपतसिंह ने अपने अनुचित आचरण से थोड़े समय में खो दिया। इसपर जहांगीर ने उस (दलपतसिंह) के छोटे भाई सूरसिंह को बीकानेर का राज्य सौंपा, जिसने अपने गुणों के कारण क्रमशः शाही दरबार में अपने पिता के जैसा ही सम्मान प्राप्त कर लिया। जहांगीर और शाहजहां के समय के उसके नाम के

सूरसिंह और उसके नाम के शाही फरमान

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात में भीमसिंह का देहांत वि० सं० १६७३ (ई० स० १६१६) में होना लिखा है (जि० २, पृ० ४४१)। अतएव यह घटना इस समय के कुछ ही बाद हुई होगी।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३४।

जैसलमेर की तवारीख़ (पृ० ५४) में भीमसिंह का राज्यकाल गलत दिया है। साथ ही इस घटना का उल्लेख भी दूसरे प्रकार से है। उसमें सूरसिंह की भतीजी के पुत्र का फलोधी में चेचक अथवा ज़हर से मरना लिखा है। उपर्युक्त तवारीख़ में भतीजी के स्थान पर बहन लिखा है।

लगभग ५१ फरमान तथा निशान मिले हैं। सन् जलूस ११ ता० २ अमरदाद (हि० स० १०२५ ता० ६ रज्जब = वि० स० १६७३ श्रावण सुदि १०=ई० स० १६१६ ता० १४ जुलाई) के जहांगीर के समय के शाहजादा खुर्रम की मुहर के निशान में सूरसिंह को राजा के खिताब से सम्बोधित किया है, जिससे स्पष्ट है कि इसके पूर्व ही बीकानेरवालों को शाही दरबार से भी राजा का ख़िताब मिल गया होगा। आगे चलकर तो फिर कई फरमानों मे उसे राजा लिखा है। हि० स० १०२६ ता० १५ जिलहिज (वि० स० १६७४ पौष वदि २=ई० स० १६१७ ता० ४ दिसबर) के निशान मे शाहजादे खुर्रम ने उसे 'उच्चकुल के राजाओ मे सर्वश्रेष्ठ' लिखा है। नूरजहा की मुहर का भी एक फरमान है, जिसमे उसे राजा ही लिखा है[1]। अब हम यहा सूरसिंह से सम्बन्ध रखनेवाली उन घटनाओ का उल्लेख करेगे, जिनका तवारीखों अथवा ख्यातों मे कोई वर्णन नहीं है, परन्तु जिनपर इन फरमानों द्वारा काफी प्रकाश पड़ता है।

(१) वि० स० १६७१-७२ (ई० स० १६१४-१५) में नरवर के किसानों पर अत्याचार करके रघुनाथ, सुदर्शन, गोकुलदास, भगवान, कवी पठान तथा हुसेन कायमखानो ने वहा के ५२ गावों पर अधिकार कर लिया और वे लूटमार करने लगे। जब बादशाह जहांगीर के पास इसकी शिकायत हुई, तो उसने फरमान भेजकर सूरसिंह को इस विषय की जाच करने के लिए और घटना के सत्य सिद्ध होने पर उपर्युक्त व्यक्तियों को कठोर दड देने के लिए नियुक्त किया[2]। प्राय दो मास बाद ही विद्रोहियों का साहस इतना बढ़ा कि उन्होंने शाही खजाने पर भी हाथ साफ किया और लूणिया के निवासियों को लूटा। तब बादशाह ने हाशिम बेग चिश्ती को

---

(१) सन् जुलूस २१ ता० ११ आबान (हि० स० १०३६ ता० १३ सफ़र = वि० स० १६८३ कार्तिक सुदि १५ = ई० स० १६२६ ता० २४ अक्टोबर) का फ़रमान।

(२) सन् जुलूस ६ ता० १ खुरदाद (हि० स० १०२३ ता० १२ रबी-उस्सानी = वि० स० १६७१ प्रथम ज्येष्ठ सुदि १४ = ई० स० १६१४ ता० १२ मई) का फ़रमान।

उनका दमन करने के लिए नियुक्त किया और फरमान भेजकर सूरसिंह को भी उसके साथ कार्य करने का आदेश किया[1]। उन्ही दिनो बागी और लुटेरा चन्द्रभान, केशू (बिलोच) के हाथ से दड पाने पर सूरसिंह की जागीर मे चला गया। तब बादशाह ने उसे जिन्दा अथवा मुर्दा गिरफ़्तार करने के लिए सूरसिंह को उसपर सेना भेजने को लिखा[2]। सन् जुलूस ६ ता० ६ बहमन (हि० स० १०२३ ता० २८ जिलहिज = वि० स० १६७१ माघ वदि अमावास्या = ई० स० १६१५ ता० १६ जनवरी) को बादशाह ने फरमान भेजकर सूरसिंह को दरबार मे बुलवा लिया।

(२) वि० स० १६७८ (ई० स० १६२१) मे बादशाह के पास किरकी की विजय का समाचार पहुचा। इस स्थल पर सूरसिंह और दाराबख़्श भेजे गये थे और इस युद्ध मे सूरसिंह ने बडी वीरता एव सच्ची राज्यभक्ति का परिचय दिया[3]।

(३) वि० स० १६७६ (ई० स० १६२२) मे सूरसिंह की नियुक्ति आमेर के निकट जालनापुर के थाने पर कर दी गई[4]।

(४) वि० स० १६८० (ई० स० १६२३) में आसकर्ण, केशोदास तथा भटनेर के अन्य काधलोत तथा जोइयो ने मिलकर सिरसा पर धावा

---

(१) सन् जुलूस ६ ता० ५ अमरदाद (हि० स० १०२३ ता० २० जमादि-उस्सानी = वि० स० १६७१ श्रावण वदि द्वितीय ७ = ई० स० १६१४ ता० १८ जुलाइ) का फ़रमान।

(२) सन् जुलूस ६ ता० ३१ अमरदाद (हि० स० १०२३ ता० १६ रजब = वि० स० १६७१ भाद्रपद वदि ४ = ई० स० १६१४ ता० १३ अगस्त) का फ़रमान।

(३) सन् जुलूस १२ ता० २८ उर्दीबहिश्त [अनुवाद मे सन् १६ दिया है, जो ठीक नहीं प्रतीत होता] (हि० स० १०२६ ता० ११ जमादिउल्अव्वल = वि० स० १६७४ वैशाख सुदि १२ = ई० स० १६१७ ता० ७ मई) का फ़रमान। डॉक्टर बेणीप्रसाद लिखित 'हिस्ट्री ऑव् जहांगीर' मे भी किरकी की लड़ाई का उल्लेख है (पृ० २६१), जिसमें दाराबख़्श भी साथ था।

(४) हि० स० १०३१ ता० ६ ज़ीक़ाद (वि० स० १६७६ भादपद सुदि ८ = ई० स० १६२२ ता० २ सितम्बर) का फ़रमान।

किया और राय जल्लू आदि को मारकर वहा के निवासियों की सम्पत्ति लूट ली। जब इसकी खबर बादशाह को मिली तो उसने सूरसिंह के पास इस आशय का फरमान भेजा कि वह बागियो को दड देकर वहा के निवासियों की सम्पत्ति वापस दिला दे[1]।

(४) कुछ दिनों पहले से ही खुर्रम विद्रोही हो गया था और भारत के सिंहासन पर अधिकार जमाने के लिए अनेको प्रकार के षडयन्त्र रच रहा था। बगाल और बिहार को अधीन कर उसने अवध और इलाहाबाद को भी अपने अधिकार मे करने का प्रयत्न किया। उसने दरियाखा पठान को कुछ फौज के साथ अवध मे मानिकपुर की तरफ भेजा और अब्दुल्लाखा तथा राजा भीम (सीसोदिया) को फौज की दूसरी टुकडी के साथ गगा नदी के मार्ग से इलाहाबाद की तरफ रवाना किया। अब्दुल्लाखा के चौसाघाट पहुचने पर खान आज़म का पुत्र जहागीर कुलीखा इलाहाबाद में रुस्तम मिर्जा के पास भाग गया। अब्दुल्लाखा ने उसका पीछा किया तथा झूसी नामक स्थान मे डेरा किया। नावो के सहारे वह आसानी से इलाहाबाद में पहुच गया तथा उसने वहा के गढ़ को घेर लिया। रुस्तमखा भी तत्परता के साथ अपनी रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो गया। इस बीच मे शाहजादे ने भी दरियाखा को वापस बुलाकर बिहार मे छोड़ दिया था और वह स्वय जौनपुर पर अधिकार कर कम्पत के जगलो मे ठहरा हुआ था। यहा तक तो उसके मनसूबे ठीक तरह से पूरे ही हो रहे थे, पर अब उनमें व्याघात होना शुरू हुआ। अकबर-नगर मे इब्राहीमखा एव इलाहाबाद मे रुस्तमखा-द्वारा रुकावट डाले जाने के कारण शाहजादा परवेज तथा महाबतखा को इलाहबाद की सीमा में पहुचने का समय मिल गया। दक्षिण मे सफलतापूर्वक कार्यनिर्वाह करने के अनन्तर वे दोनो शाही आज्ञा के अनुसार खुर्रम के विरुद्ध बादशाही रैय्यत की रक्षार्थ वि० स० १६८१ चैत्र सुदि ७ (ई० स०

(१) सन् जुलूस १८ ता० १७ तीर (हि० स० १०३२ ता० १० रमज़ान = वि० स० १६८० आषाढ सुदि १२ = ई० स० १६२३ ता० २६ जून) का फरमान।

१६२४ ता० २६ मार्च) को बुरहानपुर से रवाना हुए थे। विशाल शाही सैन्य का आगमन सुनते ही अब्दुल्लाखां घेरा उठाकर झूसी चला गया। बाद में दोनों दलों का सामना होने पर खुर्रम की पराजय हुई और वह भाग गया[1]।

खुर्रम के विरुद्ध इस लड़ाई में परवेज़ तथा महाबतखां की सहायतार्थ सूरसिंह भी पहुंच गया था। सूरसिंह का नाम किसी फ़ारसी तवारीख़ में तो नहीं आया है, परन्तु जहांगीर के सन् जुलूस १६ ता० २४ खुरदाद (हि० स० १०३३ ता० २६ शाबान = वि० सं० १६८१ आषाढ वदि १३ = ई० स० १६२४ ता० ३ जून) के निम्नलिखित आशय के फ़रमान से उसका उनके साथ होना पूर्णतया सिद्ध है—

"अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त, कृपाओं तथा सम्मानों के योग्य राय सूरत(सूर)सिंह को ज्ञात हो कि उसकी राजभक्ति, उपयुक्त सेवाओं तथा इस वर्षा ऋतु में भी अनेकों कष्ट उठाकर मेरे पुत्र के समक्ष उपस्थित होने का समाचार शाहज़ादा परवेज़ और महाबतखां के पत्रों द्वारा मालूम हो चुका है।

"शाही अभिलाषा यही है कि उस अभागे का नामोनिशान मिटा दिया जाय, इसलिए सूरत(सूर)सिंह तथा अन्य राजभक्त व्यक्तियों का कर्तव्य है कि उस प्रतिकूल आचरण करनेवाले अभागे को दूर करने में अपनी पूरी शक्ति का उपयोग करे।"

खुर्रम के भागजाने पर बादशाह जहांगीर ने अपने सन् जलूस १६ ता० १४ आबान (हि० स० १०३४ ता० २३ मुहर्रम = वि० सं० १६८१ मार्गशीर्ष वदि १० = ई० स० १६२४ ता० २६ अक्टोबर) के फ़रमान में सूरज-(सूर)सिंह की सेवाओं से प्रसन्नता प्रकट की है और बदले में उसके पास राजा जोरावर के हाथ घोड़ा और ख़िलअत भिजवाने का उल्लेख है।

उपर्युक्त उद्धरण से यह निश्चित है कि विद्रोही खुर्रम के साथ की लड़ाई में सूरसिंह भी उपस्थित था और उसने अच्छा काम किया।

---

(१) डा० बेणीप्रसाद; हिस्ट्री ऑव् जहांगीर; पृ० ३८१-४।

(६) मलिक अम्बर[1] का देहांत हो जाने पर बादशाह ने सूरसिंह के नाम फरमान भेजा कि इस अवसर पर उसे तथा अन्य अफसरों को भाग्यहीन (खुर्रम) की शक्ति क्षय करने में पूरा उद्योग करना चाहिये[2]।

(७) वि० स० १६८३ (ई० स० १६२६) में बादशाह ने एक योग्य व्यक्ति को मुलतान भेजने का निश्चय किया। सूरसिंह की जागीर मुलतान के निकट होने के कारण वही इस कार्य के लिए चुना गया तथा वहां भेजे जाने के पूर्व दरबार मे बुलाया गया[3]।

(८) वि० स० १६८३ (ई० स० १६२६) में बादशाह ने सूरसिंह की नियुक्ति बुरहानपुर मे कर दी। प्राय एक मास बाद ही फिर एक फरमान उसके नाम भेजा गया, जिसमे उसे शीघ्र जमाल मुहम्मद के साथ बुरहानपुर पहुचने का आदेश किया गया था[4]।

(९) वि० स० १६८४ (ई० स० १६२७) मे नागोर का परगना तथा

---

(१) यह हबशी जाति का गुलाम था, जिसका धीरे धीरे दक्षिण मे बहुत प्रभुत्व बढ़ गया। जहागीर ने सिंहासनारूढ़ होने पर कई बार इसे अधीन करने के लिए सेनाए भेजी पर मलिक अम्बर की स्वतन्त्रता मे बाधा न पहुची। पीछे से शाहज़ादे शाहजहा से मिल जाने पर इसने मुगलो से जीते हुए देश उसे दे दिये। यह अन्त तक शाहजहा का पक्षपाती बना रहा। अस्सी वर्ष की अवस्था मे वि० स० १६८३ (ई० स० १६२६) मे इसका देहात हुआ। इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र फ़तहख़ां हुआ।

(२) सन् जुलूस २१ ता० २७ खुरदाद (हि० स० १०३५ ता० २२ रमज़ान = वि० सं० १६८३ आषाढ वदि ८ = ई० स० १६२६ ता० ७ जून) का बादशाह जहागीर का फ़रमान।

(३) सन् जुलूस २१ ता० ११ अमरदाद (हि० स० १०३५ ता० १० ज़ीकाद = वि० स० १६८३ श्रावण सुदि ११ = ई० स० १६२६ ता० २४ जुलाई) का फ़रमान।

(४) सन् जुलूस २१ ता० २७ मेहर (हि० स० १०३६ ता० २८ मुहर्रम = वि० स० १६८३ कार्तिक वदि ३० = ई० स० १६२६ ता० १० अक्टोबर) का फ़रमान।

अन्य कई स्थान अमरसिंह के हटाये जाने पर सूरसिंह को जागीर में दिये गये[1]।

(१०) हि० स० १०३७ ता० २ रबीउस्सानी (वि० स० १६८४ कार्तिक सुदि ३ = ई० स० १६२७ ता० १ नवम्बर) के फरमान द्वारा मारोठ का गढ़ सूरसिंह को जागीर मे मिल गया।

(११) जब लखी जगल के मन्सूर और भट्टी आदि ने विद्रोही होकर लूट-मार करना शुरू किया तो बादशाह ने सूरसिंह को उनका दमन करने के लिए नियुक्त किया। इस सबन्ध का फरमान जहागीर के राज्य-काल का है, परन्तु उसका सवत् ठीक पढ़ा नहीं जाता। इसके अतिरिक्त और भी कई फरमान जहागीर के समय के हैं, पर उनके सम्वत् स्पष्ट नहीं हैं और न उनमे सूरसिंह की योग्यता, राज्यभक्ति और प्रशसा के अतिरिक्त किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख है।

(१२) जहागीर की मृत्यु हो जाने पर आसफखा ने, जो शाहजहा का पक्षपाती था, नूरजहा को नजर क़ैद कर दिया और बनारसी को सुदूर दक्षिण में शाहजहा के पास अपनी अगूठी देकर भेजा। इस बीच में और कोई गड़बड़ न हो, इसलिए उसने खुसरो के पुत्र दावरबख़्श को क़ैद से निकालकर नाममात्र को तख़्त पर बैठा दिया। दावरबख़्श की मुहर का सन् जुलूस २२ ता० २० आबान (हि० स० १०३७ ता० ३ रबीउल्-अव्वल = वि० स० १६८४ कार्तिक सुदि ४ = ई० स० १६२७ ता० २ नवम्बर) का फरमान सूरसिंह के पास पहुचा, जिसमे उसने नूरजहा बेगम तथा अन्य राज्य के अधिकारियों द्वारा अपने तख़्तनशीन किये जाने का उल्लेख किया था और सूरसिंह को पहले की तरह राजकीय सेवा बजाने का आदेश किया था। इस फरमान से यह भी पाया जाता है कि दावरबख़्श ने सूरसिंह के मनुष्यों के हाथ उसके पास कुछ जबानी सन्देश भी भेजा

(१) सन् जुलूस २२ ता० १६ मेहर (हि० स० १०३७ ता० २८ मुहर्रम = वि० स० १६८४ आश्विन वदि अमावास्या = ई० स० १६२७ ता० २१ सितम्बर) का फ़रमान।

था, पर वह क्या था, इसका पता नहीं चलता। इसके अतिरिक्त एक फरमान दावरबख़्श का सूरसिंह के नाम का है, जिसमे शाही सेना द्वारा शहरयार के परास्त तथा क़ैद किये जाने का उल्लेख है और ता० २६ (?२४) आबान (हि० स० १०३७ ता० १२ रबीउलूअव्वल = वि० स० १६८४ कार्तिक सुदि १४ = ई० स० १६२७ ता० ११ नवम्बर) को उस(दावरबख़्श) के गद्दी बैठने का उल्लेख है।

बाद में, आसफखां जो चाहता था वही हुआ और उसने अपने दामाद खुर्रम (शाहजहां) को भारत के सिंहासन पर बैठाया, जिसने दावर-बख़्श को क़त्ल करवा दिया।

(१३) वि० स० १६८५ (ई० स० १६२८) में शाहजहां ने शेर ख़्वाजा को ठट्ठा की ओर शीघ्रता से प्रस्थान करने की आज्ञा दी। इस अवसर पर सूरसिंह को भी मुलतान में उससे मिल जाने के लिए फरमान भेजा गया तथा दोनो को मिलकर बाग़ी[1] को जिन्दा अथवा मुर्दा शाही दरबार में उपस्थित करने की आज्ञा हुई[2]। उन्हीं दिनो मिर्जा ईसा तरखान द्वारा उस(बाग़ी)के गिरफ्तार कर लिये जाने पर बादशाह ने सूरसिंह को वापस बुलवा लिया[3]।

(१४) सन् जुलूस ३ ता० ११ खुरदाद (हि० स० १०३६ ता० २२ शाबान=वि० स० १६८७ वैशाख वदि १० = ई० स० १६३० ता० २८ मार्च) के बादशाह शाहजहां के फरमान से स्पष्ट है कि उसके विरुद्ध आचरण करनेवालो को दड देने के लिए जो लोग भेजे गये थे, उनमे सूरसिंह भी था और उसने इस कार्य में बड़ी तत्परता एव वीरता दिखलाई।

बुरहानपुर में ही वि० स० १६८८ (ई० स० १६३१) मे बौहरी गाव में सूरसिंह का देहात हो गया[4], जिसकी सूचना शाहजहां के पास

(१) फ़रमान मे इसका नाम नहीं दिया है।

(२) वि० स० १६८४ (ई० स० १६२८) का फ़रमान।

(३) वि० स० १६८४ (ई० स० १६२८) का दूसरा फ़रमान।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३४।

सूरसिंह का मृत्यु

आश्विन सुदि ६ (ई० स० १६३१ ता० २१ सितंबर) को पहुंची[1]। सूरसिंह की स्मारक छत्री से वि० सं० १६८८ आश्विन वदि अमावास्या (ई० स० १६३१ ता० १५ सितंबर) गुरुवार को उसका देहांत होना पाया जाता है[2]।

संतति

सूरसिंह के तीन पुत्र—१—कर्णसिंह[3], २—शत्रुसाल, तथा ३—अर्जुनसिंह[4]—हुए[5]।

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० ६१। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४६३ (आश्विन सुदि ७ दिया है)।

(२) अथ शुभसंवत्सरेऽस्मिन् श्रीनृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १६८८ वर्षे शाके १५५३ प्रवर्तमाने महामहप्रदायिनि आश्विनमासे कृष्णपक्षे अमावस्यायां तिथौ गुरुवारे राठोड महाराजाधिराजमहाराजाश्री ४ रायसिंहस्तत्पुत्रस्त • महाराजाधिराजमहाराजश्रीशूरसिंह दिवं प्राप्त ।

(३) इसका जन्म राजा मानसिंह के पुत्र हिम्मतसिंह की पुत्री स्वरूप दे के गर्भ से हुआ था। दो और राणियों—भटियाणी मनरंगदे तथा रत्नावती—का उल्लेख मुहणोत नैणसी ने किया है, जो सूरसिंह की मृत्यु पर सती हो गई थीं (भाग २, पृ० २००)। अन्य दो पुत्र किस राणी से पैदा हुए यह पता नहीं चलता।

(४) अर्जुनसिंह के स्मारक लेख से वि० सं० १६८८ भाद्रपद वदि ७ (ई० स० १६३१ ता० ९ अगस्त) शुक्रवार को उसका देहांत होना प्रकट है।

(५) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३६। मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० २००। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३४। वीरविनोद में केवल दो पुत्रों—कर्णसिंह तथा शत्रुसाल—का उल्लेख है (भाग २, पृ० ४६३)।

महाराजा कर्णसिंह

छठा अध्याय

महाराजा कर्णसिंह से महाराजा सुजानसिंह तक

महाराजा कर्णसिंह

जन्म और गद्दीनशीनी

महाराजा सूरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह का जन्म वि० सं० १६७३ श्रावण सुदि ६ (ई० स० १६१६ ता० १० जुलाई) बुधवार को हुआ था[1] और पिता की मृत्यु होने पर वि० सं० १६८८ कार्तिक वदि १३ (ई० स० १६३१ ता० १३ अक्टोबर) को वह बीकानेर का स्वामी हुआ[2]।

कर्णसिंह को मनसब मिलना

वि० सं० १६८८ आश्विन सुदि ६ (ई० स० १६३१ ता० २१ सितंबर) को शाहजहां के पास सूरसिंह की मृत्यु का समाचार पहुंचा। कुछ दिनों बाद जब कर्णसिंह बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ तो उसे दो हजार जात तथा डेढ़ हजार सवार

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३६। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४९३। बीकानेर के एक प्राचीन जन्मपत्रियों के संग्रह में भी यही तिथि मिलती है, परन्तु चंडू के यहां से मिले हुए जन्म पत्र संग्रह में वि० सं० १६७२ भाद्रपद वदि (प्रथम) ११ (ई० स० १६१५ ता० ६ अगस्त) बुधवार को कर्णसिंह का जन्म होना लिखा है। पाउलेट ने वि० सं० १६६३ (ई० स० १६०६) तथा मुंशी सोहनलाल ने भी उसके आधार पर यही संवत् दे दिया है जो ठीक नहीं जंचता, क्योंकि उस समय तो उस (कर्णसिंह) के पिता की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी।

टॉड के अनुसार कर्णसिंह, रायसिंह का एक मात्र पुत्र था (राजस्थान, जि० २, पृ० ११३५) परन्तु उसका यह कथन ठीक नहीं है। वास्तव में वह (टॉड) बीच के दो राजाओं, दलपतसिंह एवं सूरसिंह, के नाम तक छोड़ गया है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३६।

का मनसब दिया गया। इस अवसर पर उसके भाई शत्रुसाल को भी पाच सौ जात और दो सौ सवार का मनसब मिला[1]।

वि० स० १६८८ माघ सुदि १४ (ई० स० १६३२ ता० २६ जनवरी) को कर्णसिंह ने बादशाह की सेवा में एक हाथी भेंट किया[2]।

कर्णसिंह का बादशाह को एक हाथी भेंट करना

अहमदनगर के मलिक अम्बर का देहांत हो जाने पर उसका पुत्र फ़तहख़ा उसका उत्तराधिकारी हुआ, परन्तु मुर्तज़ा निज़ामशाह[3] (दूसरा) को उसपर भरोसा न था, अतएव उसने फतहख़ा को दौलताबाद के क़िले में कैद कर दिया। अपनी बहन (मुर्तजा दूसरे की पत्नी) के प्रयत्न से जब वह छोडा गया और उसे पुराना पद प्राप्त हुआ तो उसने अवसर पाकर मुर्तजा को बन्दी कर लिया और शाहजहा की अधीनता स्वीकार कर उसकी सेवा मे अर्जी भेजी। बादशाह ने इसके उत्तर मे उससे क़ैदी को मार डालने के लिए कहलाया। इसपर फतहख़ा ने मुर्तजा को जबर्दस्ती विष का प्याला पीने पर बाध्य किया और उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो जाने की विज्ञप्ति कर उसने हुसेन नाम के एक दस वर्ष के बालक को मुर्तजा के स्थान में गद्दी पर बैठाया। तब शाहजहा ने उसे निजामशाह (मुर्तजा दूसरा) के समस्त रत्न तथा हाथी आदि शाही सेवा में भेजने को लिखा, परतु फतहख़ा इस विषय मे आनाकानी करने लगा[4]। अतएव वि० स० १६८८ फाल्गुन वदि १०

कर्णसिंह का फ़तहख़ा पर भेजा जाना

(१) मुशी देवीप्रसाद, शाहजहानामा, भाग १, पृ० ६१। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ८५, तथा उमराए हनूद (पृ० २६८) में कर्णसिंह को दो हज़ार जात और एक हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है।

(२) मुशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० ६६।

(३) अहमदनगर (दक्षिण) का नाममात्र का स्वामी, मुर्तज़ा निज़ामशाह (प्रथम) का पुत्र।

(४) डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑव् शाहजहा ऑव् देहली; पृ० १३०, १३६ ७।

(ई० स० १६३२ ता० ५ फरवरी) को बादशाह ने वजीरखां[1] को उसे दंड देने एवं दौलताबाद विजय करने के लिए भेजा। इस अवसर पर कर्णसिंह, राजा विट्ठलदास (गौड़), माधोसिंह[2] और पृथ्वीराज भी उस(वजीरखां)-के साथ भेजे गये[3]। फतहखां शाही सेना का आगमन सुनते ही घबड़ा गया और उसने अबुलफतह को भेजकर माफी मांग ली तथा आठ लाख रुपये के रत्न, तीस हाथी और नौ घोड़े बादशाह की सेवा में भेज दिये[4]। इसपर वजीरखां तथा कर्णसिंह आदि वापस बुला लिये गये[5]। पर इतने ही से दक्षिण में शांति न हुई। एक ओर शाहजी[6] और दूसरी ओर बीजापुरवाले अहमदनगर के राज्य का पुनरोत्कर्ष करने में कटिबद्ध थे। साथ ही बादशाह को फतहखां की सच्चाई पर भी विश्वास न था, जिससे एक योग्य व्यक्ति का उस ओर रहना आवश्यक समझा गया। पहले तो बादशाह ने आसफखां को वहां भेजना चाहा पर उसके इनकार कर देने पर उसने महाबतखां को वहां के प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया। जब शाहजी ने शाहजहां की अधीनता स्वीकार की, तो बादशाह ने उसे कुछ महाल (परगने) दिये थे, जो फतहखां के थे, परन्तु फतहखां के

(१) इसका वास्तविक नाम हकीम अलीमुद्दीन था और यह शाहजहां का पांच हज़ारी मनसबदार था।

(२) राजा भगवानदास कछवाहे का पुत्र।

(३) मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० ६७। व्रजरत्नदास; मआसिरुल उमरा (हिन्दी), पृ० ८५। उमराए हनूद, पृ० २९८।

(४) डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली पृ० ११७।

मुंशी देवीप्रसाद ने भी 'शाहजहांनामे' (भाग १, पृ० ६७) में फतहखां द्वारा नज़राना भिजवाये जाने का उल्लेख किया है।

(५) मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० ६७। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ८५।

(६) सुप्रसिद्ध छत्रपति शिवाजी का पिता। फ़ारसी पुस्तकों में कहीं-कहीं उसे शाहूजी भी लिखा है।

माफी माग लेने पर वह सब जागीर उसे लौटा दी गई, जिससे शाहजी मुगलो के साथ-साथ फतहखा का भी विरोधी हो गया और उसने मुरारी पडित के जरिये मुहम्मद आदिलशाह[१] से सम्बन्ध स्थापित कर दौलताबाद पर घेरा डलवा दिया। तब फतहखा ने महाबतखा से सहायता की याचना की, जिसपर उसने अपने पुत्र खानजमा को दौलताबाद की तरफ भेजा। पर इसी बीच मुहम्मद आदिलशाह के सेनाध्यक्ष रन्दोलाखा की चिकनी चुपडी बातो मे आकर फतहखा विरोधियों से जा मिला। इसपर महाबतखा ने अपने पुत्र खानजमा को फ़तहखा और रन्दोलाखा के बीच के सम्बन्ध को रोकने तथा दौलताबाद को घेर लेने की आज्ञा दी। विरोधियो ने शाही सेना को हटाने की बडी चेष्टा की, परन्तु जब रसद पहुचने के सारे मार्ग बद हो गये तो फतहखा ने अपने पुत्र अब्दुर्रसूल को महाबतखा के पास भेजकर माफी माग ली और एक सप्ताह बाद वि० स० १६६० (ई० स० १६३३) मे दौलताबाद का गढ़ उस (महाबतखा) के हवाले कर वह वहा से चला गया[२]। इस चढाई मे महाराजा कर्णसिंह भी शाही सेना के साथ था[३] और उसने महाबतखा के आदेशानुसार वि० स० १६६० चैत्र सुदि ८ (ई० स० १६३३ ता० ८ मार्च) को खानजमा तथा राव शत्रुसाल हाडा के साथ रहकर विपक्षियो का बहुतसा सामान लूटा[४] था।

(१) बीजापुर का स्वामी।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी, बादशाहनामा—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, जि० ७, पृ० ३६ ४१। डॉक्टर बनारसीप्रसाद, हिस्ट्री ऑव् शाहज़हा ऑव् देहली, पृ० १३७ ४१।

(३) व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ८५। शाहजहा के सन् जुलूस ६ (वि० स० १६८९ = ई० स० १६३२ अप्रेल) के फ़रमान से भी पाया जाता है कि दौलताबाद की चढ़ाई मे कर्णसिंह ख़ानख़ाना के साथ था। उपर्युक्त फ़रमान में कर्णसिंह की वीरता का बड़ा प्रशसापूर्ण वर्णन है।

(४) मुशी देवीप्रसाद, शाहजहानामा, भाग १, पृ० १००-१०१।

दौलताबाद का गढ विजय करने के उपरान्त महाबतखा की दृष्टि परेंडे[1] के किले की तरफ गई। यह गढ़ पहले निजामशाह के क़ब्जे मे था, परन्तु वि० स० १६८६ (ई० स० १६३२) में आका रज़ा ने इसे आदिलशाह के सुपुर्द कर दिया था। महाबतखा ने बादशाह की सेवा मे अर्जी भेजी कि दौलताबाद को जीत लेने से दक्षिण की शक्तियो मे भय समा गया है, जिससे बीजापुर को अधीन करने का इस समय उपयुक्त अवसर है। मेरे सैनिक थक गये हैं, अतएव यदि कोई शाहजादा नई सेना के साथ भेजा जाय तो विजय निश्चित है। बादशाह ने तत्काल शाहजादे शुजा[2] का मनसब १०००० जात और १०००० सवार का कर उसे विशाल सैन्य के साथ दक्षिण में भेजा[3]। इस शाही सेना के साथ सैय्यद खानजहा, राजा जयसिंह, राजा विट्ठलदास, अल्लहवर्दीखा, रशीदखा अन्सारी आदि भी थे[4]। शाहजादे शुजा के बुरहानपुर पहुचने पर मार्ग में महाबतखा उससे मिला और उसने उसे सीधे परडा की ओर अग्रसर होने की राय दी। मरकापुर से खानजमा बीजापुर के सीमान्त जिलो मे भेजा गया ताकि वह उस ओर से परेंडे मे सहायता न पहुचने दे[5], पर इस चढ़ाई का काम वैसा सरल न निकला जैसा कि महाबतखा ने सोचा था।

कर्णसिंह और परेंडे की चढाई

(१) हैदराबाद (दक्षिण) के ओसमानाबाद ज़िले में।

(२) बादशाह शाहजहाँ का दूसरा पुत्र।

(३) मुशी देवीप्रसाद ने शाहज़ादे शुजा को दक्षिण भेजने की तिथि वि० स० १६६० भाद्रपद वदि ६ (ई० स० १६३३ ता० १८ अगस्त) दी है (शाहजहानामा, भाग १, पृ० ११०-१)।

(४) मुशी देवीप्रसाद ने चद्रमन बुदेला, राजा रोज़ अफ़ज़ू, भीम राठोड़, राजा रामदास नरवरी के नाम भी दिये हैं (शाहजहानामा, भाग १, पृ० १११)।

(५) डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑव् शाहजहा ऑव् देहली, पृ० १५६-६०। अब्दुलहमीद लाहौरी, बादशाहनामा—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इडिया, भाग ७, पृ० ४३ ४।

शाहजी ने निजामशाह के एक सम्बन्धी को, जो पजराटी के किले में कैद था, साथ लेकर अहमदनगर और दौलताबाद विजय करने का निश्चय किया। उधर से आदिलखा ने भी किशनाजी दत्तू, रनदोला और मुरारी पडित को धन एव जन देकर उसकी सहायता के लिए भेजा[1]। शाहजी ने जाफरनगर मे मुगलों को रोका, पर शाहजादे ने उसी समय खवासखा की अध्यक्षता में कुछ आदमी उसे भगाने के लिए भेज दिये। खानजमा भी अपने निर्वाचित स्थान पर पहुच गया, पर उससे कोई विशेष लाभ न हुआ। अन्त में महाबतखा स्वय शाहजादे के साथ परेंडे की ओर बढा। सारी मुगल सेना के एक ही स्थल पर एकत्र हो जाने के कारण रसद की कमी होने लगी। शत्रुदल भी इस अवसर पर उनके पास रसद पहुचने के तमाम मार्ग बन्द करने पर कटिबद्ध हो गया[2]।

एक दिन जब खानखाना स्वय घास आदि लेने गया हुआ था, शत्रुओ ने उसपर आक्रमण कर दिया। उस समय महेशदास राठोड़, रघुनाथ भाटी आदि ने बडी वीरता के साथ उनका सामना किया, परतु शत्रुओ की सख्या अधिक होने से वे सब मारे गये। इसी समय खान दौरा शाही सेना की सहायतार्थ जा पहुचा, जिससे शत्रुओ के पैर उखड़ गये[3]।

वि० सं० १६६० माघ सुदि १० (ई० स० १६३४ ता० २८ जनवरी) की रात को शाहजादे की आज्ञा से कर्णसिंह[4], राजा जयसिंह, राजा विट्ठलदास, राव शत्रुसाल आदि शत्रुओ के डेरे लूटने को गये,

---

(१) मुशी देवीप्रसाद, शाहजहानामा, भाग १, पृ० ११७८।

(२) डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑव् शाहजहा ऑव् देहली, पृ० १६०१।

(३) मुशी देवीप्रसाद, शाहजहानामा, भाग १, पृ० ११८६। डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑव् शाहजहा ऑव् देहली, पृ० १६२।

(४) मआसिरुल् उमरा (हिन्दी, पृ० ८६) में भी परेंडे की चढ़ाई में कर्णसिंह के शाही सेना के साथ रहने का उल्लेख है।

परन्तु वे (शत्रु) सचेत थे, अतएव अधिक सामान हाथ न लगा। फिर भी उन्होंने शत्रुओं के बहुत से आदमियों को मौत के घाट उतार दिया[1]। इस प्रकार के झगड़े बीच-बीच में कितनी ही बार हुए। उधर गढ़ को सुरंग खोदकर नष्ट करने के सारे प्रयत्न शत्रुओं ने व्यर्थ कर दिये। साथ ही खानखाना (महाबतखां) एवं खानदौरां में मनमुटाव हो गया, जिससे शाही सेना में और गड़बड़ मच गई। खानखाना के उद्दंडतापूर्ण व्यवहार के कारण अधिकांश मनसबदार उससे अप्रसन्न रहने और उसके प्रत्येक कार्य का विरोध करने लगे जिससे सफलता की कोई आशा न देख उसने गढ़ का घेरा उठवा दिया तथा शाहजादे के साथ बुरहानपुर की ओर प्रस्थान किया[2]। चार दिन बाद जब शाही सेना घाटे से उतर रही थी, उस समय विपक्षियों ने उनपर तीरों की वर्षा की। खानजमां ने शत्रुसाल, जगराज और कर्णसिंह आदि के साथ उनका मुकाबला किया। दाहिनी ओर से राजा जयसिंह भी उसकी सहायता को पहुंच गया, जिससे विपक्षी भाग गये। कुछ दिन बाद शाही सेना बुरहानपुर पहुंच गई[3]। बादशाह को जब यह सब समाचार विदित हुआ, तो वह खानखाना के आचरण से बहुत रुष्ट हुआ और उसने शाहज़ादे को पीछा बुला लिया। इसके कुछ ही समय बाद खानखाना का देहांत हो गया[4]।

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० १२२।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी, बादशाहनामा—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, जि० ७, पृ० ४४। मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० १२३-४। डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली, पृ० १६२।

ऊपरिलिखित 'बादशाहनामे' में घेरा उठाये जाने की हि० स० १०४३ तारीख़ ३ ज़िलहिज्ज (वि० सं० १६९१ ज्येष्ठ सुदि ४=ई० स० १६३४ ता० २१ मई) दी है। मुंशी देवीप्रसाद ने वि० सं० १६९१ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १६३४ ता० २२ मई) को घेरा उठाया जाना लिखा है।

(३) मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग १, पृ० १२४-५।

(४) डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली, पृ० १६३।

सन् २ जुलूस (वि० सं० १६८५-६ = ई० स० १६२६) मे जुझारसिंह बुदेले के गत अपराधो को क्षमाकर बादशाह ने उसकी नियुक्ति दक्षिण मे कर दी थी। कुछ दिनो बाद वह महाबतखा से विदा ले अपने पुत्र विक्रमाजित को अपने स्थान मे छोडकर देश चला गया। वहा पहुचकर उसने गढ़े के जमींदार प्रेमनारायण[1] पर चढ़ाई की और सन्धि करने के बहाने उसे बाहर बुलवाकर मरवा डाला तथा जोरागढ[2] एव उसकी सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। तब प्रेमनारायण के पुत्र ने मालवा से खानदौरा के साथ दरबार मे उपस्थित हो बादशाह से सारी घटना अर्ज की। इसपर बादशाह ने सुदर कविराय के हाथ निम्नलिखित आशय का फरमान जुझारसिंह के पास भेजा—

कर्णसिंह का विक्रमाजित का पीछा करना

"बिना शाही आज्ञा के प्रेमनारायण पर चढ़ाई करके तुमने उचित नहीं किया है। इसका दड यही है कि तुम उससे छीनी हुई सारी जागीर हमारे हवाले कर दो, साथ ही प्रेमनारायण के खजाने से मिले हुए धन मे से दस लाख रुपये दरबार मे भेज दो, परन्तु यदि जीती हुई भूमि तुम अपने ही अधिकार में रखना चाहो तो अपनी जागीर मे से तुम्हे उसके बराबर भूमि देनी होगी।"

उपर्युक्त आज्ञापत्र की सूचना अपने वकीलों के द्वारा जुझारसिंह को पहले ही मिल गई, जिससे उसने अपने पुत्र विक्रमाजित[3] को भाग आने के लिए कहलाया। विक्रमाजित के बालाघाट से अपने साथियों सहित भागने पर वहा के सूबेदार खानजमा ने तो उसे नहीं रोका, परन्तु खानदौरा ने, जिसकी नियुक्ति महाबतखा की मृत्यु के बाद

(१) फ़ारसी तवारीखो मे कहीं कहीं भीमनारायण भी लिखा है।

(२) कहीं कहीं चौरागढ़ भी लिखा है। यह स्थान मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर ज़िले में गाडरवाड़ा स्टेशन से पाच कोस दक्षिण पूर्व मे है।

(३) इसे बादशाह की ओर से जगराज का ख़िताब मिला था, इसीसे तवारीख़ों आदि में इसे कहीं-कहीं जगराज भी लिखा है।

दक्षिण मे हो गई थी, कर्णसिंह, राजा पहाडसिंह, चन्द्रमणि बुदेला[1], माधोसिंह हाड़ा, नजरबहादुर और मीर फैजुल्ला आदि के साथ उसका पीछा किया और पाच दिन मे मालवे मे अष्टा के निकट जा घेरा। लडाई होने पर विक्रमाजित जख़्मी होने पर भी भाग गया। मालवे का सूबेदार अल्लहवर्दीख़ा वही था, पर वह उसका पीछा न कर सका। फलस्वरूप विक्रमाजित धामूनी मे अपने पिता से जा मिला[2]। कुछ दिनों पीछे सुलतान (शाहजादा) औरगजेब की अध्यक्षता मे शाही सेना ने पिता पुत्र का पीछा कर उन्हे मार डाला। जुझारसिंह के अन्य कई पुत्र आदि बन्दी करके शाही दरबार में भेज दिये गये। इस प्रकार बादशाह के इस विरोधी का अत हुआ।

कर्णसिंह का शाहजी पर भेजा जाना

शाहजी के जीतेजी दक्षिण में शान्ति की स्थापना असभव थी। उसने निजामुल्मुल्क के खानदान के एक बालक को निजामुल्मुल्क बनाकर दक्षिण का थोड़ा भाग दबा लिया था, अतएव बादशाह ने वि० स० १६६२ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १६३६ ता० १७ फरवरी) को खानदौरा और खानजमा को उसपर जाने का आदेश दिया। साथ ही उन्हें यह भी आज्ञा दी गई कि यदि आदिलखा शाही सेना से मिल जाय तो ठीक, नही तो उसपर भी चढ़ाई की जावे। खानदौरा तथा खानजमा की मदद के लिए बड़े बड़े मनसबदार उनके साथ भेजे गये। कुछ दिनो बाद जब बादशाह के पास खबर पहुची कि आदिलखा ने गुप्त रीति से उदैगढ[3] और अउसे[4] के

(१) राजा वीरसिंहदेव बुदेला का पुत्र तथा जुझारसिंह बुदेले का भाई।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी, बादशाहनामा—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इडिया, जि० ७, पृ० ४७। मुशी देवीप्रसाद, शाहजहानामा, भाग १, पृ० १४१-५। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० १८६ ७। डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑव् शाहजहा ऑव् देहली, पृ० ८३-४।

(३) हैदराबाद के अन्तर्गत बीदर ज़िले में।

(४) हैदराबाद के अन्तगत ओसमानाबाद ज़िले में।

किलेदारो को मदद पहुचाई है और शाहजी की सहायतार्थ रनदोला को भेजा है, तो उसने सैय्यद खानजहा को भी उस(शाहजी)पर भेजा। इस अवसर पर महाराजा कर्णसिंह, हरिसिंह राठोड, राजा रोज अफजू[1] का पुत्र राजा बहरोज राजा अनूपसिंह का पुत्र जयराम, राव रतन का पोता इन्द्रसाल आदि भी खानजहा के साथ थे। बादशाह का हुक्म था कि खानजहा, खानदौरा और खानजमा भिन्न भिन्न मागो से बीजापुर मे प्रवेश कर रनदोला को शाहजी से मिलने से रोके[2]। अन्तत शाही सेना-द्वारा लगातार पीछा किये जाने पर आदिलखा (शाह), रनदोला तथा शाहजी ने क्रमश आत्मसमर्पण करके बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली।

जोधपुर के स्वामी गजसिंह (वि० स० १६७६ से १६९५ = ई० स० १६१९ से १६३८ तक) का ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह था, परतु कुछ कारणो से[3] उसे

(१) राजा सग्राम का पुत्र। पिता के मारे जाने के समय यह बहुत छोटा था, अतएव बादशाह ने इसे अपने पास रख लिया। बड़े होने पर इसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। औरगज़ेब क ८ वे राज्यवर्ष (वि० स० १७२२=ई० स० १६३५) मे इसका देहात हुआ।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी, बादशाहनामा—इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इडिया, जि० ७, पृ० ५१ ६०। मुशी देवीप्रसाद, शाहजहानामा, भाग १, पृ० १६६ ७३। डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सना, हिस्ट्री ऑव् शाहजहा ऑव् देहली, पृ० १४४ ८।

(३) दयालदास लिखता है कि एक बार अमरसिह ने क्रोध मे अपने बहनोई, रीवा के कुवर को मार डाला। अमरसिंह का पिता बहुत पहले से ही इससे नाराज़ रहता था, अतएव उसने इसे देश से निकाल दिया (जि० २, पत्र ३९)।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि अनारा नाम की अपनी विशेष प्रीतिपात्र पातर से अमरसिह की सदा अनबन रहने के कारण गजसिह ने जसवतसिह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया तथा अमरसिह को बादशाह से कहकर नागोर दिलवा दिया (जि० १, पृ० १७७ ८)।

फ़ारसी तवारीख़ों मे लिखा है कि गजसिंह ने अपने छोटे बेटे जसवतसिह को अपना उत्तराधिकारी बनाने की बादशाह से अर्ज़ की, क्योकि वह जसवतसिह की माता पर अधिक स्नेह रखता था (वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२१)।

कर्णसिंह का अमरसिंह पर फौज भेजना

अपना उत्तराधिकारी न बनाकर गजसिंह ने अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को गद्दी का स्वामी नियत किया। तब अमरसिंह बादशाह की सेवा मे चला गया, जहा उसे राव का खिताब और नागोर की जागीर मिल गई। जोधपुर और बीकानेर की सीमा मिली हुई होने से उन दोनो राज्यो मे परस्पर झगडा बना ही रहता था। कुछ दिनो बाद अमरसिंह ने बीकानेर की सीमा के जाखाणिया गाव पर भी अपना अधिकार कर लिया। जब कर्णसिंह को इसकी सूचना दिल्ली मे मिली तो उसने अपनी सेना को वहा से उस (अमरसिंह) का थाना उठवा देने की आज्ञा भेजी। उन दिनों मुहता जसवन्त बीकानेर का दीवान था। वह महाजन, भूकरका, सीधमुख आदि के सरदारो के साथ फौज लेकर नागोर पर चढ़ गया। अमरसिंह की तरफ से केसरीसिंहससैन्य मुकाबिले के लिए जाखाणिया आया, परन्तु उसे हारकर भागना पडा[1]। यह लडाई वि० स० १७०१ (ई० स० १६४४)

इसके अतिरिक्त ख्यातो आदि मे और भी कई कारण अमरसिंह के निकलवाये जाने के मिलते है, पर यह कहना कठिन है कि उनमे से कौन अधिक विश्वासयोग्य है। सभव तो यही है कि जसवतसिंह की माता पर अधिक स्नेह होने के कारण उसको अपना उत्तराधिकारी बनाकर गजसिंह ने अमरसिंह को राज्य के अधिकार से वचित कर दिया हो। ऐसे अनेक उदाहरण जोधपुर के इतिहास मे मिलते है। जैसे राव मल्लीनाथ के छोटे भाई वीरमदेव का पुत्र चूडा मडोवर का स्वामी बना, राव चूडा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल को निर्वासित कर कान्हा को गद्दी दी, राव मालदेव के बड़े बेटो रामसिंह तथा उदयसिंह से छोटा चद्रसेन गद्दी का अधिकारी बनाया गया, आदि।

(१) इस लड़ाई के सम्बन्ध मे यह भी जनश्रुति है कि बीकानेर की सीमा पर एक किसान ने मतीरे की बेल बोई जो फैलकर नागोर की सीमा में चली गई और फल भी उधर ही लगे। जब बीकानेर का किसान उधर अपने फल तोड़ने के लिए गया तो नागोर की तरफ़ के किसानों ने यह कहकर बाधा डाली कि फल हमारी सीमा में है, अतएव उनपर हमारा अधिकार है। इसपर उन किसानों में झगड़ा होने लगा। होते होते यह ख़बर दोनो ओर के राज्याधिकारियो के पास पहुची, जिससे इसका रूप और बढ़ गया तथा दोनो मे लड़ाई हो गई। राजपूताने मे इसे 'मतीरे की राड़' कहते हैं।

में हुई[1] और इसमे नागोर के कई राजपूत काम आये। जब अमरसिंह को दिल्ली मे इसकी खबर मिली तो उसे बडा अफसोस हुआ और उसने वहा से जाने की आज्ञा मागी, परन्तु उसी समय कर्णसिंह ने अमरसिंह के जाखाणिया लेने तथा युद्ध होने का सारा हाल बादशाह से निवेदन कर दिया, जिसपर बादशाह ने अमरसिंह को दरबार ही मे रोक रक्खा[2]।

कर्णसिंह का पूगल पर चढाई

कुछ वर्षों बाद कर्णसिंह का अधीनस्थ पूगल का राव सुदर्शन भाटी (जगदेवोत) विद्रोही हो गया, जिससे उसने ससैन्य उसपर चढ़ाई कर उसका गढ़ घेर लिया। प्राय एक मास तक घेरा रहने पर एक रात्रि को अवसर पाकर सुदर्शन भागकर लखवेरा मे चला गया। कर्णसिंह ने उसके गढ को नष्टकर वहा अपना थाना बैठा दिया[3] और पडिहार लूणा तथा कोठारी जीवनदास को वहा के प्रबन्ध के लिए छोड़कर उसने फौज के साथ लखवेरा मे सुदर्शन का पीछा किया। वहा के जोइयो ने तत्काल उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसे पेशकशी दी, जिसे लेकर वह बीकानेर लौट गया[4]।

---

(१) कविराजा बाकीदास के 'ऐतिहासिक बाते' नामक ग्रथ में इस लड़ाई के होने का समय वि० स० १६६६ (ई० स० १६४२) दिया है और सीलवा नामक स्थान में इसका होना लिखा है (सख्या ६८६)।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३६ ४०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३५।

फ़ारसी तवारीख़ों में इस घटना का उल्लेख नही है।

(३) बीकानेर की ख्यातों मे इस घटना का समय नही दिया है। मुहणोत नैणसी ने वि० स० १७२२ (इ० स० १६६५) में कर्णसिंह-द्वारा सुदर्शन से पूगल का लिया जाना लिखा है (ख्यात, जि० २, पृ० ३८०)।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४०। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४९९। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३५।

बीकानेर और मुलतान के मध्य के ऊजड प्रदेश मे स्थित होने पर भी पूगल सदा से एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भाटियो ने उसे पवारों से लिया था। उस समय उसमे केवल २०० गाव थे, जो कर्णसिंह के समय मे बढकर ४६१ हो गये।

पूगल का बटवारा करना

बीका के श्वसुर शेखा के वशजो ने अब उसका बटवारा करने की प्रार्थना की। तदनुसार कर्णसिंह ने उसके कई भाग कर उनमे बाट दिये। शेखा के ज्येष्ठ पुत्र हरा के वशज को पूगल तथा २५२ गाव, दूसरे पुत्र केवान के दो पुत्रो मे से एक को भीखमपुर तथा ८४ गाव तथा दूसरे को वरसलपुर एव ४१ गाव और तीसरे पुत्र बाघा के वशज को रायमलवाली तथा १८४ गाव बटवारे मे मिले[1]।

शाहजहा के २२ वे राज्यवर्ष (वि० स० १७०५-६=ई० स० १६४८-६) में कर्णसिंह का मनसब बढकर दो हजार जात तथा दो हजार सवार का हो गया और सआदतखा के स्थान में वह बादशाह की ओर से दौलताबाद का क़िलेदार नियत हुआ। लगभग एक वर्ष बाद ही उसके मनसब मे पुन वृद्धि होकर वह ढाई हजार जात और दो हजार सवार का मनसबदार हो गया[2]।

कर्णसिंह के मनसब में वृद्धि

सन् जुलूस २६ (वि० स० १७०९ = ई० स० १६५२) मे कर्णसिंह का मनसब बढ़कर तीन हजार जात और दो हजार सवार का हो गया[3]।

कर्णसिंह का जवारी पर चढाई

अनन्तर जब सुलतान (शाहजादा) औरगजेब की नियुक्ति बादशाह ने दक्षिण मे की तो कर्णसिंह को भी उसके साथ रहने दिया। औरगाबाद सूबे के

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४०। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४९७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३५।

(२) उमराए हनूद, पृ० २९८। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ८६।

(३) उमराए हनूद, पृ० २९८। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ८९।

अंतर्गत जवार का प्रांत लेना निश्चित हो चुका था, इस कारण पूर्वोक्त शाहजादे की सम्मति पर वहां का वेतन कर्णसिंह के मनसब में नियत करके उसे उस प्रांत में भेजा गया। वहां के जमींदार की सामर्थ्य कर्णसिंह का सामना करने की न थी, अतएव उसने धन आदि भेंट में देकर वहां की तहसील उगाहना अपने जिम्मे ले लिया और अपने पुत्र को ओल (जमानत) में उसके साथ कर दिया[1]। तब कर्णसिंह वहां से लौटकर शाहजादे के पास चला गया[2]।

कर्णसिंह की दक्षिण में नियुक्ति

हिजरी सन् १०६८ (वि० सं० १७१४-१५=ई० स० १६५७-५८) में शाहजहां के बीमार पड़ने पर सल्तनत का सारा कार्य दाराशिकोह[3] ने अपने हाथ में ले लिया, जिससे अन्य शाहजादों के दिल में खटका हो गया और प्रत्येक बादशाह बनने का उद्योग करने लगा। शाहजादा शुजा बंगाल से और औरंगजेब दक्षिण से अपने सब सैन्य के साथ चला। उधर मुराद भी गुजरात की तरफ से अपनी सेना के साथ रवाना हुआ। औरंगजेब ने उस (मुराद) को बादशाह बनाने का लालच देकर अपने पक्ष में मिला लिया। इधर दाराशिकोह ने, जिसके हाथ में सल्तनत थी, शुजा के मुक़ाबले में अपने शाहजादे सुलेमान शिकोह को और औरंगजेब तथा मुराद के सम्मिलित सैन्य को रोकने के लिए जोधपुर के महाराजा

(१) उमराए हनूद में केवल इतना लिखा है कि कर्णसिंह औरंगज़ेब के साथ की दाक्षिण की प्रत्येक लड़ाई में शामिल था (पृ० २६८)।

दयालदास की ख्यात में भी बादशाह द्वारा कर्णसिंह को जवारी का परगना मिलना एवं उसका वहां अपना थाना स्थापित करना लिखा है (जि० २, पत्र ४०), परन्तु उपर्युक्त ख्यात के अनुसार इस घटना का संवत् १७०१ (ई० स० १६४४) पाया जाता है, जो फ़ारसी तवारीख़ के कथन से मेल नहीं खाता। साथ ही उसमें वहां के स्वामी का नाम नेमशाह लिखा है। 'मआसिरुल् उमरा' में ब्रैकेट में उसका नाम श्रीपति दिया है।

(२) व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ८६-७।

(३) बादशाह शाहजहां का ज्येष्ठ पुत्र।

जसवन्तसिंह एव कासिमखा को रवाना किया। औरगज़ेब का युद्ध का विचार देख महाराजा कर्णसिंह ने स्वय किसी शाहजादे का पक्ष न लेना चाहा और धर्मातपुर के युद्ध के पहले ही वह शाहजादे की आज्ञा बिना बीकानेर को चला गया[1]। महाराजा जसवतसिंह पर धर्मातपुर (फतिहाबाद) में विजय पाकर दोनो शाहजादे आगे बढे और आगरे के पास समूनगर मे शाहजादे दाराशिकोह पर विजय पाकर औरगजेब आगरे पहुचा। फिर बुड्ढे बादशाह शाहजहा को कैद कर वि० स० १७१५ श्रावण सुदि ३ (ई० स० १६५८ ता० २३ जुलाई) को वह मुगल साम्राज्य का स्वामी बन गया।

महाराजा कर्णसिंह औरगजेब के पक्ष में न रहकर बिना आज्ञा बीकानेर चला गया था। इसका ध्यान औरगजेब के दिल मे इतना रहा कि सिंहासनारूढ़ होने के तीसरे साल (वि० स० १७१७ = ई० स० १६६०) उसने अमीरखा ख्वाफी को कर्णसिंह पर भेजा, जिसके बीकानेर की सीमा पर पहुचते ही वह (कर्णसिंह) अपने पुत्र अनूपसिंह तथा पद्मसिंह के साथ दरबार मे उपस्थित हो गया। तब बादशाह ने उसका मनसब बहाल करके उसकी नियुक्ति दक्षिण मे कर दी[2]।

---

(१) फ़ारसी तवारीखो के उपर्युक्त कथन से तो यही सिद्ध होता है कि शाहजहा के चारो पुत्रो मे राज्य के लिए परस्पर जो युद्ध हुआ उसमे कर्णसिंह ने किसी ओर से भाग नहीं लिया। इसके विपरीत अन्य पुस्तक मे यह लिखा मिलता है कि कर्णसिंह के दो पुत्र (केसरीसिंह तथा पद्मसिंह जो शाही सेवक थे) तख्त के लिए होनेवाली लड़ाइयों में औरगज़ेब की ओर से शामिल थे। उनमे से एक केसरीसिंह को उसकी वीरता के लिए औरगज़ेब ने लाहोर से दिल्ली आते समय मार्ग में मीनाकारी के काम की एक तलवार भेंट की, जो राज्य में अब तक सुरक्षित है (पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३५)।

(२) मुशी देवीप्रसाद, औरगज़ेबनामा, भाग १, पृ० ५०। उमराए हनूद, पृ० २६८। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा, (हिन्दी), पृ० ८८। सर जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री ऑव् औरगज़ेब, जि० ३, पृ० २६३० (अगस्त ई० स० १६६० मे फौज भेजना लिखा है)।

सन् जुलूस ६ (वि० स० १७२३ = ई० स० १६६६) में बादशाह ने कर्णसिंह को दिलेरखां दाऊदजई के साथ चांदा के जमींदार[1] को दंड देने के लिए भेजा। फिर कर्णसिंह से कुछ ऐसी बात हो गयी, जिससे उसे बादशाह का कोप-भाजन बनना पड़ा। बादशाह उससे इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने उसकी जागीर तथा मनसब जब्त कर लिया और उसके स्थान में उसके ज्येष्ठ पुत्र अनूपसिंह को बीकानेर का राज्य तथा ढाई हज़ार ज़ात एवं दो हज़ार सवार का मनसब दिया[2]।

कर्णसिंह का चांदा के जमींदार पर भेजा जाना

फ़ारसी तवारीख़ों के उपर्युक्त कथन से ज्ञात होता है कि बादशाह कर्णसिंह पर बहुत ही रुष्ट हुआ, परन्तु उसका कारण उनमें कुछ भी नहीं बतलाया है। ख्यातों में इस घटना से सम्बन्ध रखनेवाला जो वृत्तान्त दिया है उससे इसपर बहुत प्रकाश पड़ता है अतएव उसका उल्लेख करना आवश्यक है।

कर्णसिंह को 'जंगलधर बादशाह' का खिताब मिलना

वैसे तो कई मुसलमान बादशाहों की अभिलाषा इतर जातियों को मुसलमान बनाने की रही थी, परन्तु औरंगज़ेब इस मार्ग में आगे बढ़ना चाहता था। उसने हिन्दू राजाओं को मुसलमान बनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए काशी आदि अनेक तीर्थ-

(१) इसका असली नाम जलालख़ां था और यह बहादुरख़ां रुहेला का छोटा भाई था। इसे आलमगीर के समय में पांच हज़ारी मनसब प्राप्त था। हिजरी सन् १०९४ (वि० सं० १७३९-४० = ई० स० १६८३) में दक्षिण में इसकी मृत्यु हुई।

(२) उमराए हनूद, पृ० २११। ब्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ८८। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४९८।

औरंगज़ेब के सन् जुलूस १० ता० १६ रबीउल्अव्वल (हि० स० १०७८ = वि० सं० १७२४ आश्विन वदि ४ = ई० स० १६६७ ता० २७ अगस्त) के फ़रमान से भी फ़ारसी तवारीख़ों के उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। इस फ़रमान से पाया जाता है कि बादशाह कर्णसिंह से अत्यन्त ही अप्रसन्न हो गया था, इसलिए उसने बीकानेर का राज्य और मनसब अनूपसिंह के नाम कर दिया।

स्थानों के देवमदिरो को नष्ट कर वहा मसजिदे बनवाना आरभ किया। ऐसी प्रसिद्धि है कि एक समय बहुतसे राजाओ को साथ लेकर बादशाह ने ईरान (?) की ओर प्रस्थान किया और मार्ग मे अटकम डेरे हुए। औरगजेब की इस चाल मे क्या भेद था, यह उसके साथ जानेवाले राजपूत राजाओं को मालूम न होने से उनके मन मे नाना प्रकार के सन्देह होने लगे, अतएव आपस मे सलाहकर उन्होने साहबे के सैय्यद फकीर को, जो कर्णसिंह के साथ था, बादशाह के असली मनसूबे का पता लगाने को भेजा। उस फकीर को अस्तखा से जब मालूम हुआ कि बादशाह सब को एक दीन करना चाहता है, तो उसने तुरत इसकी खबर कर्णसिंह को दी। तब सब राजाओं ने मिलकर यह राय स्थिर की कि मुसलमानों को पहले अटक के पार उतर जाने दिया जाय, फिर स्वय अपने अपने देश को लौट जाये। बाद मे ऐसा ही हुआ। मुसलमान पहले ही पार उतर गये। इसी समय आबेर से जयसिंह की माता की मृत्यु का समाचार पहुचा, जिससे राजाओं को १२ दिन तक और रुक जाने का अवसर मिल गया, परन्तु उसके बाद फिर वही समस्या उत्पन्न हुई। तब सब के सब कर्णसिंह के पास गये और उन्होने उससे कहा कि आपके बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता। आप यदि सब नावें डुबवा दे तो हमारा बचाव हो सकता है, क्योंकि ऐसा होने से देश को प्रस्थान करते समय शाही सेना हमारा पीछा न कर सकेगी। कर्णसिंह ने भी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और धर्मरक्षा के लिए बादशाह का कोपभाजन बनना पसन्द किया। निदान ऐसा ही किया गया और इसके बदले में समस्त राजाओ ने कर्णसिंह को 'जगलधर पादशाह' का खिताब दिया[1]। साहबे के फकीर को उसी दिन से

---

(१) जयपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

'बादशाह ने जयसिंह (मिर्ज़ा राजा) को कहा कि तुम सब राजाओं में बड़े हो, सो हम कहें वैसा करो। इसपर जयसिंह ने इस बात का भेद पाकर बादशाह को निवेदन किया कि सिर तो हमने बेचा, परन्तु धर्म बेचा नहीं। कई दिन पीछे सब राजाओं को साथ लेकर बादशाह अटक गया और राजाओ को आज्ञा दी कि सब अटक

उतरे। तब राजाओं ने जयसिंह के डेरे मे इकट्ठे होकर सलाह की—बादशाह हमको अटक के पार क्यो ले जाता है, इसका कारण ठीक ठीक ज्ञात नही। राजाओ ने जयसिंह से कहा कि इसका निश्चय आप से होगा। फिर जयसिंह ने सूरजमल भोमिये को बुलाकर सारे समाचार कहे। उसने कहा कि बादशाह तुम सब को अपने खाने मे शामिल करेगा। यह बात जयसिंह ने राजाओ से कही तो उन्होंने मिलकर यह बात स्थिर की कि कल किसी बात की खुशी कर यहा डेरा रख दे और बादशाह को अटक पार हो जाने दे। फिर सब लोग अपने अपने घर चल दे। बादशाह का हुक्म पहुचा कि प्रात काल अटक के पार डेरा होगा। इसपर बीकानेर के राजा को कहलाया कि तुम खुशी करावो और यह बात प्रसिद्ध करो कि मेरे महाराजकुमार का जन्म हुआ है। तब उसने सब राजाओ के यहा सूचना दिलवा, उनको अपने यहा बुलवाये।

'जब यह खबर औरगज़ेब ने सुनी और प्रात काल ही ताकीद की कि अवश्य हाज़िर हो, तो सब राजाआ ने मिलकर बादशाह से निवेदन कराया कि आप तो लवाजमे सहित अटक पार उतरे और हम सब कल हाज़िर होगे। फिर सब मुसलमान तो अटक पार उतर गये और नावे इकट्ठी करवाकर आग लगवा दी। यह खबर बादशाह ने सुनी तो वह अपने वज़ीर के साथ बीकानेर के राजा के डेरे मे आया। सब राजाओ ने उससे सलाम की। बादशाह ने कहा तुमने सब नावे जला दी ? तब सब राजाओ ने अर्ज़ किया कि आपने मुसलमान बनाने का विचार किया, इसलिए आप हमारे बादशाह नही और हम आपके सवक नही। हमारा तो बादशाह बीकानेर का राजा है, सो जो वह कहेगा हम करेंगे, आपकी इच्छा हो वह आप करें। हम धर्म के साथ है, धम छोड़ जीवित रहना नही चाहते। बादशाह ने कहा — तुमने बीकानेर के राजा को बादशाह कहा सो अब वह जगलपति बादशाह है। फिर उसने सब की तसल्ली कर कुरान बीच मे रख सौगध खाई कि अब ऐसी बात तुमसे नही होगी तथा तुम कहोग वैसा करूगा, तुम सब दिल्ली चलो, तब वे दिल्ली गये।'

(जयपुर के पुरोहित हरिनारायण, बी० ए० के
सग्रह की हस्तलिखित ख्यात से)।

कर्णसिंह को 'जगलधर पातशाह' का ख़िताब मिलने की बात निर्मूल नही है (कारण चाहे जो हो), क्योंकि उसी के राज्यकाल मे उसके विद्यानुरागी ज्येष्ठ कुवर अनूपसिंह ने शुकसप्तति (शुकसारिका) नामक सस्कृत पुस्तक का राजस्थानी भाषा में अनुवाद कराया, जिसके अनुवादकर्त्ता ने कर्णसिंह को 'जगल का पतसाह' लिखा है—

करि प्रणाम श्रीसारदा अपनी बुद्धि प्रमाण।
सुकसारिक वार्त्ता करू द्यो मुझ अक्षर दान ॥ १ ॥

बीकानेर राज्य में प्रतिघर प्रतिवर्ष एक पैसा उगाहने का हक़ है[1]। अनन्तर सब अपने अपने देश चले गये।

बादशाह को जब यह सारा समाचार विदित हुआ तो वह कर्णसिंह पर बहुत नाराज हुआ और दिल्ली लौटने पर उसने उसके ऊपर सेना भेज दी। बाद मे औरगजेब ने सेना को वापस बुला लिया और एक अहदी भेजकर कर्णसिंह को दरबार मे बुलवाया। कर्णसिंह के कुछ साथियो की राय थी कि इस अवसर पर उसे स्वय न जाकर अपने पुत्र अनूपसिंह को भेज देना चाहिये, परन्तु वीर कर्णसिंह ने इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया और वह स्वय बादशाह की सेवा मे गया। उसके साथ उसके दो पुत्र—केसरीसिंह तथा पद्मसिंह—भी गये। इसी बीच कर्णसिंह के अनौरस (पासवानिया) पुत्र वनमालीदास ने बीकानेर का राज्य मिलने के बदले मुसलमान हो जाने की अभिलाषा प्रकट की। बादशाह ने उसे आश्वासन देकर कर्णसिंह को दरबार मे पहुचते ही मरवा देने का प्रबन्ध किया[2], परन्तु कर्णसिंह के साथ केसरीसिंह तथा पद्मसिंह

बादशाह का कर्णसिंह को औरगाबाद भेजना तथा उसकी जागीर अनूपसिंह को देना

विक्रमपुर सुहामणो सुख सपति की ठौर।
हिदूस्थान हीदूधरम असो सहर न और ॥ २ ॥
तिहा तपै राजा करण जगळ कौ पतिसाह।
ताको कुवर अनोपसिह दाता सूर दुवाह ॥ ३ ॥

(हमारे सग्रह की प्रति से)।

अतएव यह मानना पड़ेगा कि ख्यातों के इस कथन मे सत्य का कुछ अश अवश्य है।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४५। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३५ ६।

(२) जोनाथन स्कॉट (Jonathan Scott) ने दतिया के राजा के यहा से प्राप्त राय दलपत बुंदेला के एक सेवक की लिखी हुई फारसी तवारीख़ के अंग्रेज़ी अनुवाद में हि० स० १०७७ (ई० स० १६६७=वि० स० १७२४) के प्रसङ्ग मे लिखा है—

"बीकानेर का स्वामी राव कर्ण जो दो हज़ारी मनसबदार और कुछ समय तक

के भी आ जाने से उसका अभीष्ट सिद्ध न हो सका। तब बादशाह ने कर्णसिंह को औरंगाबाद में भेज दिया, जहां वह अपने नाम से बसाये हुए कर्णपुरा में रहने लगा[1]।

दौलताबाद (दक्षिण) में किलेदार भी रहा, इन दिनों शाही कार्य की तरफ़ बेपरवाही रखता है और उसके बुरे बरताव का हाल बादशाह तक पहुंच चुका है। उसके पुत्र ने अपने बाप से विरोध किया है और इस समय बीकानेर की ज़मींदारी अपने लिए प्राप्त कर ली है। इससे राव कर्णसिंह दिन दिन सेवा से विमुख रहता है और इस समय दिलेरख़ां के साथ होने पर भी उसकी आज्ञा की उपेक्षा करता है, क्योंकि उसकी आय बन्द हो गई है। रुपयों के अभाव में वह रात्रि के समय अपने राजपूतों सहित शाही छावनी को और कूच के समय आसपास के गांवों को भी लूटता है। इस बात का सबूत मिलने पर दिलेरख़ां ने अपनी बदनामी होने के भय से डरकर बादशाह को उसकी शिकायत लिखी, जिसपर यह आज्ञा मिली कि यदि उसका फिर ऐसा विचार हो तो उसे मार डाले अथवा क़ैद करे। राव भावसिंह हाड़ा (बूंदी का) के वकील ने, जो शाही दरबार में रहता था, यह ख़बर पाते ही तुरन्त अपने स्वामी को, जो दिलेरख़ां के साथ रहता था, सूचना दी।

'इस आज्ञा के पाते ही दूसरे दिन दिलेरख़ां शिकार का बहाना कर राव कर्ण के डेरों के पास होकर निकला और उससे कहलाया कि शिकार के आनन्द में वह सम्मिलित हो। राव कर्ण उसके छल से अपरिचित होने से हाथी पर सवार होकर अपने राजपूतों सहित ख़ान से जा मिला। सौभाग्य से राव भावसिंह इस बात की ख़बर पाते ही अपने राजपूतों सहित उसके पास पहुंचा और उसने अपने मित्र (कर्णसिंह) को ख़ान से अलग कर उसकी जान बचाई। दिलेरख़ां की इच्छा पूर्ण न होने से वह औरंगाबाद को चला गया, जहां यह दोनों राव (कर्णसिंह और भावसिंह) कुछ समय पीछे पहुंचे।''

(हिस्ट्री ऑव् दि डेकन, जि० २, पृ० १९२०
सन् १७९४ ई० का लन्दन का संस्करण)।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट पृ० ३७-३८।

बादशाह औरंगज़ेब के सन् जुलूस ७ ता० १४ जमादिउस्सानी (हि० स० १०७५ = वि० सं० १७२१ माघ वदि १ = ई० स० १६६४ ता० २३ दिसंबर) के फ़रमान में भी लिखा है—'औरंगाबाद सूबे के अन्तर्गत बनवारी और कर्णपुर के ज़िले राव कर्ण के हैं।'

फारसी तवारीखो मे लिखा है कि औरगाबाद पहुचने के लगभग एक वर्ष बाद कर्णसिंह का देहात हो गया[1]। कर्णसिंह की स्मारक छतरी के लेख से पाया जाता है कि वि० स० १७२६ आषाढ सुदि ४ (ई० स० १६६६ ता० २२ जून) मगलवार को उसकी मृत्यु हुई[2]। मृत्यु से पूर्व एक पत्र में उसने

मृत्यु

उपर्युक्त ज़िलो में उस (महाराजा कर्णसिंह) ने कर्णपुरा, केसरीसिहपुरा और पद्मपुरा गाव नये बसाये थे। बीकानेर राज्य के पत्रो से ज्ञात होता है कि दक्षिण के इन दोनो परगनों मे से एक गाव पनवाड़ी महाराजा अनूपसिह के समय वि० स० १७४३ (ई० स० १६८६) में वल्लभ सम्प्रदाय के औरगाबाद के गोकुलजी विट्ठलनाथजी के मदिर को भेट कर दिया गया, जिसकी वार्षिक आय एक लाख दाम (ढाई हज़ार रुपये) थी। कर्णपुरा, केसरीसिंहपुरा और पद्मपुरा पर ई० स० १८०४ (वि० स० १८६०) तक बीकानेर राज्य का अधिकार रहा। वर्त्तमान महाराजा साहब के समय में जब अग्रेज़ सरकार ने औरगाबाद की छावनी को बढ़ाना चाहा, तब इन गावों को लेने की आवश्यकता समझ, इनके बदले में उतनी ही आय के पजाब ज़िले के दो गाव, रत्ताखेड़ा और बावलवास तथा पचीस हज़ार रुपये बीकानेर राज्य को नक़द देकर इन्हें अपने अधिकार मे कर लिया।

(१) उमराए हनूद, पृ० २६६। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ८६। बाकीदास कृत 'ऐतिहासिक बातें' मे भी कर्णसिंह का औरगाबाद मे मरना लिखा है (सख्या ११७)।

टॉड ने बीकानेर में उसका मरना लिखा है (राजस्थान, जि० २, पृ० ११३६), जो ठीक नहीं है। पाउलेट लिखता है कि कर्णसिंह की मृत्यु के समय चूरू का ठाकुर कुशलसिंह उसके पास था (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३८)।

(२) अथ सवत्सरेऽस्मिन् नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् स० १७२६ वर्षे शाके १५९१ प्र० महामागल्यप्रदआसाढमासे शुक्लपक्षे तिथौ ४ भौमवारे

श्रीकर्ण श्रीविष्णुपुर प्राप्त।

ख्यातों आदि में भी यही समय दिया है।

अनूपसिंह को बनमालीदास के षड्यन्त्रो से सावधान रहने को लिखा था[1]।

कर्णसिंह के आठ पुत्र हुए[2]—

(१) रुक्मागद चन्द्रावत की बेटी राणी कमलादे से अनूपसिंह। (२) खडेला के राजा द्वारकादास की बेटी से केसरीसिंह। (३) हाडा वैरीशाल की बेटी से पद्मसिंह[3]। (४) श्रीनगर के राजा की पुत्री राणी अजबकुवरी से मोहनसिंह—जन्म वि० स० १७०६ चैत्र सुदि १४ (ई० स० १६४६ ता० १७ मार्च)। (५) देवीसिंह। (६) मदनसिंह। (७) अजबसिंह तथा (८) अमरसिंह।

राणिया तथा सतति

उसकी एक राणी उदयपुर के महाराणा कर्णसिंह की पुत्री थी[4]। उससे नदकुवरी का जन्म हुआ, जिसका विवाह रामपुरा के चद्रावत हठीसिंह से हुआ था। जब महाराणा जगत्सिंह की माता (कर्णसिंह की राणी) जाबुवती सौरो की यात्रा को गई, तब नदकुवरी भी उसके साथ थी। वहा जब उस(जाबुवती)ने चादी की तुला की, उस समय अपनी दोहिती नदकुवरी को भी अपने साथ तुला मे बिठलाया था[5]।

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४७।

(२) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० २००। दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४१ और ४७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३८।

(३) यह कोकण में काम आया (बाकीदास, ऐतिहासिक बाते, सख्या ११७)।

(४) यह विवाह महाराणा जगत्सिंह (प्रथम) के समय में हुआ था (मेरा 'राजपूताने का इतिहास', जि० २, पृ० ८३०, टि० १)।

(५) बीकानेरेशकर्णस्य सुता राम पुरा प्रभो।
हठीसिहस्य सत्पत्नी उदारा नदकुवरी ॥ ४१ ॥
मातामह्या जाबुवत्या सगेरूप्या तुला व्यधात्।
पूर्वे वर्षे जाबुवत्या आज्ञया नदकुवरी ॥ ४२ ॥

राजप्रशस्तिमहाकाव्य, सर्ग ५। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५१०।

मेरा 'राजपूताने का इतिहास', जि० २, पृ० ८१८।

बीकानेर के शासकों मे कर्णसिंह का स्थान बड़े महत्व का है, क्योकि कट्टर मुगल शासक औरगजेब से बीकानेर के राजाओं मे सबसे पहले उसका ही सम्पर्क हुआ था। बादशाह शाहजहा के समय मे उसका सम्मान बड़े ऊचे दर्जे का था। फतहखा, शाहजी एव परेडे पर की चढ़ाइयों में उसने भी शाही सेना के साथ रहकर बड़ी वीरता दिखलाई थी। पीछे से जवारी का परगना लेने का निश्चय होने पर शाहजहा ने उसे ही वहा का शासक नियुक्त कर भेजा था। वह राजनीति का भी अच्छा ज्ञाता था। शाहजहा के बीमार पडने पर जब उसके चारो पुत्रों में राज्यप्राप्ति के लिए लडाइया होने लगी, उस समय वह अपने देश लौट गया और चुप-चाप युद्ध की गति विधि देखने लगा। किसी एक का भी साथ देना, उसके असफल होने पर, कर्णसिंह के लिए हानिप्रद ही सिद्ध होता। शाहजादे औरगजेब के साथ कई लडाइयो मे रहने के कारण वह उसकी शक्ति से परिचित हो गया था। वह समझ गया था कि औरगजेब ही अपने भाइयो मे सबसे अधिक चतुर और बलशाली है, जिससे उसने अपने दो पुत्रो—पद्मसिंह और केसरीसिंह—को उसके सग कर दिया।

महाराजा कर्णसिंह का व्यक्तित्व

औरगजेब की मनोवृत्ति और कुटिल चाल उससे छिपी न थीं, इसलिए उसके सिंहासनारूढ होने पर वह उसकी तरफ से सदैव सतर्क रहा करता था। वह समय हिन्दुओ के लिए सकट का था। आये दिन मदिर तोडे जाते थे और हिन्दुओ को मुसलमान धर्म ग्रहण करने पर बाध्य किया जाता था। ख्यातों के कथन के अनुसार औरगजेब की इच्छा हिन्दू राजाओं को मुसलमान बनाने की थी, परतु कर्णसिंह ने उसकी यह इच्छा पूरी न होने दी। ऐसी विपदापन्न दशा में धर्म और जातिप्रेम में रगा हुआ कर्णसिंह ही उन(राजाओ)की सहायतार्थ सामने आया। इस साहसिक कार्य के लिए समस्त राजाओ ने मिलकर उसे 'जगलधर पादशाह' की उपाधि दी, जो अब तक उसके वश में चली आती है। बाद में बादशाह द्वारा बुलवाये जाने पर सरदारों के मना करने पर भी वह अपने दो छोटे पुत्रों

के साथ दरबार मे उपस्थित हुआ ।

कर्णसिंह स्वय विद्वान्, विद्वानों का आश्रयदाता और विद्यानुरागी राजा था । उसके आश्रय मे कई ग्रथ बने, जिनमे से कुछ का ब्योरा, जो हमे मालूम हो सका, नीचे लिखे अनुसार है—

(१) साहित्यकल्पद्रुम[1]—यह ग्रथ कई विद्वानो की सहायता से कर्णसिंह ने बनाया ।

(२) कर्णभूषण[2] (पडित गगानद मैथिल रचित) ।

---

(१) ॥ इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीशूरसिहसुधोदधिसभवश्रीकर्णसिहविद्वत्सवर्द्धिते साहित्यकल्पद्रुमे अर्थालकारनिरूपण नाम दशमस्तबक ॥ समाप्तश्चाय साहित्यकल्पद्रुमनिबध ॥ शके १५८८ पराभवनामसवत्सरे वैशाखशुद्ध ५ रविवारदिने लिखित श्यामदास अबष्ठ काशीकरेण मुकाम अवरगाबाद कर्णपुरा मध्ये लिखित ॥

अलकार सम्बन्धी यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है और बड़े बड़े ३८३ पत्रो में लिखा हुआ है । इसके प्रारभिक भाग मे महाराजा रायसिंह से लगाकर महाराजा कर्णसिंह तक का वशविवरण भी दिया है ।

(२) प्रारभिक अश—

अस्ति स्वस्तिवहाहशा निवसतिर्लक्ष्म्या भुवोर्भूषण
वीकानेरिपुरी कुवेरनगरीसौभाग्यनिदाकरी । ।
कैलासाचलचारुभास्वरपृथुप्रासादपालिद्युति-
व्याजेनोपहसत्युपर्युपगता या राजधानी हरे ॥
तत्रास्ते धरणीपति पृथुयशा श्रीकर्ण इत्याख्यया
गोविंदाङ्घ्रियुगारविदविलसच्चिन्तालिरत्युन्नत ।
राधेयभ्रममात्मनि त्रिजगता चित्ते स्थिरी कुर्वता
दीयतेऽर्थिगणाय येन सतत हेमाश्वहस्त्यादय ॥
आज्ञया तस्य भूमिन्द्रोर्न्यायकाव्यकलाविद ।
गगानदकवीद्रेण क्रियते कर्णभूषण ॥

(३) काव्य डाकिनी[1] (पडित गगानन्द मैथिल रचित) ।

(४) कर्णावतस[2] (भट्ट होसिहक कृत) ।

(५) कर्णसन्तोष[3] (कवि मुद्गल कृत) ।

(६) वृत्तसारावली[4] ।

ये ग्रथ बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय मे अब तक विद्यमान हैं ।

महाराजा अनूपसिंह

महाराजा कर्णसिंह के ज्येष्ठ कुवर अनूपसिंह का जन्म वि० स० १६६५ चैत्र सुदि ६ (ई० स० १६३८ ता० ११ मार्च) को हुआ था[5] । उसके पिता की

अतिम अश—

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीकर्णसिहकारिते मैथिलश्रीगगानदकविराजविरचिते कर्णभूषणे रसनिरूपणो नाम पचम परिच्छेद ॥

(१) प्रारभिक अश—

काव्यदोषाय बोधाय कवीना तमजानता ।
गगानदकवीन्द्रेण क्रियते काव्यडाकिनी ॥

अतिम अश—

सवत् १७२२ वर्षे वैशाख सुदि ४ दिने शनिवारे ॥ श्रीबीकानयरे महाराजाधिराजमहाराजा श्री ७ कर्णसिहजी विजयराज्ये ॥ श्री ॥ श्री महाराजकुमार श्री ७ अनूपसिहजी पुस्तक लिखापिता ॥

(२, ३, ४) ऊपर लिखे हुए ६ ग्रन्थो में से केवल पहले ३ हमारे देखने में आये, जिनके मूल अवतरण ऊपर उद्धृत किये गये हैं । अतिम ३ (सख्या ४, ५, ६) के नाम प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुशी देवीप्रसाद के 'राजरसनामृत' (पृ० ४५-६) से लिये गये है ।

(५) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४१ । वीरविनोद, भाग २, पृ० ४९६ ।

टॉड ने अनूपसिंह को चौथा पुत्र लिखा है (राजस्थान, जि० २, पृ० ११३६), परन्तु उसका यह कथन कल्पित ही है, क्योकि अन्य किसी तवारीख़ अथवा ख्यात से इस कथन की पुष्टि नही होती ।

जन्म और गद्दीनशीनी

विद्यमानता मे ही बादशाह ने उसे दो हजार जात एव डेढ हजार सवार का मनसब प्रदान कर बीकानेर का राज्याधिकार सौंप दिया था[1]। वि० स० १७२६ (ई० स० १६६९) में कर्णसिंह की मृत्यु हो जाने पर वह गद्दी पर बैठा और औरगाबाद तथा बीजापुर का स्वामी बना रहा[2]। उसकी गद्दीनशीनी के समय बादशाह ने एक फरमान उसके पास भेजा, जिसमें भविष्य में योग्यतापूर्वक बीकानेर का राज्य कार्य चलाने के लिए उसे लिखा[3]।

छत्रपति शिवाजी[4] के आतक के कारण दक्षिण में बादशाह का

---

(१) औरगज़ेब का सन् जुलूस १० ता० १६ रबीउलअव्वल (हि० स० १०७८ = वि० स० १७२४ आश्विन वदि ४ = ई० स० १६६७ ता० २७ अगस्त) का फरमान।

दयालदास की ख्यात मे लिखा है कि मुहता दयालदास कोठारी जीवनदास, वैद राजसी आदि के दिल्ली जाकर उद्योग करने से बादशाह ने बीकानेर का मनसब अनूपसिंह को दे दिया (जि० २, पत्र ४७)। पाउलेट लिखता है कि कुछ ही दिनों पीछे बीकानेर का मनसब आदि बादशाह ने बनमालीदास के नाम कर दिया, जिसपर अनूपसिंह दिल्ली गया, जहा जाने से उसका पैतृक मनसब फिर उसे ही मिल गया (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३८)। यह कथन कहा तक ठीक है, यह कहा नहीं जा सकता, क्योंकि अन्य किसी तवारीख़ से इसकी पुष्टि नहीं होती। बनमालीदास का उल्लेख औरगज़ेब के एक फ़रमान मे आया है, पर उससे तो यही ज्ञात होता है कि शाही दरबार मे उसका प्रवेश अनूपसिंह के ही कारण हुआ था। उक्त फ़रमान में स्पष्ट लिखा है कि उस कृपापात्र (अनूपसिंह) की सिफ़ारिश से ही उस(बनमालीदास)-का प्रवेश शाही दरबार मे हुआ है (सन् जुलूस १० ता० १६ रबीउलअव्वल का फ़रमान)।

(२) डा० जेम्स बर्जेस, दि क्रोनोलोजी ऑव् मॉडर्न इडिया, पृ० ११८।

(३) सन् जुलूस १२ ता० २२ सफर (हि० स० १०८० = वि० स० १७२६ श्रावण वदि ६ = ई० स० १६६९ ता० ११ जुलाई) का फ़रमान।

(४) इतिहास प्रसिद्ध मरहटा राज्य का सस्थापक—शाहजी का पुत्र। इसका जन्म वि० स० १६८६ चैत्र वदि ३ (ई० स० १६३० ता० १९ फ़रवरी) शुक्रवार को हुआ था।

प्रभुत्व जमना कठिन हो रहा था। सूरत की लूट के बाद शिवाजी ने एक बड़ी सेना एकत्र कर ली थी, जिससे बादशाह को अपनी नीति में परिवर्तन कर वि० सं० १७२७ पौष वदि ११ (ई० स० १६७० ता० २८ नवम्बर)[1] को

अनूपसिंह का दक्षिण में भेजा जाना

महाबतखां को दक्षिण में भेजना पड़ा[2]। इस अवसर पर महाराजा अनूपसिंह, राजा अमरसिंह आदि कई अन्य मनसबदारों को भी खिलअत आदि देकर बादशाह ने उसके साथ भेजा[3]। महाबतखां की अध्यक्षता में मुगलों ने नवीन उत्साह से मरहटों पर आक्रमण किया। पहले उन्हें कुछ सफलता मिली और आौंध तथा पट्टा पर अधिकार कर उन्होंने ई० स० १६७२ (वि० स० १७२६) में साल्हेर को घेर लिया। इस समाचार के ज्ञात होते ही शिवाजी ने मोरोपन्त पिंगले तथा प्रतापराव गूजर को सैन्य एकत्र कर साल्हेर की रक्षार्थ जाने की आज्ञा दी। इधर महाबतखां ने भी इख़लासखां के साथ अपनी अधिकांश सेना को मरहटों का अवरोध करने के लिए भेजा। मरहटी सेना दो भागों में होकर आगे बढ़ रही थी, प्रतापराव गूजर पश्चिम की ओर से बढ़ रहा था तथा मोरोपन्त पिंगले साल्हेर के पूर्व से। इख़लासखां ने दोनों के बीच में पड़कर उनका नाश करने की चेष्टा की, परन्तु उसका प्रयत्न निष्फल गया। प्रायः १२ घंटे की लड़ाई के बाद ही इख़लासखां को भारी क्षति उठाकर रणक्षेत्र छोड़ना पड़ा। बची हुई थोड़ी सी फौज के बल पर साल्हेर को घेरने से कुछ लाभ निकलता न देख महाबतखां औरंगाबाद चला गया। साल्हेर को घेरने का नाशकारी परिणाम देखकर औरंगज़ेब विचलित हो गया, अतएव उसने तुरन्त

(१) सरकार, हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब, जि० ४, पृ० १९५।

(२) किंकेड एण्ड पारसनीज़, ए हिस्ट्री ऑव् दि मराठा पीपुल, जि० १, पृ० २३४-५। डा० जेम्स बर्जेस, दि क्रोनोलॉजी ऑव् मॉडर्न इण्डिया, पृ० ११५।

(३) उमराए हनूद, पृ० ६३। मुंशी देवीप्रसाद, औरंगज़ेबनामा, भाग २, पृ० ३०।

महाबतखा को वापस बुला लिया[1] और उसके स्थान मे बहादुरखा[2] की नियुक्ति दिलेरखा के साथ दक्षिण में कर दी। महाराजा अनूपसिंह पूर्व की भाति ही उन अफसरो के साथ दक्षिण मे रहा।

अनूपसिंह को बादशाह की तरफ से महाराजा का खिताब मिलना

प्रारभ मे, बहादुरखा दक्षिण मे सुचारु प्रबन्ध न कर सका, परन्तु कुछ दिनो बाद अवसर पाकर मुगलो ने डडा राजापुरी (राजापुर) के बन्दरगाह मे जाकर शिवाजी के बहुत से जहाज नष्ट कर डाले और उसके २०० नाविकों को बन्दी कर लिया। फिर उन्होने डडा राजापुरी पर आक्रमण किया, जहा का अध्यक्ष राघो बल्लाल अत्रे उनका सामना न कर सका। वि० स० १७२९ पौष सुदि ६ (ई० स० १६७२ ता० १५ दिसम्बर) को बीजापुर के स्वामी अली आदिलशाह का देहात हो गया। अली आदिलशाह के जीवनकाल मे उसके राज्य के अधिकाश भाग पर मुगलो और शिवाजी ने अधिकार कर लिया था। बीच में अली आदिल शाह तथा शिवाजी मे सन्धि स्थापित हो गई थी, पर उसके मर जाने पर शिवाजी ने उस सन्धि को तोड़कर पन्हाला पर पुन अधिकार कर लिया। उसका वास्तविक उद्देश्य हुबली को लूटने का था, अतएव अन्नाजी दत्तो की अध्यक्षता मे एक मरहटी सेना वहा भेजी गई, जिसने बीजापुर के

(१) किकेड एण्ड पार्सनीज़, ए हिस्ट्री ऑव् दि मराठा पीपुल, जि० १, पृ० २३५ ७।

मुशी देवीप्रसाद ने 'औरगज़ेबनामे' मे लिखा है कि महाबतख़ा आगरे से हुज़ूर में पहुचकर दक्षिण के युद्ध मे भेजा गया था, लेकिन पठानों से सलूक रखने के कारण वह पीछा बुला लिया गया (भाग २, पृ० ४०)।

(२) मुशी देवीप्रसाद के 'औरगज़ेबनामे' मे भी शाहज़ादे मुअज़्ज़म के वकीलो (महाबतख़ा आदि) के स्थान मे बहादुरख़ा की नियुक्ति दक्षिण में होना लिखा है (भाग २, पृ० ४२)। बहादुरख़ा औरगज़ेब का धाय भाई था। इसका पूरा नाम मलिकहुसेन था और यह मीर अबुल मआली ख्वाफ़ी का पुत्र था। पीछे से इसे ख़ान जहा बहादुर कोकल्ताश ज़फ़रजग का ख़िताब मिला। ई० स० १६९७ (वि० स० १७५४) में इसका देहात हुआ।

सैनिकों को परास्त कर वहां खूब लूट मचाई। उस स्थान में अंग्रेज़ों का भी एक दलाल रहता था। इस लूट में अंग्रेजों का भी बड़ा नुकसान हुआ, जिसपर उन्होंने मरहटों से हरजाना मांगा। पूरा हरजाना न मिलने के कारण, उन्होंने मुग़लों के उधर आने पर मरहटों से फिर हरजाने की मांग पेश की। वि० सं० १७३० (ई० स० १६७३) में जब बीजापुरवालों ने पुर्तगाली तथा अंग्रेजों को लूटना आरम्भ किया तो शिवाजी ने बहादुरखां को धन देकर किसी ओर का पक्ष ग्रहण न करने का वचन उससे ले लिया। फिर उस (शिवाजी) ने सेना सहित जल और स्थल दोनों मार्गों से बीजापुर पर स्वयं आक्रमण किया। पर्ली[1], सतारा, चन्दन, वन्दन, पांडवगढ़, नन्दगिरि, तथवाड़ा आदि[2] पर अधिकार करने के उपरान्त शिवाजी ने फोंदा[3] पर आक्रमण किया। मुसलमान सैनिक अपने इस अन्तिम आश्रय स्थान की रक्षा करने में तत्पर थे। जिस समय शिवाजी उन्हें परास्त करने में व्यस्त था, सूरत के बन्दरगाह से मुग़ल बेड़े ने बाहर आकर काफ़ी उत्पात मचाया, परंतु मरहटों ने अंत में उन्हें भगा दिया।

फोंदा की बहुत दिनों तक रक्षा करने में समर्थ होने से उत्साहित होकर बीजापुरवालों ने पन्हाला[4] लेने की दृष्टि से बीजापुर के पश्चिमी प्रदेश के हाकिम अब्दुलकरीम को उधर भेजा। इस समय शिवाजी की ओर से अब्दुलकरीम[5] के मार्ग में पड़नेवाले स्थानों को लूटने के लिए प्रतापराव गूजर भेजा गया। इस कार्य में उसे इतनी सफलता मिली कि अब्दुल-करीम को मरहटों के आगे अवनत होना पड़ा और उनसे सुलह कर उस (अब्दुलकरीम) ने अपनी जान बचाई, पर बीजापुर पहुंचकर फिर उसने

---

(१) सतारा ज़िले में सतारा से ६ मील दक्षिण पश्चिम में एक पहाड़ी गढ़।

(२) सतारा ज़िले के गढ़।

(३) पश्चिमी घाट का एक दुर्ग।

(४) बम्बई के कोल्हापुर राज्य का एक पहाड़ी किला।

(५) बहलोलखां का एक पठान सैनिक।

नई सेना एकत्र कर ली और पन्हाला की ओर अग्रसर हुआ। प्रतापराव गूजर ने अब्दुलकरीम को अपने हाथ से निकल जाने दिया था, इससे शिवाजी उसपर बहुत रुष्ट था और उसने उस(प्रतापराव)से कहला दिया था कि अब्दुलकरीम के सैन्य का नाश किये बिना वह अपना मुह न दिखावे। अतएव प्रतापराव बिना आगा पीछा बिचारे ही इस बार अपने साथियों सहित अब्दुलकरीम पर टूट पडा, परन्तु मुसलमानो की शक्ति अधिक होने से वह इसी युद्ध मे मारा गया। तब विजेता दूने उत्साह से आगे बढ़े पर हासाजी मोहिते-द्वारा आक्रमण किये जाने पर उन्हे फिर बीजापुर लौट जाना पडा[1]।

फारसी तवारीखो से पाया जाता है कि उपर्युक्त सब लडाइयों में अनूपसिंह मुसलमानो की ओर से बडी वीरता के साथ लडा था[2]। बहादुरखा ने दक्षिण मे शिवाजी से लडने मे बडी वीरता का परिचय दिया और बीजापुर तथा हैदराबाद के स्वामियो से पेशकशी वसूल करके शाही सेवा मे भिजवाई, अतएव सन् जुलूस १८ ता० २८ रबीउल्आखिर (वि० स० १७३२ श्रावण वदि ११ = ई० स० १६७५ ता० ८ जुलाई) को उसे खानजहा बहादुर जफरजग कोकल्ताश का खिताब एव बहुतसा पुरस्कार दिया गया[3]। इस अवसर पर उसके साथ के अमीरों को भी खिलअत आदि दी गई तथा बीकानेर के अनूपसिंह को महाराजा का खिताब मिला[4]।

---

(१) किंकेड एण्ड पारसनीस, हिस्ट्री ऑव् दि मराठा पीपुल, जि० १, पृ० २३६ ४३।

(२) उमराए हनूद, पृ० ६३। व्रजरत्नदास, मश्रासिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ६०।

(३) मुशी देवीप्रसाद, औरगज़ेबनामा, भाग २, पृ० ५५।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३६। अर्सकिन, राजपूताने का गैज़ेटियर, पृ० ३२२।

उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने एक करोड से अधिक रुपये के व्यय से राजसमुद्र नामक विशाल तालाब बनवाकर वि० स० १७३२ माघ सुदि ६ (ई० स० १६७६ ता० १४ जनवरी) को बडी धूमधाम से उसकी प्रतिष्ठा की। इस अवसर पर उस(राजसिंह)ने अपने बहनोई बीकानेर के स्वामी अनूपसिंह (जो उस उत्सव मे सम्मिलित न हो सका था) के लिए साढे सात हजार रुपये मूल्य का मनमुक्ति नाम का हाथी और पन्द्रह सौ रुपये मूल्य का सहणसिंगार घोडा तथा साढे सात सौ रुपये मूल्य का तेजनिधान नामक दूसरा घोडा एव बहुतसे वस्त्राभूषण जोशी माधव के साथ बीकानेर भेजे[1]।

महाराणा राजसिंह का हाथी, घोड़े और सिरोपाव भेजना

कुछ समय बाद दिलेरखा[2] तथा बहलोलखा ने बादशाह के पास शिकायत कर दी कि बहादुरखा विरोधियो से मिल गया है। इसपर बादशाह ने दिलेरखा को दक्षिण का हाकिम नियुक्त कर[3] बहादुरखा को वापस बुला लिया। अनूपसिंह पहले की तरह ही दक्षिण मे रक्खा गया तथा उसने दक्षिण के युद्धो मे दिलेरखा के साथ वीरता पूर्वक भाग लिया[4]।

अनूपसिंह का दिलेरखा के साथ दक्षिण मे रहना

---

(१) राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग, २०, श्लोक ६ १२।

(२) इसका वास्तविक नाम जलालखा था और यह बहादुरख़ा रोहिला का छोटा भाई था। इसकी मृत्यु दक्षिण मे हि० स० १०९४ (वि० स० १७४० = ई० स० १६८३) में हुई।

(३) मुशी देवीप्रसाद के 'औरगज़ेबनामे' में भी लिखा है कि सन् जुलूस १९ ता० ४ ज़िलहिज्ज (हि० स० १०८६ = वि० स० १७३२ फाल्गुन सुदि ६ = ई० स० १६७६ ता० २१ फ़रवरी) को दिलेरख़ा ख़िलअत आदि पाकर दक्षिण की ओर रवाना हुआ (भाग २, पृ० ६१)।

स्टोरिआ डो मोगोर—इर्विन-कृत अनुवाद (जि० २, पृ० २३०) में भी बहादुरख़ा को हटाकर दिलेरख़ा की दक्षिण मे नियुक्ति होना लिखा है।

(४) उमराए हनूद, पृ० ६३। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ९०।

दिलेरखां ने सर्वप्रथम गोलकुंडे पर आक्रमण किया[1], पर वहां उसे विशेष सफलता न मिली। फिर उसने बीजापुर पर आक्रमण कर आसपास के सारे प्रदेशों को उजाड़ दिया[2], परन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ, तब बादशाह ने वि० सं० १७३७ (ई० स० १६८०) में उसे वापस बुला लिया और दूसरी बार बहादुरखां को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया[3]।

सन् जुलूस २१ (वि० सं० १७३४-५ = ई० स० १६७७-८) में अनूपसिंह बादशाह की ओर से औरंगाबाद का शासक नियुक्त हुआ। उसी वर्ष शिवाजी ने उधर उत्पात करना शुरू किया। इसपर अनूपसिंह अपनी सारी सेना एकत्र कर उसके मुकाबिले के लिए गया। इसी समय दक्षिण का हाकिम बहादुरखां भी अपनी सेना के साथ उसकी सहायता को जा पहुंचा, जिससे शिवाजी वहां से लौट गया[4]।

अनूपसिंह की औरंगाबाद में नियुक्ति

अनन्तर अनूपसिंह की नियुक्ति आदूणी (दक्षिण) में हुई, जहां के विद्रोहियों का दमन करने के लिए वह सेना लेकर उनपर गया। इस चढ़ाई में उसको सफलता न मिली और उसकी पराजय होनेवाली ही थी कि उसी समय उसका भाई पद्मसिंह नई सेना के साथ उसकी सहायतार्थ आ गया, जिससे विपक्षी भाग गये[5]।

आदूणी के विद्रोहियों का दमन करना

जिन दिनों अनूपसिंह आदूणी में था, उसके पास खारबारा और रायमलवाली के भाटियों के विद्रोही हो जाने का समाचार पहुंचा। अनूपसिंह

(१) सर जदुनाथ सरकार, शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब, पृ० २५२।

(२) वही, पृ० २५५-६।

(३) वही, पृ० २५८।

(४) उमराए हनूद, पृ० ६३। ब्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ६०।

(५) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४८।

इस घटना का फ़ारसी तवारीख़ों में उल्लेख नहीं है।

भाटियो पर विजय और अनूपगढ का निर्माण

ने उसी समय मुहता मुकदराय को अपने पास बुलाकर इस विषय मे सलाह की और चूडेर मे गढ बनवाकर वहा अपना थाना स्थापित करने का निश्चय कर उसे अपने विश्वस्त आसामियो के नाम पत्र देकर बीकानेर भेजा। मुकन्दराय ने बीकानेर पहुचकर सेना एकत्र की और खड्गसेन के पुत्र अमरसिंह के साथ भाटियो पर प्रस्थान किया। खारबारा, रायमलवाली तथा राणीर के ठाकुरो ने चूडेर के गढ मे जमा होकर बीकानेर की फौज का सामना करने का प्रबध किया। दो मास के घेरे के बाद जब गढ मे रसद की कमी हुई तो भाटियो के सरदार जगरूपसिंह तथा बिहारीदास ने लखवेरा के जोहियो से रसद तथा अन्य युद्ध की सामग्री भिजवाने के लिए कहलाया। इसपर जोहिये रसद और बारूद, गोले आदि लेकर चूडेर की ओर अग्रसर हुए। जब बीकानेर की सेना मे उनके निकट आने का समाचार पहुचा तो मुकदराय, अमरसिंह (रूपगोत) तथा भागचन्द[1] ने उनपर आक्रमण कर दिया। उधर गढ से भाटी भी रसद लेने के लिए बाहर निकले, परन्तु बीकानेरवालो के ठीक समय पर पहुच जाने से वे कृतकार्य न हो सके और उनमें से बहुतसे मारे गये। रसद लानेवाले जोहिये भी मैदान छोडकर भाग गये, जिससे रसद आदि सामान बीकानेरवालो के हाथ लग गया। कुछ दिन और बीतने पर जब अन्न के अभाव के कारण भाटी बहुत पीडित हुए, तो उन्होने मुकन्दराय के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा और उनकी तरफ के जगरूपसिंह तथा बिहारीदास ने आकर एक लाख रुपया पेशकशी देने की प्रतिज्ञा कर सुलह कर ली। इधर मुकन्दराय के कुछ वैरियो ने जगरूपसिंह तथा बिहारीदास के पास इस आशय का पत्र भेजा कि मुकन्दराय का उद्देश्य वास्तव मे भाटियो के साथ धोखा करना है, अतएव उससे सन्धि करने के बदले उसे मार देने में ही भाटियो का कल्याण है। इसका परिणाम जो कुछ भी हो उससे बचाने का, पत्र लिखनेवालो ने अपने

(१) यह भाटी था और इस लड़ाई मे अनूपसिंह का सहायक हो गया था।

पत्र मे भाटियो को पूरा पूरा विश्वास दिलाया था, परन्तु उन्होंने इस पत्र पर विश्वास न किया और उसे मुकन्दराय को दिखा दिया । पाच दिन पश्चात् दड के ५०००० रुपये लेकर मुकन्दराय ने भाटियो को आश्वासन दिया कि शेष आधा मैं माफ करा दूगा । यह आश्वासन प्राप्तकर तथा बढ़े हुए खर्च को घटाने के विचार से भाटियो ने जोहियो एव अधिकाश भाटियों को वहा से विदा कर दिया । फलस्वरूप गढ के भीतर भाटियो की शक्ति बहुत कम हो गई । ऐसा अच्छा अवसर देखकर मुकन्दराय और अमरसिंह अपनी बात से बदल गये और उन्होने आधी रात के समय भाटियो पर आक्रमण कर दिया । शक्ति कम तथा रात्रि का समय होने के कारण भाटी इस आक्रमण का सामना न कर सके और जगरूपसिंह, बिहारीदास आदि सब के सब मारे गये । गढ पर अनूपसिंह की सेना का अधिकार हो गया । पीछे वि० स० १७३५ (ई० स० १६७८) मे उस स्थान पर एक नये गढ़ का निर्माण हुआ जिसका नाम अनूपगढ रक्खा गया । जब यह खबर अनूपसिंह के पास पहुची तो उसने अपनी ओर के वीर विजेताओं के लिए सिरोपाव तथा आभूषण आदि पुरस्कार मे भेजे । इस युद्ध मे भागचन्द भाटी बीकानेरवालों का सहायक हो गया था, अतएव खारबारा की जागीर उसके नाम कर दी गई[1] ।

खारबारा का अ तर कलह

खारबारा की जागीर भागचन्द के नाम कर देने का तात्कालिक परिणाम हानिकारक ही सिद्ध हुआ, क्योंकि कुछ ही दिनो बाद बिहारीदास के पुत्र ने जोहियों की सहायता से खारबारा पर आक्रमण कर दिया और उस प्रदेश का सारा उत्तरी भाग उजाड डाला । इसपर महाजन के ठाकुर अजबसिंह ने अनूपसिंह के पास प्रार्थना करवाई कि यदि खारबारा मुझे दे दिया जाय तो मैं बीकानेर की सीमा सतलज तक पहुचा दू । उक्त प्रदेश के उसे मिलते ही भागचन्द के उत्तराधिकारी ने जोहियो से सहायता प्राप्तकर उसपर

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४६ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ३६-४० ।

आक्रमण कर दिया, फलत महाजन का ठाकुर मारा गया और उसका पुत्र बन्दी कर लिया गया, जो छोटी अवस्था का होने के कारण बाद मे छोड दिया गया। पीछे से जब वह बडा हुआ तो उसने अपने पिता को मारने का बदला जोहियो को मारकर लिया। कहा जाता है कि उसी दिन से जोहिये पूरे तौर से बीकानेर के अधीन हो गये। बीच मे एक बार उन्होने विद्रोह किया था और हयातखा भट्टी, जो भटनेर का स्वामी था, उनसे मिलकर कुछ दिनो के लिए स्वतन्त्र हो गया था[1]।

महाराजा अनूपसिंह का जोधपुर का राज्य अजीतसिंह को दिलाने के लिए बादशाह से निवेदन कराना

वि० स० १७३६ (ई० स० १६७६) मे जोधपुर के महाराजा जसवतसिंह का जमरूद मे देहात हो गया। तब बादशाह ने जोधपुर खालसा कर लिया और उसके पुत्र अजीतसिंह को, सरदारो आदि के बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी, जोधपुर का राज्य नही दिया। इसपर महाराजा अनूपसिंह और रतलाम के स्वामी रामसिंह के वकीलो ने अपने अपने राजाओ की तरफ से बादशाह से निवेदन किया कि जोधपुर अजीतसिंह को मिल जाना चाहिये[2], परन्तु बादशाह महाराजा जसवतसिंह से नाराज था, इसलिए उनकी प्रार्थना स्वीकार नही हुई[3]।

बनमालीदास के मरवाना

अनूपसिंह के अनौरस (पासवानिये) भाई बनमालीदास ने बादशाह की सेवा मे रहकर वहा के एक कार्यकर्ता सय्यद हसनअली से बड़ी घनिष्ठता पैदा कर ली थी, जिसकी सिफारिश पर बादशाह ने पीछे से बीकानेर का आधा मनसब उस (बनमालीदास) को प्रदान कर दिया। तब कुछ फौज साथ लेकर बनमालीदास बीकानेर गया और पुराने गढ़ के पास ठहरा। राज्य की ओर से उसका अच्छा सत्कार किया गया, परन्तु बनमालीदास तो मुसल-

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४०।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० २, पृ० १६।

(३) वही, जि० २, पृ० १६।

मान हो गया था, अतएव उसने वहा के निवासियो की भावनाओ का रत्ती भर भी ध्यान न करते हुए लक्ष्मीनारायण के मदिर के निकट बकरे मरवाये। जब अनूपसिंह के पास इसकी खबर पहुची तो उसने मुहता दयालदास तथा कोठारी जीवनदास को उसके पास भेजकर कहलाया कि अपने पूर्वजों के बनवाये हुए इस देवमदिर के निकट पशु मरवाना उचित नहीं है, परन्तु बनमालीदास इसपर अधिक क्रुद्ध हो उठा और उसने उत्तर दिया कि मेरी जो मर्जी आयेगी मैं करूगा। अनन्तर उसने मूधडा रघुनाथ आदि खजाचियो को बुलाकर पट्टा बही लाने को कहा। जब उन्होने ऐसा करने से इनकार किया तो उसने उन्हे कैद कर लिया। अनूपसिंह के पास इसकी खबर पहुचने पर उसने उदैराम अहीर से बनमालीदास को मरवाने की सलाह की। उदैराम यह कार्य भार अपने ऊपर ले बनमालीदास के पास पहुचा और थोडे समय मे ही उसने उससे खूब मेल जोल पैदा कर लिया। फिर चगोई के पास उसका गढ बनवाने का विचार देख उदैराम ने वह स्थान एव बीकानेर के आधे गावो का रुक्का अनूपसिंह से लिखवा कर बनमालीदास को दे दिया। बनमालीदास उदैराम की इस सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ और कुछ समय बाद चगोई चला गया[1]।

अनूपसिंह का एक विवाह वाय के सोनगरे लक्ष्मीदास की पुत्री से हुआ था। निर्धनता के कारण दहेज देने मे समर्थ न होने से उसने अनूपसिंह से कहा था कि यदि कभी अवसर आया तो मैं आपकी सेवा करने से पीछे न हटूगा। इस समय बनमालीदास को मारने का कार्य अनूपसिंह ने लक्ष्मीदास को बुलाकर उसे ही सौंपा और उसकी सहायता के लिए राजपुरा के बीका भीमराजोत को उसके साथ कर दिया। कुछ दिनो बाद दोनो अनूपसिंह के विद्रोहियो के रूप में चगोई मे बनमालीदास के पास पहुचे। अनूपसिंह ने इस सम्बन्ध मे बनमालीदास को सचेत करते हुए एक पत्र उसके पास भेज दिया था, परन्तु इससे उसने और

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४१।

भी उत्तेजित हो उन्हें अपनी सेवा मे रख लिया। अनन्तर लक्ष्मीदास ने उस (बनमालीदास) से अर्ज की कि मैं साथ मे एक डोला लाया हूं; यदि आप विवाह कर ले तो बड़ा उपकार हो। बनमालीदास के स्वीकार करने पर, एक दासी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया गया, जिसने विवाह की रात्रि को ही पूर्व आदेशानुसार उसको शराब म सखिया मिलाकर पिला दिया, जिससे उसी समय उसकी मृत्यु हो गई। बनमाली दास के साथ एक नबाब भी बीकानेर गया था। जब बादशाह से सब हाल कह देने का उसने भय दिखलाया तो एक लाख रुपया देकर उसका मुह बन्द कर दिया गया, जिससे उसने बादशाह को यही सूचित किया कि बनमालीदास स्वाभाविक मृत्यु से मरा है। इस प्रकार इस घटना से अनूपसिंह पर बादशाह की कुछ भी नाराजगी नही हुई[1]।

अनूपसिंह का मोरोपन्त पर भेजा जाना

वि० स० १७३६ (ई० स० १६७६) मे आहोत के किलेदार सैय्यद नजाबत ने बादशाह के पास सूचना भेजी कि मरहटो की एक बडी सेना शिवाजी के सेवक मोरोपन्त की अध्यक्षता मे शाही मुल्क में प्रवेश कर माहू एव तरबक के गढ़ो तक जा पहुची है। उसका उद्देश्य चतरसधी की पहाड़ियों को सुदृढ़ करने का है। इससे उधर की प्रजा की बहुत हानि होने की सभावना थी, अतएव बादशाह ने अनूपसिंह के पास फरमान भेजकर सूचना भेजी कि वह उधर जाकर उनका दमन करे और उन्हे शाही मुल्क की सीमा से बाहर कर दे[2]।

हिजरी सन् १०६१ ता० २४ रबीउल्आखिर (वि० स० १७३७ ज्येष्ठ वदि ११ = ई० स० १६८० ता० १४ मई) को राजगढ़ में शिवाजी

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ५० । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४१ २। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४६६ ।

(२) औरगज़ेब के पुत्र शाह आलम का सन् जुलूस २३ ता० १४ रमजान (हि० स० १०६० = वि० स० १७३६ कार्तिक वदि १ = ई० स० १६७६ ता० १० अक्टोबर) का अनूपसिंह के नाम का निशान ।

का देहांत हो गया[1]। उस (शिवाजी) के साथ शाही सेना की जितनी लड़ाइयां हुईं, प्रायः उन सबों में अनूपसिंह भी सम्मिलित था और उसने क्षत्रियोचित वीरता का परिचय देकर राजपूतों के इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

बीजापुर का स्वामी सिकन्दर राज्य कार्य चलाने में सर्वथा अयोग्य था। सीदी मसऊद, अब्दुलरऊफ और शरजा आदि उसकी अयोग्यता से लाभ उठाकर अपना फ़ायदा कर रहे थे। बादशाह का इरादा प्रारम्भ में बीजापुर पर आक्रमण करने का न था, परन्तु जब शम्भा का उपद्रव बढ़ने की आशंका हुई तो उधर चढ़ाई करना आवश्यक हो गया। अतएव वि० सं० १७३८ श्रावण सुदि ८ (ई० स० १६८१ ता० १३ जुलाई) को बादशाह ने इस आशय का एक पत्र शरजाखां के पास भेजा कि शाही सेना शम्भा को दंड देने के लिए भेजी जा रही है, जिसकी उसे हर प्रकार से सहायता करनी चाहिये। बीजापुर की शाहज़ादी शहरबानू ने भी, जिसका विवाह शाहज़ादे आज़म के साथ हुआ था, अपने ता० १८ जुलाई (श्रावण सुदि १३) के पत्र में बीजापुरवालों को शाही सेना की सहायता करने के लिए लिखा था, परन्तु इन पत्रों का उन्होंने कोई उत्तर न दिया। इससे निश्चित हो गया कि उनकी सहानुभूति शम्भा के साथ थी, अतएव वि० सं० १७३८ (ई० स० १६८२ जनवरी) में रुहुल्लाखां[2] बीजापुर पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया, पर उसकी अध्यक्षता में भेजी हुई सेना अधिक हानि पहुंचाये बिना ही लौट आई। कुछ दिनों बाद पहिले से बड़ी फ़ौज के साथ शाहज़ादे आज़म को उधर भेजा। उसने धरूर के क़िले पर अधिकार कर आदिलशाही की राजधानी (बीजापुर) की ओर बढ़ने का प्रयत्न

बीजापुर की चढ़ाई और अनूपसिंह

(१) मुंशी देवीप्रसाद, औरंगज़ेबनामा, भाग २, पृ० ९८।

(२) यह औरंगज़ेब का मीरबख़्शी था। ई० स० १६९२ ता० ८ अगस्त (वि० सं० १७४९ प्रथम भाद्रपद सुदि ७) को दक्षिण में इसकी मृत्यु हुई।

किया, पर इस बीच मे ही वह पीछा बुला लिया गया। वर्षाऋतु व्यतीत हो जाने पर वह फिर उधर भेजा गया, परन्तु पीछे से वह नासिक में बदल दिया गया। वि० स० १७४० मार्गशीष सुदि ५ (ई० स० १६८३ ता० १३ नवम्बर) को बादशाह स्वय अहमदनगर मे पहुच गया। उधर सिकन्दर ने भी भीतर ही भीतर अपनी रक्षा का समुचित प्रवन्ध कर लिया और अपने पडोसी राज्यो के पास सहायता के लिए पत्र भेजे। मुगल सेना ने आगे बढ़कर वि० स० १७४२ चैत्र सुदि ७ (ई० स० १६८५ ता० १ अप्रेल) को बीजापुर घेरने का कार्य आरम्भ कर दिया। बादशाह ने भी इस अवसर पर निकट रहना उचित समझा, अतएव वि० स० १७४२ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १६८५ ता० २६ अप्रेल) को अहमदनगर से रवाना होकर ज्येष्ठ सुदि १ (ता० २४ मई) को वह भी शोलापुर पहुच गया[1]। कुछ दिनो वहा ठहरने के उपरान्त हि० स० १०६७ ता० २ शाबान (वि० स० १७४३ आषाढ सुदि ३ = ई० स० १६८६ ता० १४ जून) को बादशाह आगे बढ़ा। ता० १४ शाबान (श्रावण वदि १ = ता० २६ जून) को शाहजादा आजम तथा बेदारबख़्त[2] उसकी सेवा मे उपस्थित हो गये, जिन्हें खिलअत आदि दी गई। इसी अवसर पर बहादुरखा तथा महाराजा अनूपसिंह भी शाही सेवा में उपस्थित हो गये। वहा से प्रस्थान कर ता० २१ शाबान (श्रावण वदि ८ = ता० ३ जुलाई) को बीजापुर से ३ कोस दूर रसूलपुर में बादशाह के डेरे हुए[3]।

बीजापुर की इस चढ़ाई में आरम्भ से ही शाहजादे शाह आलम ने, जो बादशाह के साथ था, बीजापुर तथा गोलकुडे के स्वामियो से मैत्री का भाव बनाये रक्खा और सिकन्दर से पत्रव्यवहार भी किया। बादशाह को जब इसका पता लगा तो उसका दिल अपने ज्येष्ठ पुत्र की ओर से

(१) सरकार, हिस्ट्री ऑव् औरगज़ेब, जि० ४, पृ० ३०० १२।

(२) आज़मशाह का पुत्र।

(३) मुन्शी देवीप्रसाद, औरगज़ेबनामा, भाग ३, पृ० ३३।

हट गया[1]। जब दो मास और १२ दिन[2] तक तोपो और बन्दूको की मार से बीजापुर के बहुतसे आदमी मारे गये और क़िला तोडने का सारा प्रबन्ध मुगलो ने कर लिया, तब तो सिकन्दर और उसके साथियों को पराजय का पूरा भय हो गया। अधिक युद्ध करने मे हानि की सभावना ही विशेष थी, अतएव वि० स० १७४३ आश्विन सुदि ५ (ई० स० १६८६ ता० १२ सितम्बर[3]) को सिकन्दर न आत्मसमर्पण कर दिया। बादशाह ने उसके क़सूर माफ कर दिये और खिलअत आदि देकर एक लाख रुपया सालाना उसके लिए नियत कर दिया[4]।

उसी वर्ष बादशाह ने अनूपसिंह को सक्खर का शासक नियुक्त कर उधर भेज दिया[5]।

---

(१) सरकार, हिस्ट्री ऑव् औरगज़ेब, जि० ४, पृ० ३१६ २०।

(२) मुशी देवीप्रसाद, औरगज़ेबनामा, भाग ३, पृ० ३५।

(३) मुशी देवीप्रसाद ने 'औरगजेबनामे' में ता० १३ सितबर दी है (भाग ३, पृ० ३५)।

(४) मुशी देवीप्रसाद, औरगज़ेबनामा, भाग ३, पृ० ३५। सरकार, हिस्ट्री ऑव् औरगज़ेब, जि० ४, पृ० ३२३।

मुतखबुललुबाब (इलियट्, हिस्ट्री ऑव् इडिया, जि० ७, पृ० ३२३) में लिखा है कि सिकन्दर दौलताबाद मे कैद रक्खा गया।

ऊपर आये हुए वर्णन के विरुद्ध ख्यात में लिखा है कि जब बीजापुर का नवाब सिकन्दर विद्रोही हो गया तो अनूपसिंह शाही सेना के साथ उसपर भेजा गया। एक वष तक घेरा रहने पर जब गढ़ मे सामान का अभाव हो गया तो सिकन्दर बाहर आकर लड़ा और कैद कर लिया गया। बादशाह की आज्ञानुसार सिकन्दर दौलताबाद मे रक्खा गया (दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४७ ८)। ख्यात का यह कथन कुछ बढ़ाकर लिखा हुआ जान पड़ता है, परन्तु जैसा कि मुशी देवीप्रसाद के 'औरगज़ेबनामे' से प्रकट है, अनूपसिंह बीजापुर की इस चढ़ाई में बादशाह के साथ अवश्य था।

(५) उमराए हनूद, पृ० ६३। ब्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ६० । मुशी देवीप्रसाद कृत 'औरगज़ेबनामे' (भाग ३, पृ० ३८) में सन् जुलूस ३० ता० ६ ज़िलहिज (हि० स० १०९७ = वि० स० १७४३ कार्तिक सुदि ८ =

वि० स० १७४२ (ई० स० १६८५) मे जब बादशाह बीजापुर पर आक्रमण करने मे व्यस्त था, उसके पास गोलकुडे के स्वामी अबुलहसन के भी विपरीत हो जाने का समाचार पहुचा। इसपर उसने उसी समय शाह आलम (शाहजादा) को एक विशाल सेना के साथ हैदराबाद पर भेजा।

औरगजेब की गोलकुडे पर चढाई

गोलकुडे की सेना ने शाही फौज को रोकने का प्रयत्न किया, पर पीछे से अफसरो मे मतभेद हो जाने के कारण, वह सेना लौट गई। अनन्तर शाह आलम के प्रयत्न से बादशाह और अबुलहसन के बीच सन्धि स्थापित हो गई। वि० स० १७४३ आश्विन सुदि ५ (ई० स० १६८६ ता० १२ सितम्बर) को बीजापुर विजय करने के बाद बादशाह की दृष्टि फिर गोलकुडे की ओर गई। गोलकुडे की विजय के बिना दक्षिण की विजय अधूरी ही रहती थी, अतएव वि० स० १७४३ फाल्गुन वदि १० (ई० स० १६८७ ता० २८ जनवरी) को बादशाह ससैन्य गोलकुडे के निकट जा पहुचा। इसपर अबुलहसन ने किले मे आश्रय लिया, जिससे हैदराबाद पर आसानी से मुगलो का अधिकार हो गया। कुलीचखा[1] की अध्यक्षता मे मुगल सेना ने गढ़ मे घुसने का प्रयत्न किया, परन्तु इसी समय एक गोला लग जाने से उसकी मृत्यु हो गई। तब बादशाह ने अधिक दृढ़ता से घेरे का कार्य आगे बढाया।

शाह आलम, बादशाह की इस चढाई से प्रसन्न नहीं था, क्योकि पहिले सन्धि स्थापित करने मे उसी का हाथ था और अब उसी सधि का उल्लघन किया जा रहा था। अबुलहसन के दूतो और उसके बीच गुप्त रीति से फिर सन्धि के विषय मे बात-चीत चल रही थी। जब बादशाह को इस बात की खबर हुई तो उसने शाह आलम तथा उसके पुत्रो

ई० स० १६८६ ता० १४ अक्टोबर) को अनूपसिंह का सक्खर की किलेदारी पर जाना लिखा है। वीरविनोद, (जि० २, प्रकरण ६, पृ० ७०६) में भी इसका उल्लेख है।

(१) इसका वास्तविक नाम आबिदखा था और यह ग़ाजीउद्दीनखा फ़ीरोज़जग प्रथम का पिता तथा हैदराबाद के सुप्रसिद्ध निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह का दादा था।

को धोखे से बुलाकर बन्दी कर लिया[1]। लेकिन इतने ही से बाधाओं का अन्त नहीं हो गया। मुगल सेना के कितने ही शिया तथा सुन्नी अफसर भी यह नहीं चाहते थे कि एक मुसलमानी राज्य का इस प्रकार नाश किया जाय और उनमें से अधिकांश ने अपने-अपने पद से इस्तीफा दे दिया तो भी गढ़ को तोड़ने का कार्य जारी रहा। वि० सं० १७४४ ज्येष्ठ सुदि १४ (ता० १६ मई) को फीरोजजंग ने गढ़ लेने का प्रयत्न किया, पर उसे सफलता न मिली। इसी बीच अकाल पड़ जाने से मुगल सेना की बहुत हानि हुई। गोलकुंडे की फौज ने भी ऐसे अवसर से लाभ उठा, कई बार उन्हें पीछे हटाया, परन्तु औरंगजेब अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ। इस प्रकार आठ महीने[2] बीत गये, पर किले में मुगल सेना का प्रवेश न हो सका। इस समय एक ऐसी बात हो गई, जिससे किला बिना युद्ध और रक्तपात के मुगलों के अधिकार में आ गया। बीजापुर की विजय के बाद अब्दुल्ला पानी[3] (सरदारखां) मुगल सेना में भर्ती हो गया था और इस चढ़ाई में भी वह साथ था। किसी कारणवश वह बीच में गोलकुंडेवालों का सहायक हो गया था। अब फिर वह मुगल सेना से जा मिला, जिसकी सहायता से वि० सं० १७४४ आश्विन वदि १० (ई० स० १६८७ ता० २१ सितम्बर) को रुहल्लाखां गढ़ में घुस गया। शाहज़ादा आज़म भी दूसरी ओर से फौज लेकर जा पहुंचा। इस अवसर पर गोलकुंडा के अब्दुर्रज्जाक ने सच्ची स्वामिभक्ति और वीरता का परिचय दिया, परन्तु उस एक से क्या हो सकता था? उसके घायल हो जाने पर अबुलहसन के लिए आत्मसमर्पण करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग न रहा। तब बादशाह

---

(१) मनूकी, स्टोरिआ डो मोगोर—इर्विन कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ३०३ ४।

(२) मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगज़ेबनामे' में ६ महीना दिया है (भाग ३, पृ० ४६)। दयालदास की ख्यात में घेरा रहने की अवधि ६ महीने दी है (जि० २, पत्र ४८)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगज़ेबनामे' में इसका नाम तीरदाजखां दिया है (भाग ३, पृ० ४८)।

ने ५०००० रु० सालाना नियत कर उसे दौलताबाद में कैद कर दिया[1]।

गोलकुंडे की इस चढ़ाई के उपर्युक्त वर्णन में किसी हिन्दू राजा का नाम नहीं आया, परन्तु ख्यात के कथनानुसार इस चढ़ाई में अनूपसिंह ने भी भाग लिया था। दयालदास लिखता है—'जब गोलकुंडे का स्वामी तानाशाह[2] (?) विद्रोही हो गया तो औरंगजेब स्वयं सेना लेकर उसपर गया, परन्तु नौ मास तक गढ़ को घेरे रहने और गोलों की वर्षा करने पर भी, जब कोई फल न निकला तो बादशाह ने दीवान हसनखां के पुत्र जुल्फिकारखां को, जो उन दिनों पेशावर में लड़ रहा था, सेना सहित दक्षिण में आने को लिखा। इसपर वह (जुल्फिकारखां) अनूपसिंह को भी साथ लेता हुआ बड़ी सेना के साथ गोलकुंडे पहुंचा और उन दोनों ने उस युद्ध में काफी भाग लिया। अनन्तर तानाशाह पकड़ा गया और अनूपसिंह की वीरता के लिए बादशाह ने उस (अनूपसिंह) का मनसब बढ़ाकर तीन हजारी[3] कर दिया[4]।'

ख्यात और गोलकुंडे की चढ़ाई

ख्यात का उपर्युक्त कथन अतिरंजित अवश्य है, परन्तु यह भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह सत्य से रहित नहीं है। गढ़ पर बहुत दिनों तक घेरा रहने पर भी विफल होने पर अधिक संभव तो यही है कि बादशाह ने सहायता के लिए और सेना बुलवाई हो। दक्षिण की अधिकांश चढ़ाइयों में अनूपसिंह शाही सेना के साथ था जैसा कि ऊपर

(१) सरकार, शॉर्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ब, पृ० २७१-८४। मनुकी, स्टोरिआ डो मोगोर—इर्विन कृत अनुवाद, जि० २, पृ० ३०१-८। मुंशी देवीप्रसाद, औरंगज़ेबनामा, भाग ३, पृ० ४०-४१।

(२) संभव है तानाशाह से ख्यातकार का आशय गोलकुंडे के स्वामी अबुल-हसन से हो, क्योंकि वही उस समय गोलकुंडे का स्वामी था और फ़ारसी तवारीख़ों से औरंगज़ब का उसी पर जाना पाया जाता है।

(३) इसकी अन्य किसी तवारीख़ से पुष्टि नहीं होती।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४८।

लिखा जा चुका है। इस घटना के पहिले ही अनूपसिंह की सक्खर में नियुक्ति हो गई थी, अतएव पेशावर से सहायक सेना आने पर उसका भी साथ रहना असभव नहीं कहा जा सकता।

अनूपसिंह की आदूणी में नियुक्ति

सन् जुलूस ३३ (वि० स० १७४६ = ई० स० १६८६) मे बादशाह ने अमतियाजगढ अदूनी की हकूमत पर अनूपसिंह को नियत किया[1]। मआसिरुल् उमरा (हिन्दी) से पाया जाता है कि वहा पहले राव दलपत बुंदेला था, जिसकी जगह पर वह (अनूपसिंह) भेजा गया[2]। लगभग दो वर्ष बाद सन् जुलूस ३५ (वि० स० १७४८ = ई० स० १६९१) मे अनूपसिंह उस पद से हटा दिया गया[3]।

विवाह और सन्तति

अनूपसिंह का पहला विवाह कुमारअवस्था मे ही वि०स०१७०९ फाल्गुन वदि २ (ई० स० १६५३ ता० ४ फरवरी) को उदयपुर के महाराणा राजसिंह की बहिन के साथ हुआ था[4]। उस समय महाराणा ने अपने कुटुंब की और ७१ लडकियों

(१) उमराए हनूद, पृ० ६३।

(२) व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ३०।

(३) उमराए हनूद, पृ० ६३। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ३०।

(४) शते सप्तदशे पूर्णे नवाख्येऽब्दे करोत्तुला ॥
रूप्यस्य चक्रे या फाल्गुने कृष्णपक्षके ॥ १ ॥
द्वितीया दिवसे राजसिंहो नरेश्वर ॥
राज्ञो भूरटियाकर्णनाम्नो जेष्ठाय सूनवे ॥ २ ॥
अनूपसिंहाय ददौ स्वसारं विधिना नृपः ॥
क्षत्रेभ्योदाद्बन्धुकन्या एकसप्ततिसमिता' ॥ ३ ॥
(राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ६)।

दयालदास की ख्यात में वि० स० १७३६ दिया है, जो निर्मूल है।

की शादी अनूपसिंह के कुटुंबी राठोडों के साथ की। उसका दूसरा विवाह जैसलमेर के रावल अखैसिंह की पुत्री अतिरगदे से वि० स० १७२० (ई० स० १६६३) मे हुआ था। उसी वर्ष उसका तीसरा विवाह लक्ष्मीदास सोनगरे की कन्या से गाव वाय में सम्पन्न हुआ[1]। इनके अतिरिक्त उसके और भी कई राणिया थीं, क्योंकि तवर राणी का उसके साथ सती होना उसकी मृत्यु स्मारक छत्री मे लिखा है और स्वरूपसिंह को ख्यात मे सीसोदिया हरिसिंह जसवतसिंहोत का दोहिता लिखा है[2]। अनूपसिंह के पाच पुत्र—स्वरूपसिंह, सुजानसिंह, रूपसिंह, रुद्रसिंह और आनन्दसिंह—हुए[3]।

वि० स० १७५५ प्रथम ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० स० १६६८ ता० ८ मई) रविवार[4]

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४८।

(२) वही, जि० २, पत्र ५८।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात, जि० २, पृ० २००। दयालदास ने केवल चार पुत्रों के नाम दिये है, उसकी ख्यात मे रूपसिंह का नाम नहीं है (जि० २, पत्र ५२)। वीरविनोद में भी चार पुत्रो क ही नाम है (भाग २, पृ० ४६६)। बाकीदास कृत 'ऐतिहासिक बाते' मे भी चार ही नाम दिये है। उसमे एक पुत्र का नाम सुदरसिंह दिया है (सख्या १०५३)। पाउलेट भी चार ही नाम देता है (गैज़टियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४२)। टॉड ने केवल दो पुत्रो—सुजानसिंह और स्वरूपसिंह—के नाम दिये है (जि० २, पृ० ११३७), जो ठीक नहीं है, क्योंकि मुहणोत नैणसी की ख्यात से उसके पाच और अन्य से चार पुत्र होना स्पष्ट है।

(४) श्रीमन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १७५५ वर्षे शाके १६२० प्रवर्तमाने प्रथमज्येष्ठमासे शुक्लपक्षे तिथौ नवम्या रवौ . राठैडवशावतसश्रीकर्णसिहात्मजमहाराजाधिराजमहाराज श्री ३श्रीअनूपसिहजीदेवा श्रीजैसलमेरी अतिरगदेजीश्रीतुवरजी सह ब्रह्मलोकमगमत्।

(अनूपसिंह की बीकानेरवाली स्मारक छत्री से)।

मुहणोत नैणसी की ख्यात मे भी यही तिथि दी है (जि० २, पृ० २००)।

अनूपसिंह की मृत्यु

को आदूणी[1] मे अनूपसिंह का देहांत हुआ। इस अवसर पर जैसलमेरी अतिरंगदे तथा तंवर राणी सती हुई।

महाराजा के भाइयों की वीरता

महाराजा अनूपसिंह के भाई केसरीसिंह, पद्मसिंह और मोहनसिंह बड़े ही पराक्रमी हुए। ख्यातों आदि मे उनकी वीरता की बहुतसी बातें लिखी हुई हैं, जिनमे से कुछ यहा लिखी जाती हैं—

केसरीसिंह—महाराजा कर्णसिंह का दूसरा पुत्र था। उसका उक्त महाराजा की कछवाही राणी के गर्भ से वि० सं० १६९८ (ई० स० १६४१) मे जन्म हुआ था। केसरीसिंह की वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह औरंगजेब ने, जब वह लाहौर की तरफ दाराशिकोह का पीछा कर रहा था, मार्ग मे उसे मीनाकारी के काम की तलवार दी थी, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

कर्नल टॉड लिखता है—'केसरीसिंह ने एक बड़े शेर को बाहु-युद्ध में मार डाला था, जिसपर प्रसन्न होकर बादशाह औरंगजेब ने उसे पच्चीस गांव (संयुक्त प्रांत मे) जागीर मे दिये थे। उसने दक्षिण मे रहते समय एक हब्शी सरदार को, जो बहमनी सेना का अफ़सर था, युद्ध में वीरतापूर्वक मारा था[2]।'

हि० स० १०७८ (वि० सं० १७२४ = ई० स० १६६७) मे बंगाल की तरफ फ़िसाद होने पर वह आमेर के राजा रामसिंह आदि सहित

(१) दयालदास (ख्यात, जि० २, पत्र ५२), बांकीदास (ऐतिहासिक बातें, संख्या ११७), मुंशी देवीप्रसाद (राजरसनामृत, पृ० ४६), पाउलेट (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४२) तथा अर्सकिन (राजपूताना गैज़ेटियर, पृ० ३२२) ने अनूपसिंह की मृत्यु आदूणी मे होना लिखा है। व्रजरत्नदास कृत 'मआसिरुल् उमरा' के अनुसार बादशाह औरंगज़ेब के ३५ वे राज्यवर्ष में अनूपसिंह आदूणी की अध्यक्षता से हटा दिया गया था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है (देखो पृ० २७२)। संभवत पीछे से वह फिर वहीं बहाल कर दिया गया हो।

(२) टॉड, राजस्थान, जि० २, पृ० ११३६, टि० १।

वहां भेजा गया[1]। वह बादशाह औरंगजेब के समय दक्षिण मे ही रहा और वहां के युद्धो मे उसने बड़ा भाग लिया। वि० स० १७४१ चैत्र वदि ३ (ई० स० १६८५ ता० १३ मार्च) शुक्रवार को उसका देहात हो गया[2]।

पद्मसिंह—महाराजा कर्णसिंह का तीसरा पुत्र था। उसका उक्त महाराजा की हाडी राणी स्वरूपदे से वि० स० १७०२ वैशाख सुदि ८ (ई० १६४५ ता० २२ अप्रेल) को जन्म हुआ था। उसकी वीरता और अतुल पराक्रम की कई गाथाएं प्रसिद्ध हैं। वह भी धर्मातपुर, समूनगर आदि के युद्धों में अपने भाई केसरीसिंह के साथ रहकर औरगजेब के पक्ष में लडा था। ऐसी प्रसिद्धि है कि शाहजादे दाराशिकोह के मुक़ाबले में जब खजवा के युद्ध में विजय पाकर सब लोग शाही सेना में पहुचे, उस समय बादशाह औरगजेब ने केसरीसिंह और पद्मसिंह का यहा तक सम्मान किया कि अपने रुमाल से उनके बख्तरो की धूल को झाडा। फिर बादशाह ने उसको दक्षिण मे नियत किया, जहा अपने पिता और भाई अनूपसिंह के साथ रहकर उसने कई बार वीरता के जौहर दिखलाये। वि० स० १७२८ (ई० स० १६७२) मे जब उसका छोटा भाई मोहनसिंह, शाहजादे मुअज्जम के साले मुहम्मदशाह मीर तोजक (जो वहा का कोतवाल था) के साथ झगडा होने पर औरगाबाद मे मारा गया तो पद्मसिंह ने क्रोधित होकर दीवान खाने मे पहुच मुहम्मदशाह को मार डाला। उसके बढ़े हुए क्रोध को

---

(१) वीरविनोद, भाग २, पृ० ७००।

(२) अथास्मिन् शुभसवत्सरे १७४१ चैत्रवदि ३ शुक्रवारे महाराजाधिराजमहाराजश्रीकर्णसिहजीतत्पुत्रोमहावीरः क्षात्रधर्मनिष्ठ महाराजश्रीकेसरीसिहजीवर्मा द्वाभ्या धर्मपत्नीभ्या ...... सह देवलोकमगमत्

(मूल लेख की नक़ल से)।

दयालदास की ख्यात (जि० २, पत्र ४७) तथा पाउलेट के गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट (पृ० ४४) में वि० स० १७२७ मे कागड़े में उसकी मृत्यु होना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

देख किसी का साहस उसे रोकने का नहीं हुआ और जितने भी शाही सेवक वहा विद्यमान थे भाग गये[1]।

इस घटना के सम्बन्ध में कर्नल टॉड ने लिखा है—'पद्मसिंह की तलवार के प्रहार से दीवानखाने का खंभा (?) तक टूट गया। जयपुर और जोधपुर के राजा उसके पक्ष मे हो गये तथा वे इस घटना से शाहजादे की छावनी छोड बीस मील दूर चले गये शाहजादे ने उनको बुलाने के लिए प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भेजा, परतु जब वे नहीं आये, तब स्वय शाहजादा आकर उनको लौटा लाया[2]।'

दक्षिण मे तापती (तापी) नदी के तट पर मरहटो से युद्ध होने पर पद्मसिंह वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ, सावतराय और जादूराय नामक मरहटा वीरो को कई आदमियो सहित मारकर वि० स० १७३६ चैत्र वदि १२ (ई० स० १६८३ ता० १८ मार्च)[3] को परलोक सिधारा।

उसके वीरतापूर्वक युद्ध कर प्राण त्याग करने की शाही दरबार में बड़ी ख्याति हुई और सन् जुलूस २६ ता० १७ रबीउस्सानी (हि० स० १०६४=वि० स० १७४० चैत्र सुदि ५=ई० स० १६८३ ता० ५ अप्रेल) को स्वय बादशाह ने फरमान भेज महाराजा अनूपसिंह के प्रति अत्यन्त ही सहानुभूति प्रकट करते हुए लिखा—"पद्मसिंह जो अपने सहयोगियों में सर्वश्रेष्ठ और उमरावो मे शिरोमणि था, राजभक्ति एव अनुपम वीरता के साथ युद्ध करता हुआ रणक्षेत्र मे वीर गति को प्राप्त हुआ। यह समाचार सुन हमे बडा भारी दु ख हुआ है परन्तु उस स्वार्थत्यागी

---

(१) जोनाथन स्कॉट, हिस्ट्री ऑव् डेक्कन, जि० २, पृ० ३०।

(२) टॉड, राजस्थान, जि० २, पृ० ११३६, टि० १।

(३) अथास्मिन् सवत् १७३६ चैत्रकृष्णपक्षे द्वादश्या महाराजाधिराजमहाराजश्रीकर्णसिहजीतत्पुत्रोदानवीरो युद्धशूरो महाराजपद्मसिंहजी एकया धर्मपत्न्या सह देवलोकमगमत्

(मूल लेख की नक़ल से)।

वीर ने अपने सम्राट् के लिए युद्धक्षेत्र में प्राण त्याग किया है, अत उसकी मृत्यु धन्य और गौरवपूर्ण हुई है, यही समझना चाहिये।"

कर्नल पाउलेट लिखता है—'पद्मसिंह बीकानेर का सर्वश्रेष्ठ वीर था और जनता के हृदय मे उसका वही स्थान है, जो इंग्लैंड की जनता के हृदय मे रिचर्ड दि लायन हार्टेड[1] (सिंह हृदय रिचर्ड) का है[2]।'

घोडे पर बैठकर उसे दौडाते हुए पद्मसिंह का एक बडे सिंह को बरछम से मारने का एक चित्र बीकानेर मे हमारे देखने मे आया। यह चित्र प्राचीनता की दृष्टि से दो सौ वर्ष से कम पुराना नही है। उस(पद्मसिंह) की वीरता की गाथाए कपोलकल्पित नही कही जा सकती और नि स कोच कहा जा सकता है कि वह बीकानेर के राजवश में बड़ा ही पराक्रमी योद्धा हो गया है।

सकेला की बनी हुई उसकी तलवार आठ पौंड वजन की तीन फुट ११ इच लबी और ढाई इच चौड़ी है। उसके शस्त्राभ्यास का खाडा (खड्ग) पच्चीस पौंड वजन का चार फुट छ इच लबा और ढाई इच चौडा है, जिसको आजकल का पहलवान सरलता से नही चला सकता। ये दोनों

---

(१) इगलैंड का बादशाह रिचर्ड प्रथम सिंह हृदय रिचर्ड के नाम से प्रसिद्ध है। यह विजयी विलियम की पौत्री मटिल्डा का पौत्र और बादशाह हेनरी द्वितीय का तीसरा पुत्र था। इसने ई० स० ११८९ से ११९९ तक राज्य किया। यह पक्का सिपाही था और अपनी वीरता, साहसप्रियता, शारीरिक बल तथा सैनिक पराक्रम के लिए यूरोप भर में प्रसिद्ध था। इसका सारा जीवन युद्ध करने में ही बीता। ईसाइयों का प्रसिद्ध तीर्थ जेरुसेलम उस समय मुसलमानो के अधिकार मे था। उसे उनके हाथों से छुड़ाने के लिए जो तीसरा क्रूसेड (धर्मयुद्ध) हुआ, उसमें रिचर्ड ने प्रमुख भाग लिया था। वहा इसने बड़ी बहादुरी तथा साहस का परिचय दिया, पर आपस की फूट के कारण कोई फल न निकला। लौटते समय वह अपने शत्रु जर्मनी के सम्राट् के हाथ में पड़ गया। वहा बहुत दिनों तक क़ैद रहने के बाद, बहुत बड़ी रक़म देने पर कहीं इसका छुटकारा हुआ। चालुज दुर्ग के घेरे में कधे मे तीर लगने से ४२ वर्ष की अवस्था मे, इसका देहात हुआ था।

(२) गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४२।

बीकानेर के शस्त्रागार म सुरक्षित हैं और दर्शनीय वस्तु हैं। पद्मसिंह तलवार चलाने मे बड़ा निपुण था, जिसके लिए यह दोहा प्रसिद्ध है—

कटारी अमरेस री, पदमे री तरवार।
सेल तिहारो राजसी, सरायो ससार॥

मोहनसिंह—महाराजा कर्णसिंह का चतुर्थ पुत्र था। उसका जन्म वि० सं० १७०६ चैत्र सुदि १४ (ई० स० १६४६ ता० १७ मार्च) को हुआ था। शाहज़ादा मुअज्जम उस (मोहनसिंह) पर अत्यन्त ही कृपा और स्नेह रखता था। इस कारण शाहजादे के सेवक उससे डाह रखते थे और उसको अपमानित करने का अवसर ढूढते थे। औरगाबाद मे वि० स० १७२८ (ई० स० १६७२) मे उसका शाहजादे के साले मुहम्मदशाह मीर तोजक (जो कोतवाल था) से एक दिन झगडा हो गया, जिसने भीषण रूप धारण किया। इस सम्बन्ध मे जोनाथन स्कॉट लिखता है—

'शाहजादे के साले मुहम्मदशाह मीर तोजक का हिरन भागकर मोहनसिंह के डेरे की तरफ चला गया था, जिसको मोहनसिंह के सेवक पकड़कर अपने डेरे मे ले गये। उसको यह मालूम नही था कि यह हिरन किसका है। दूसरे दिन प्रात काल जब मोहनसिंह अन्य सेवको के साथ शाहजादे के दीवानखाने में बैठा हुआ था तो मुहम्मदशाह उसके पास गया और भला बुरा कहने लगा। मोहनसिंह ने कहा मैं अपने स्थान पर जाते ही हिरन तुम्हारे यहा पहुचा दूगा, परन्तु इससे उसे सतोष नही हुआ और उसने कहा कि हिरन को अभी का अभी मगवा दो, नही तो मैं तुम्हे उठने न दूगा। मोहनसिंह इसपर क्रुद्ध होकर खडा हो गया और उसने अपनी तलवार पर हाथ डाला। दोनो तरफ से तलवारे चलने लगी, जिससे दोनों के बड़े घाव लगे। अत मे शाहजादे के कितनेक सेवक मोहनसिंह की तरफ दौडे। उस समय मोहनसिंह रक्त बहने से निस्तेज होकर दीवानखाने के थभे के सहारे खड़ा था। एक दूसरे आदमी ने उसके सिर पर प्रहार किया, जिससे वह मूर्छित होकर जमीन पर गिर गया।

'मोहनसिंह का बड़ा भाई पद्मसिंह, जो दीवानखाने की दूसरी तरफ बैठा हुआ था, अपने भाई के घायल होने का समाचार सुन दौड़ा और अपनी तलवार के एक प्रहार से ही उसने मुहम्मदशाह का काम तमाम कर दिया[1], जिसपर शाहज़ादे के नौकर घबराकर इधर उधर भाग निकले। पद्मसिंह, मुहम्मदशाह के पास खड़ा रहा और उसने यह निश्चय किया कि इसको कोई उठाने के लिए आवे तो उसको भी मार डालूं। फिर उसके भाई (मोहनसिंह) के बहुत से राजपूत पालकी लेकर आ पहुंचे, जिसमें वे मोहनसिंह को, जो अब तक जीवित था, रखकर ले चले। अनन्तर शाहज़ादे ने वहां आकर आज्ञा दी कि मोहनसिंह को मारनेवाले की पूरी जांच की जावे, किन्तु नौकरों ने उसे छिपा दिया। पद्मसिंह को यह भय था कि शाहज़ादा मुझ पर नाराज होगा, तो भी वह वहां से न हटा। इतने में राजा रायसिंह सीसोदिया (टोड़े का), जो पांच हज़ारी मनसबदार था, आ पहुंचा और उसको मोहनसिंह के डेरे में ले गया। मोहनसिंह का डेरे पहुंचने

(१) सिंढायच दयालदास (ख्यात, जि० २, पत्र ४२) और कर्नल पाउलेट (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४२) लिखते हैं कि मोहनसिंह और मुहम्मदशाह के बीच झगड़ा होने का हाल सुनकर पद्मसिंह दौड़कर पहुंचा और उसने मोहनसिंह को ज़मीन पर पड़ा हुआ देखकर कहा कि तुम वीर होकर इस तरह कायरों की भांति क्यों पड़े हो ? तब मोहनसिंह ने कहा कि मेरे पीठ पर के घावों को देखो। मुझे घायल करनेवाला कोतवाल अभी ज़िन्दा है। इसपर पद्मसिंह तलवार खींच थंभे के पास खड़े हुए कोतवाल पर टूट पड़ा और एक ही प्रहार में उसे मार डाला। पद्मसिंह की इस फुर्ती और वीरतापूर्ण प्रहार पर किसी कवि ने ऐसा कहा है—

एक घड़ी आलोच, मोहन रे करतो मरण।
सोह जमारो सोच, करता जातो करणावत ॥

भावार्थ—मोहनसिंह के मरण पर यदि एक घड़ी भर भी विचार करता रह जाता तो हे करणसिंह के पुत्र, तेरा सारा जीवन सोच करते ही बीतता।

इसका आशय यह है कि यदि उस समय पद्मसिंह एक घड़ी भर की भी देर कर देता तो मोहनसिंह का हत्याकारी भाग जाता, जिससे वह उसका बदला फिर नहीं ले सकता था और जीवन पर्यन्त उस(पद्मसिंह)को यही सोच बना रहता कि मैंने अपने भाई मोहनसिंह का बदला नहीं लिया।

के पूर्व ही देहांत हो गया और उसकी एक स्त्री सती हुई[1]।'

बीकानेर के देवी कुंड पर उसकी स्मारक छत्री है, जिसमें वि० सं० १७२८ चैत्र सुदि ७ (ई० स० १६७१ ता० ७ मार्च) को उसका देहांत होना लिखा है[2]।

वैसे तो अनूपसिंह के पहिले बीकानेर के कई शासकों—रायसिंह, कर्णसिंह आदि—की प्रवृत्ति विद्याप्रेम की ओर रही थी, परन्तु उसका विकास अनूपसिंह में अधिक हुआ था। वह जैसा वीर था वैसा ही संस्कृत और भाषा का विद्वान्, विद्वानों का सम्मानकर्त्ता एवं उनका आश्रयदाता था। उसने स्वयं भिन्न भिन्न विषयों पर संस्कृत में कई ग्रन्थ निर्माण किये थे, जिनमें 'अनूपविवेक[3]' (तंत्रशास्त्र), 'कामप्रबोध[4]' (कामशास्त्र), 'श्राद्धप्रयोग चिन्तामणि'[5] और 'गीतगोविन्द' की 'अनूपोदय' नाम की टीका[6] का निश्चय रूप से पता

अनूपसिंह का विद्यानुराग

(१) जोनाथन स्कॉट, हिस्ट्री ऑव् डेक्कन, जि० २, पृ० ३० ।

(२) संवत् १७२८ चैत्रमासे शुक्लपक्षे सप्तम्यां श्रीकर्णसिंहजीतत्पुत्रमहाराजश्रीमुहणसिंहजीवर्मा एकया धर्मपत्न्या सह देवलोकमगमत् ।

(३) ऑफ्रेक्ट, कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम्, भाग १, पृ० १८ ।

(४) डॉक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, कैटेलॉग् ऑव् संस्कृत मन्युस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी ऑव् हिज हाइनेस दि महाराजा ऑव् बीकानेर, पृ० ५३२, संख्या ११३३ । ऑफ्रेक्ट, कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम्, भाग १, पृ० ९३ ।

(५) वही, पृ० ४७१, संख्या १०१३ । ऑफ्रेक्ट, कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम् भा० १, पृ० ६६६ ।

(६) श्रीमद्राजाधिराजेंद्रतनयोऽनूपभूपतिः ।
व्याचक्रे जयदेवीय सर्गोऽगात्तद्द्वितीयकः ॥

यह ग्रन्थ काश्मीर राज्य के पुस्तक भण्डार में है । डाक्टर एम० ए० स्टाइन, कैटेलॉग् ऑव् दि संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि रघुनाथ टेम्पल लाइब्रेरी ऑव् हिज हाइनेस दि महाराजा ऑव् जम्मू एण्ड काश्मीर, पृ० २८०-८१, संख्या १२८६ ।

चलता है। उसके आश्रय में कितने ही संस्कृत के विद्वान् रहते थे, जिन्होंने उसकी आज्ञा से अनेक विषयों के संस्कृत ग्रन्थ लिखकर उसका नाम अमर किया। उन विद्वानों के लिखे हुए बहुत से ग्रन्थ अब भी उपलब्ध होते हैं। श्रीनाथ सूरि के पुत्र विद्यानाथ (वैद्यनाथ) सूरि ने 'ज्योत्पत्ति सार[1]' (ज्योतिष), गंगाराम के पुत्र मणिराम दीक्षित ने 'अनूपव्यवहार सागर[2]' (ज्योतिष), 'अनूपविलास[3]' या 'धर्माम्बुधि' (धर्मशास्त्र), भद्रराम

(१) नत्वा श्रीमदनूपसिंहनृपतेराज्ञावशाददद्भुतं
वक्ष्येशेषविशेषयुक्तिसहितं ज्योत्पत्तिसारं परं ॥ २ ॥

इति श्रीमन्निखिलभूपालमौलिमालामिलन्मुकुटतटनटन्मरीचिमञ्जरी-पुञ्जपिञ्जरितमञ्जुपादाम्बुजयुगलप्रचण्डभुजदण्डचण्डिकाकर्णकुण्डलित-कोदण्डताण्डवाखण्डवरदृढखण्डितारिमुण्डपुण्डरीकमण्डितमहीमण्डला-खण्डलमहाराजाधिराजश्रीमदनूपसिंहभूपाज्ञया कारितेस्मिन् सकलागमा-चार्यश्रीमत्श्रीनाथसूरिसूनुविद्यानाथविरचितेज्योत्पत्तिसारे वासनाध्याय समाप्तः ।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, कैटेलॉग् ऑव् संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर, पृ० ३०७, संख्या ६६१ ।

(२) कुर्वे श्रीमदनूपसिंहवचनात् स्पष्टार्थसंसूचकम् ।
चक्रोद्धारमहं मुहूर्त्तविषये विद्वज्जनानां मुदे ॥

इति श्रीगङ्गारामात्मजदीक्षितमणिरामविरचिते अनूपव्यवहारसागरे नानाऋषिसम्मता ग्रहमुहूर्त्तचक्रोद्धाराख्या दशमी लहरी समाप्ता ।

वही, पृ० २६०, संख्या ६२२ ।

(३) यह पुस्तक अलवर के राजकीय पुस्तकालय में भी है ।

डा० राजेन्द्रलाल मित्र, कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर, पृ० ३६०, संख्या ७७८ । ऑफ्रेक्ट, कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम्, भाग १, पृ० १८ । पिटर्सन, कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् हिज़ हाइनेस दि महाराजा ऑव् अलवर, पृ० ५४, संख्या १२४६ ।

ने 'अयुतलक्षहोमकोटिप्रयोग[1]' (यज्ञ विषयक), अनन्तभट्ट ने 'तीर्थरत्नाकर[2]' और श्वेताम्बर उदयचन्द्र ने 'पाण्डित्यदर्पण[3]' नामक ग्रन्थों की रचना की थी। उस(अनूपसिंह)को राजस्थानी भाषा से भी बड़ी प्रीति थी, जिससे उसने अपने पिता के राजत्वकाल में ही 'शुकसारिका[4]' (सुआ

(१) इति ग्रहयज्ञत्रयसाधारणविधि ।

इति श्रीमहाराजाधिराजमहाराजानूपसिंहाज्ञया होमिगोपनामकभद्ररामेण अयुतहोम-लक्षहोम-कोटि-होमास्तथाथर्वणप्रयोगाश्च ॥

डा० राजेन्द्रलाल मित्र, कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर पृ० ३६५, संख्या ७८८ ।

(२) इति श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीमनमहाराजानूपसिंहस्याज्ञया मीमांसाशास्त्रपाठिना यदुसूनुना अनन्तभट्टेन विरचिते तीर्थरत्नाकरे सकलतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम कल्लोल ।

वही, पृष्ठ ४७७, संख्या १०२५ ।

(३) इति सूर्यवंशावतंससदसत्ययोवि(र्वि)वेचनराजहंसमहारा[ज] श्रीमदनूपसिंहदेवेनाज्ञप्तेन श्वेतांबरोदयचंद्रेण संदर्शिते पांडित्यदर्पणे प्रज्ञामुकुटमंडनादर्शो नाम नवमः प्रकाश ।

सी० डी० दलाल, ए कैटेलॉग ऑव् मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि जैन भन्डार्स ऐट् जैसलमेर, पृ० ५६ (गायकवाड् ओरिएन्टल सिरीज़, संख्या २१)।

(४) करिप्रणाम श्रीसारदा अपणी बुद्धि प्रमाण ।
सुकसारिक वार्त्ता करु द्यो मुझ अक्षर दान ॥ १ ॥
विक्रमपुर सुहामणो सुख संपति की ठौर ।
हिंदूस्थान हींदूधरम ऐसो सहर न और ॥ २ ॥
तिहां तपै राजा करण जगळ कौ पतिसाह ।
ताको कुंवर अनोपसिंह दाता सूर दुबाह ॥ ३ ॥
जोधवंस आखै जगत वंस राठौड विख्यात ।
अग्रै विजै थी ऊपना गोमती गंगामात ॥ ४ ॥

बहोत्तरी) की बहत्तर कथाओ का भाषानुवाद किसी विद्वान् से कराया। खेद का विषय है कि उक्त विद्वान् ने उस पुस्तक मे कही अपना नाम नहीं दिया। उसके कुवरपदे मे ही उसकी प्रशसा मे चारण गाडण वीरभाण ठाकुरसीओत ने 'वेलिया' गीतो मे 'राजकुमार अनोपसिंह री वेल' की रचना की[1]। इसके गीतो की सख्या ४१ है। फिर उसके राज्य समय मे 'वैताल पचीसी[2]' की कथाओ का कविता मिश्रित मारवाडी गद्य म अनुवाद हुआ तथा जोशीराय ने शुकसारिका की कथाओ का सस्कृत तथा मारवाड़ी कविता मिश्रित मारवाड़ी गद्य मे 'दपतिविनोद[3]' नाम से अनुवाद किया। इस ग्रन्थ

तिण मोकु आग्या दई सुप्रसन हुइकै एह।
सस्कृत हुती वारिता सुख सपति करि देह ॥ ५ ॥

[हमारे सग्रह की प्रति से]।

(१) टेसिटोरी, ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग आव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्, सेक्शन २, पार्ट १, पृ० ६०, बीकानेर।

(२) प्रणमूं सरसती माय वले बिनायक वीनवू।
सिध बुद्ध दिवराय सनमुग्व थाये सरस्वती ॥ १ ॥
देश मरूधर देव नवकोटी मै कोट नव।
बीकानेर विशेष निहचै मनकर जाणज्यो ॥ २ ॥
राज करै राठोड करण सूरसुत करण रौ।
मही छत्रीयां शिर मोड छत्रवट खुमांणो खरौ ॥ ३ ॥

॥ वारता ॥ दिक्षण देश रै विषै प्रस्थानपुर नगर। तठै विक्रमादित्य उजेणी नगरी रो धणी राज्य करै छै ॰॰॰।

(टेसिटोरी, ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्, सेक्शन १, पार्ट २, पृ० ४० १ बीकानेर)।

(३) समरूं देवी सरस्वती मत विस्तारण मात।
वीणा पुस्तक धारणी विघ्न हरण विख्यात ॥ १ ॥
गणपति वंदू चरण जुग ॰ ॰ ॰

मे पुरुषो तथा स्त्रियों के दूषणो का चित्रण किया गया है। इनके अति-रिक्त उस(अनूपसिंह)की आज्ञा से 'दूहा रत्नाकर'[1] नाम से शृंगाररस-पूर्ण तथा अलग-अलग विषयो के दोहो का सग्रह हुआ। महाराजा अनूपसिंह के आश्रय मे ही उसके कार्यकर्ता नाजर आनन्दराम ने श्रीधर की टीका के आधार पर गीता का गद्य और पद्य दोनो मे अनुवाद किया[2]।

बीकानेर सुहावणो दिन दिन चढ़तौ दौर।
हिन्दुस्थान मृजाद हद नव कोटी सिर मौर ॥ ३ ॥
राज करै राजा तिहां कमधज भूप अनूप।
सकबंधी करणेससुत राठौडा कुल रूप ॥ ४ ॥
देस राज सुभ देख कै मन मै भयो हुलास।
दपतिविनोद की वार्त्ता कहिस कथा सविलास ॥ ५ ॥

॥ अथ कथा प्रारभते ॥ अेकदा प्रस्थावै आबू विषैं विदग्धमग्ग इसै नाम सूवौ रहै। माहा चतुर ग्याता। सर्व सासत्र प्रवीण। सासत्र जोवता साभलता वैराग ऊपनौ जो स्त्री ससार बधनौ कारण छै।

(टेसिटोरी, ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् वार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्, सेक्शन १, पार्ट २, पृ० ४९ बीकानेर)।

(१) टेसिटोरी, ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनु-स्क्रिप्ट्स्, सेक्शन २, पार्ट १, पृ० ३१ बीकानेर।

(२) इस पुस्तक की वि० स० १८८३ की लिखी एक प्रति बयाना (भरतपुर राज्य) के बोहरा छाजूराम सनाढ्य ब्राह्मण के यहा मेरे देखने में आई। इसमें १९७ पत्रे हैं। इसका प्रारंभिक अश नीचे लिखे अनुसार है—

ॐ श्रीगणेशाय नम ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नम' ॥ श्रीपरमात्मने नम ॥ श्रीगुरुपरमात्मने नम ॥ अथ भगवद्गीता भाषा सयुक्त लिख्यते।

॥ दोहा ॥

हरगौरी गणेश गुरु, प्रणवौ सीस नवाय।
गीता भाषारथ करौ, दोहा सहित बनाय ॥ १ ॥

अनूपसिंह जैसा विद्वान् था वैसा ही सगीतज्ञ भी था। अकबर, जहांगीर और शाहजहा के दरबार मे सगीतवेत्ताओ का बडा आदर रहा, परन्तु औरगजेब ने गद्दी पर बैठने के बाद धार्मिक जिद मे पडकर अपने दरबार से सगीत की चर्चा उठा दी। तब शाही दरबार के सगीतवेत्ताओ ने जयपुर, बीकानेर आदि राज्यो में जाकर आश्रय लिया। उस समय शाहजहा के दरबार के प्रसिद्ध सगीताचार्य जनार्दनभट्ट का पुत्र भावभट्ट (सगीतराय) अनूपसिंह के दरबार मे जा रहा, जहा रहते समय उसने 'सगीतअनूपाकुश[1]',

---

सुथिर राज विक्रम नगर, नृपमनि नृपति अनूप।
थिर थाप्यो परधान यह राज सभा को रूप ॥ २ ॥
नाज़र आनदराम के, यह उपज्यो चित चाय।
गीता की टीका करौं, सुनि श्रीधर के भाव ॥ ३ ॥
गीता ज्ञान गंभीर लखि, रची जू आनंदराम।
कृष्णचरण चित लगि रह्यो, मन मे अति अभिराम ॥४॥
आनंदन उच्छव भयो, हरिगीता अवरेषि।
दोहारथ भाषा करी, वानी महा विशेष ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ॥ धृतराष्ट्र पूछते है ॥ सजय सौ कि हे सजय धर्म्म कौ क्षेत्र ऐसौ जु कुरुक्षेत्र ॥ ताविषैं एकत्र भये है ॥ अरु युद्ध की इच्छा करते हैं ॥ ऐसे मेरे अरु पाडव के पुत्र कहा करत भये ॥ दोहा ॥ धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र मे, मिले युद्ध के साज। सजय सो (आगे एक पंक्ति जाती रही है। फिर धर्म क्षेत्रे सस्कृत श्लोक है। इसी तरह सपूर्ण गीता का गद्य और पद्य मे अनुवाद है)।

नाज़र आनन्दराम महाराजा अनूपसिंह का मुसाहिब था। उसके पीछे वह महाराजा स्वरूपसिंह तथा महाराजा सुजानसिंह की सेवा मे रहा, जिसके समय मे वि० स० १७८९ चैत्र वदि ८ (ई० स० १७३३ ता० २६ फ़रवरी) को वह मारा गया।

(१) स्तोक मुद्रामुरीकृत्य सा[र्ध]वर्षत्रयात्मिका।
श्रीमदनूपसिहस्याज्ञ[ज्ञ]या ग्रथद्वय कृत ॥ २ ॥
एकोनूपविलासाख्योनूपरत्नाक[कु]र पर।
अनूपाकुशनामाय ग्रथो नि पाद्यतेधुना ॥ ३ ॥

'अनूपसगीतविलास'[1], अनूपसगीतरत्नाकर'[2], 'नष्टोद्दिष्टप्रबोधकध्रौपद टीका'[3] आदि ग्रन्थो की रचना की । इनके अतिरिक्त और भी ग्रथ स्वय

इति चक्रवालिप्रबध' इति श्रीमद्राठवु[ड]कुलदिनकरमहाराजाधिराजश्रीकर्णसिहात्म[ज]नयश्रीविराजमानचतु[ ]समुद्रमुद्रावच्छिन्नमेदिनीप्रतिपालनचतुरवदान्मना[न्यता]तिशयनिर्जितचितामणिस्वप्रतापतापितारिवगा[र्ग]धर्म्मावतारश्रीमहाराजाधिराजश्रीमदनूपसिहप्रमा[मो]दितश्रीमहीमहे[न्द्र]मौलिमुकुटरत्नकिरणनीराजितचरणकमलश्रीसाहजा[साहिजहा]सभामडनसगीतरायजनार्दनमदाग[भट्टाग]जागुष्ट[नुष्टु]प् चक्रवर्ती सगीतरायभावभट्टविरचिते सगीतानूपाकुशे प्रबधाध्याय समाप्त चतुर्थ ॥

यह ग्रन्थ काश्मीर राज्य के पुस्तक भडार मे है ।

डॉक्टर स्टाइन, कैटेलॉग ऑव दि सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि रघुनाथ टेम्पल लाइब्रेरी ऑव् हिज हाइनेस दि महाराजा ऑव् जम्मू एण्ड काश्मीर, पृ० २६७, सख्या १११२ ।

(१) इति श्रीमद्राठोरकुलदिनकरमहाराजाधिराजश्रीकर्णसिहात्मजजयश्रीविराजमानचतु समुद्रावच्छिन्नमेदिनीप्रतिपालनचतुरवदान्यातिशयनिचितचिन्तामणिस्वप्रतापतापितारिवर्गधर्म्मावतारश्रीमदनूपसिहप्रमोदितश्रीमहीमहीन्द्रमौलिमुकुटरत्नकिरणनीराजितचरणकमलश्रीसाहिजहासभामण्डनसङ्गीतराजजनार्द्दनभट्टाङ्गजानुष्टुप्चक्रवर्त्तिसङ्गीतरायभावभट्टविरचितेऽनूपसङ्गीतविलासे नृत्याध्याय समाप्त ॥

डॉक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, कैटेलॉग ऑव् दि सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर, पृ० ५१०, सख्या १०६१ ।

(२) देखो ऊपर पृ० २८५ टिप्पण १ ।

(३) इति श्रीभावभट्टसङ्गीतरायानुष्टुप्चक्रवर्त्तिविरचितनष्टोद्दिष्टप्रबोधकध्रौपदटीका समाप्ता ।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, कैटेलॉग ऑव् दि सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर, पृ० ५१४, सख्या १०६७ ।

महाराजा अनूपसिंह के रचे हुए अथवा उसके दरबार के विद्वानों के बनाये हुए माने जाते हैं[1], जिनका ठीक ठीक निश्चय नहीं हो सका ।

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद ने स्वयं महाराजा के बनाये हुए ग्रन्थों की नामावली में नीचे लिखे हुए नाम दिये हैं—

सन्तानकल्पलता (वैद्यक) ।
चिकित्सामालतीमाला (वैद्यक) ।
संग्रहरत्नमाला (वैद्यक) ।
अनूपरत्नाकर (ज्योतिष) ।
अनूपमहोदधि (ज्योतिष) ।
संगीतवर्तमान (संगीत) ।
संगीतानूपराग (संगीत) ।
लक्ष्मीनारायणस्तुति (वैष्णवपूजा) ।
लक्ष्मीनारायणपूजासार (छन्दोबद्ध, वैष्णवपूजा) ।
सांबसदाशिवस्तुति (शिवपूजा) ।
कौतुकसारोद्धार (राजविनोद) ।
संस्कृत व भाषा कौतुक ।

नीति ग्रन्थ—

महाराजा के आश्रय में बने हुए ग्रथों के नीचे लिखे नाम भी दिये हैं—

धर्म्मशास्त्र — महाशान्ति, रामभट्ट कृत ।
शान्तिसुधाकर, विद्यानाथसूरि कृत ।

कर्म्म विपाक — केरली सूर्य्यारुणास्य टीका, पन्तुजीभट्ट-कृत ।

वैद्यक — अमृतमंजरी, होसिंग भट्ट कृत ।
शुभमंजरी, अम्बकभट्ट कृत ।

ज्योतिष — अनूपमहोदधि—वीरसिंह ज्योतिषराट् कृत ।
अनूपमेघ—रामभट्ट कृत ।

संगीत — संगीतविनोद, भावभट्ट कृत ।
संगीतअनूपोद्देश्य, रघुनाथ गोस्वामी-कृत ।

विष्णुपूजा — नाना छन्दों में श्रीलक्ष्मीनारायणस्तुति—शिव पण्डित कृत ।

शिवपूजा—रुद्रपति, रामभट्ट कृत ।
शिवताण्डव की टीका, नीलकंठ कृत ।
अनूपकौतुकार्णव, रामभट्ट कृत ।
यन्त्रकल्पद्रुम, विद्यानाथ-कृत ।

महाराजा कर्णसिंह से नाराज़ होने के कारण बादशाह औरंगज़ेब ने उसके जीवनकाल में ही उसके पुत्र अनूपसिंह को बीकानेर का शासन-भार सौंप दिया था। वह वीर, राजनीतिज्ञ, दयालु और विद्याप्रेमी था। बादशाह की तरफ़ की दक्षिण, गोलकुंडे आदि की लड़ाइयों में शामिल रहकर उसने बड़ी वीरता दिखलाई थी। इसके अतिरिक्त वह क्रमशः आदूणी और औरंगाबाद का बादशाह की तरफ़ से शासक भी रहा, जहां का प्रबन्ध उसने बड़ी बुद्धिमानी से किया। बादशाह की तरफ़ से उसे 'माही मरातिब' का सम्मान भी मिला था[1]। स्वदेश की तरफ़ से भी वह उदासीन न रहा। खारबारा आदि में सरदारों का उपद्रव बढ़ने पर उसने उनका दमन कराया।

महाराजा अनूपसिंह का व्यक्तित्व

अनेक प्रकार के छन्दों में—लक्ष्मीनारायणस्तुति—
भट्ट शिवनन्दन कृत।
यन्त्रचिन्तामणि, दामोदर कृत।
तन्त्रलीला, तर्कानन सरस्वती भट्टाचार्य कृत।
सहस्रार्जुनदीपदान, त्रिम्बक-कृत।
वायुस्तुतनुष्ठानप्रयोग, रामभट्ट कृत।

राजधर्म—कामप्रबोध, जनार्दन कृत।
दशकुमारप्रबन्ध, शिवराम कृत।
माधवीयकारिका, शांबभट्ट कृत।
(मुंशी देवीप्रसाद, राजरसनामृत; पृ० ४६-४८)।

(१) पाउलेट, गैज़ेटियर, ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० १२३।

'माहि मरातिब' मुसलमान बादशाहों की तरफ़ से प्रमुख राजाओं आदि को मिलनेवाला बहुत बड़ा सम्मान माना जाता था। फ़ारस के बादशाह सुप्रसिद्ध नौशेरवां के पौत्र खुसरु परवेज़ ने सर्वप्रथम इसका प्रारंभ किया था। सेनापति बहराम द्वारा निकाले जाने पर वह यूनान के बादशाह मारिस की शरण में गया, जिसकी पुत्री शीरीं के साथ उसका विवाह हुआ। अनन्तर नार्सेस की अध्यक्षता में एक सेना के साथ वह पुनः फ़ारस लौटा और ई० स० ५९१ में वहां की गद्दी पर बैठा। उस दिन चन्द्रमा मीन राशि में था, अतएव उसने धातु के दो गोले बनवाये और उन्हें लम्बे डंडों में लगवाया, जो 'कौकाब' अर्थात् सितारे कहलाये। ये दो

उसका अनौरस भाई बनमालीदास बादशाह के पास चला गया था, जहा उसने मुसलमान धर्म ग्रहणकर बीकानेर का आधा राज्य अपने नाम लिखवा लिया। अनूपसिंह बादशाह की कट्टरता से भलीभांति परिचित था और वह यह भी अच्छी तरह से समझता था कि बनमालीदास के हाथ में राज्य जाने से उसका परिणाम क्या होगा। अतएव उसने इस अवसर पर कूटनीति से काम लिया और उस(बनमालीदास)के बीकानेर आने पर उसे छल से मरवा डाला। यह कार्य इतनी अच्छी तरह से हुआ कि बादशाह किसी प्रकार का सन्देह न कर सका और इस भांति शाही दरबार मे बीकानेर का गौरव पहिले जैसा ही बना रहा।

अनूपसिंह का बनवाया हुआ सुदृढ़ किला अनूपगढ़ उसकी कला प्रियता का परिचय देता है। अपने सुयोग्य पूर्वजो के अनुरूप ही उसमे

सितारे, एक तीसरे लम्बे डडे मे लगी हुई सुवर्णनिर्मित मछली के साथ जो दोनों के बीच में रहती थी, बादशाह की प्रत्येक सवारी मे उसके ठीक पीछे और प्रधान मत्री के आगे रक्खे जाते थे। पीछे से दोनों सितारे तावे के और आकृति में कुछ अडाकार बनने लगे, पर मछली सोने की ही बनती रही। ससानियनवशी बादशाहों के बाद नूह समानी फ़ारस का बादशाह हुआ। उसके तख़्तनशीन होने के समय चन्द्रमा सिंह राशि में था, जिससे उसने सोने की सिंह के शिर की आकृति उक्त चिह्नों के साथ और बढ़ा दी। वह भी माही मरातिब का सम्मान कहा जाता था। तैमूर के वशज भारत के मुगल बादशाहों के समय से इसका चलन यहा भी शुरू हुआ और यह सम्मान वे अपने कृपापात्र बड़े लोगो को समय समय पर देते रहे। इसके देने में धर्म-सम्बन्धी बन्धन का विचार नही किया जाता था (देखो मेजर जेनरल सर डब्ल्यू० एच० स्लीमैन कृत 'रैम्बल्स एण्ड रिकलेक्शन्स ऑव् ऐन इन्डियन आफ़िशियल' पृ० १३२ ७)। पीछे से मुगल बादशाह अपने सिंहासनारुढ़ होने के समय क विभिन्न राशियों के अलग अलग चिह्न बनवाने लगे। बादशाह जहागीर के सिक्कों पर बारहों राशियों के एक एक करके चिह्न मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि मुगल बादशाहों का भी ग्रह, राशि आदि पर बड़ा विश्वास था।

बीकानेर के नरेशो मे महाराजा अनूपसिंह के बाद यह सम्मान महाराजा गजसिंह तथा महाराजा रत्नसिंह को भी मिला, जिनके चिह्न गढ़ में सुरक्षित है। इनमें एक स्त्री का शिर है, जो कन्या राशि का सूचक होना चाहिये।

भी विद्याप्रेम का प्रस्फुरण हुआ था। उसके दरबार मे साहित्य सेवियों का बडा सम्मान होता था और स्वय उसने भिन्न भिन्न विषयों पर सस्कृत तथा भाषा मे कई ग्रन्थ लिखे थे। साथ ही अन्य विद्वानों ने भी उसके आश्रय में रहकर अनेकों ग्रन्थो का निर्माण किया अथवा उनपर टीकाए बनाई।

औरगजेब ने धार्मिक कट्टरता के कारण अपने दरबार से सगीत की चर्चा ही उठा दी, जिससे सगीत के कई विद्वानों ने राजपूताने के भिन्न भिन्न राज्यों में आश्रय लिया। उनमें से कुछ के बीकानेर में आने पर, महाराजा ने उनको बडे सम्मान के साथ रक्खा, क्योकि वह स्वय सगीत का विद्वान् था। उन्होंने वहा रहते समय सगीत विषयक कई अमूल्य ग्रथो की रचना की, जिनका वर्णन ऊपर किया गया है।

वह समय हिन्दुओं के लिए बडे सकट का था। बादशाह औरगजेब की कट्टरता यहा तक बढ गई थी कि उसकी दक्षिण की चढ़ाइयो के समय वहा के ब्राह्मणो को अपनी पुस्तक नष्ट किये जाने का भय रहता था। मुसलमानो के हाथ से अपनी हस्त लिखित पुस्तकों के नष्ट किये जाने की अपेक्षा वे कभी कभी उन्हे नदियों मे बहा देना श्रेयस्कर समझते थे। सस्कृत ग्रन्थो के इस प्रकार नष्ट किये जाने से हिन्दू-सस्कृति के नाश हो जाने की पूरी आशका थी। ऐसी दशा में वीर एव विद्यानुरागी महाराजा अनूपसिंह ने उन ब्राह्मणो को प्रचुर धन दे-देकर उनसे पुस्तकें खरीदकर बीकानेर के सुरक्षित दुर्ग स्थित पुस्तक भडार में भिजवानी प्रारम्भ कर दी। यह कार्य कितने महत्त्व का था, यह वही समझ सकता है, जिसे बीकानेर राज्य का सुविशाल पुस्तकालय देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। यह कहने की आवश्यकता नही कि महाराजा अनूपसिंह जैसे विद्यारसिक शासको के उद्योग के फलस्वरूप ही उक्त पुस्तकालय में ऐसे ऐसे बहुमूल्य ग्रथ अबतक सुरक्षित हैं, जिनका अन्यत्र मिलना कठिन है। मेवाड़ के महाराणा कुभकर्ण (कुभा) के बनाये हुए सगीत ग्रथों का पूरा सग्रह केवल बीकानेर के पुस्तक भडार मे ही विद्यमान है। ऐसे ही और भी कई अलभ्य ग्रथ वहा विद्यमान हैं। ई० स० १८८० में कलकत्ते के

सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने इस बृहत् सग्रह की बहुत सी सस्कृत पुस्तकों की सूची ७४५ पृष्ठो में छपवाकर कलकत्ते से प्रकाशित की थी। उक्त सग्रह में राजस्थानी भाषा की पुस्तकों का भी बहुत बड़ा सग्रह है, जिनकी सूची अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है।

दक्षिण में जहा कहीं मुसलमान सैनिक हिन्दू मदिरो को तोडते वहा उनकी मूर्तियों को भी वे नष्ट कर देते थे। ऐसे प्रसगों पर महाराजा अनूपसिंह ने दक्षिण में रहते समय बहुतेरी सर्वधातु की बनी मूर्तियों की भी रक्षा की और उन्हे बीकानेर पहुचवा दिया, जहा के किले के एक स्थान में सब की सब अबतक सुरक्षित हैं और वह 'तैंतीस करोड देवताओं का मदिर' के नाम से प्रसिद्ध है।

महाराजा अनूपसिंह जैसे विद्याप्रेमी, विद्वान् और विद्वानों के आश्रयदाता राजा राजपूताने में कम ही हुए हैं और इस दृष्टि से उसका नाम ससार में सदैव अमर रहेगा।

महाराजा स्वरूपसिंह

महाराजा अनूपसिंह के ज्येष्ठ पुत्र स्वरूपसिंह का जन्म वि० स० १७४६ भाद्रपद वदि १ (ई० स० १६८९ ता० २३ जुलाई) को हुआ था[1]।

जन्म, गद्दीनशीनी तथा दक्षिण में नियुक्ति

पिता की मृत्यु के समय वह आदूणी में ही था और वहीं नौ वर्ष की अवस्था में उसकी गद्दीनशीनी हुई। आरभ से ही वह औरगाबाद तथा बुरहानपुर में बादशाह के प्रतिनिधि की हैसियत से कार्य करता रहा[2]। हि० स० ११११

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४८। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५००। बाकीदास कृत 'ऐतिहासिक बाते, (सख्या १६५३ मे) लिखा है कि स्वरूपसिंह का कुवरपदे मे देहात हो गया, लेकिन आगे चलकर (सख्या १४३५ में) लिखा है कि वह छ मास राज्य करने के बाद शीतला से मरा, परन्तु ये दोनो बातें निर्मूल हैं, क्योंकि स्वरूपसिंह की स्मारक छत्री के लेख से स्पष्ट है कि वह लगभग दो वर्ष राज्य करने के बाद मरा।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ४८।

ता० २२ मुहर्रम (वि० सं० १७५६ श्रावण वदि १० = ई० स० १६६६ ता० १० जुलाई) को महाराजा स्वरूपसिंह राम राजा के बाल बच्चों को, जो ज़ुल्फ़िकारखां की कैद में थे, अपने साथ लेकर बादशाह के पास पहुंचा[1]। फ़ारसी तवारीख़ों से पाया जाता है कि उसे एक हज़ार ज़ात और पांच सौ सवार का मनसब प्राप्त हुआ तथा वह ज़ुल्फ़िकारखां के साथ शाही सेवा में रहा[2]।

स्वरूपसिंह की माता का कई मुसाहबों को मरवाना

बीकानेर में राज्य कार्य स्वरूपसिंह की माता सीसोदणी चलाती थी, परन्तु मुसाहबों में परस्पर मन मुटाव था। एक दल में कुंवर भीमसिंह (महाजन), ठाकुर पृथ्वीसिंह (भूकरका), अमरसिंह (जसाणा) और ललित नाज़िर[3] आदि थे। दूसरे दल में मूंधड़ा जसरूप चतुर्भुज प्रमुख था। वह स्वरूपसिंह के साथ रहता था, परन्तु उसके अनुयायी मान रामपुरिया, कोठारी नैणसी, अमरचन्द तथा कर्मचन्द बीकानेर में रहकर राज्य कार्य में योग देते थे। राजमाता को ललित पर पूरा विश्वास था, इसलिए एक दिन जब वह बीमार पड़ी और उसको कई बार वमन हुए तो उस-(ललित)ने उसके मन में यह बात जमादी कि मान रामपुरिया आदि उसको विष देकर मार डालना चाहते हैं। इसपर उसने स्वरूपसिंह को इसका प्रबन्ध करने के लिए लिखा। उसने मुकुंदराय को, जो राजमाता का पत्र लेकर गया था, समझा-बुझाकर बीकानेर भेजा, जहां पहुंचकर उसने मान रामपुरिया, कोठारी नैणसी, अमरचन्द और कर्मचंद को महाराजा का पत्र दिखलाने के बहाने बुलवाकर कैद कर दिया और पीछे से राजमाता के आदेशानुसार मरवा डाला। जब यह समाचार दक्षिण में पहुंचा तो खवास उदयराम तथा अन्य सरदारों ने महाराजा से निवेदन किया कि यह कार्य अनुचित हुआ, अब ऐसे स्वामीभक्त सेवक कहां मिलेंगे? वह तो बालक बुद्धि था, उसके हृदय में उनकी बातों ने घर कर

(१) वीरविनोद, भाग २, पृ० ७१७।

(२) उमराए हनूद, पृ० ६३। व्रजरत्नदास, मआसिरुल् उमरा (हिन्दी), पृ० ६०।

(३) अंतःपुर में रहनेवाले नपुंसक बनाये हुए पुरुष (ख़ोजे)।

लिया और उसकी नजर ललित की तरफ से फिर गई[1]।

ललित ने जब यह दशा देखी तो वह सुजानसिंह तथा आनन्दसिंह से मिल गया और उसने उनकी मा से कहा कि सीसोदिणी राणी कुछ ही दिनों में आपके पुत्रो को मरवा देगी, अतएव अभी से इसका प्रबन्ध करना चाहिये। तब उसके कहने से उस(ललित)ने दोनों कुमारो को साथ लेकर बादशाह की सेवा में प्रस्थान किया[2]।

ललित का सुजानसिंह से मिल जाना

तीन मजिल पहुचने पर उनके डेरे हुए। वहा से भी वे आगे बढना चाहते थे, परन्तु जैसलमेर के एक शकुन जाननेवाले भाटी के कहने से वे १६ पहर तक और ठहर गये। ठीक उसी समय जब कि वे वहा से कूच करने का आयोजन कर रहे थे, दो कासिद शीघ्रतापूर्वक आते हुए दिखाई पडे। ललित ने उन्हे पास बुला कर समाचार पूछा तो ज्ञात हुआ कि स्वरूपसिंह का आदूणी मे शीतला[3] से देहात हो गया और वे उसी की खबर देने बीकानेर जा रहे हैं। तब ललित आदि वहा से ही बीकानेर लौट गये[4]।

स्वरूपसिंह की मृत्यु

स्वरूपसिंह की बीकानेरवाली स्मारक छतरी के लेख से पाया जाता है कि वि० स० १७५७ मार्गशीर्ष सुदि १५ (ई० स० १७०० ता०

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ५८ ९। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५००। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४५।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ५९। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४५ ६।

(३) टॉड लिखता है कि स्वरूपसिह आदूणी लेने के प्रयत्न मे मारा गया (जि० २, पृ० ११३७), परन्तु वह तो आदूणी का शासक ही था अतएव इसपर विश्वास नही किया जा सकता।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ५९। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५००। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४६।

१५ दिसम्बर) को उसका देहांत हुआ[1]।

महाराजा सुजानसिंह

महाराजा स्वरूपसिंह के छोटी अवस्था मे ही नि सन्तान मर जाने पर उसका छोटा भाई सुजानसिंह, जिसका जन्म वि० स० १७४७ श्रावण सुदि ३ (ई० स० १६९० ता० २८ जुलाई) सोमवार को हुआ था, वि० स० १७५७ (ई० स० १७००) मे बीकानेर का स्वामी हुआ[2]।

जन्म और गद्दीनशीनी

उन दिनो बादशाह औरंगजेब दक्षिण मे था। वहा से उसने सुजानसिंह को बुलवाया, जिसपर वह (सुजानसिंह) अपने सरदारों के साथ बादशाह की सेवा म जा रहा[3] और करीब दस वर्ष वहा रहने के बाद बीकानेर लौटा।

सुजानसिंह का दक्षिण जाना

वि० स० १७३६ (ई० स० १६७९) मे महाराजा जसवन्तसिंह[4] की मृत्यु हो जाने पर बादशाह ने मारवाड पर अधिकार करके वहा का प्रबन्ध करने के लिए शाही अफसर नियुक्त कर दिये थे[5]। वि० स० १७६३ फाल्गुन वदि अमावास्या (ई० स० १७०७ ता० २१ फरवरी) को अहमदनगर मे औरंगजेब का देहांत हो जाने से साम्राज्य में बडी अव्यवस्था

अजीतसिंह की बीकानेर पर चढाई

---

(१) सवत् १७५७ मिती मिगसर सुदि १५ महाराजाधिराज-महाराजश्रीअनोपसिहजीतत्पुत्रमहाराजाधिराजमहाराजश्रीस्वरूपसिहजी देवलोके गत ।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ५९ । वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०० ।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६० । पाउलेट, गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४९ ।

(४) जोधपुर का स्वामी—गजसिंह का पुत्र ।

(५) सरकार, शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब, पृ० १६९ ७० ।

फैल गई[1]। इस अनुकूल परिस्थिति से लाभ उठाकर अजीतसिंह[2] ने वि० स० १७६३ फाल्गुन सुदि १५ (ई० स० १७०७ ता० ७ मार्च) को जोधपुर पहुंच जफरकुलीखा को हटा दिया और इस भाति अपने पैतृक राज्य पर फिर अधिकार कर लिया[3]। औरगजेब की मृत्यु के बाद मुगल-साम्राज्य का शासनाधिकार बहादुरशाह[4] के हाथ मे चला गया। सुजानसिंह पूर्व की भाति ही दक्षिण मे रहा और बीकानेर का राज्य कार्य मत्री तथा अन्य सरदार करते रहे। सुजानसिंह की अनुपस्थिति मे राज्य विस्तार करने का अच्छा अवसर देखकर अजीतसिंह ने फौज के साथ बीकानेर की ओर प्रस्थान किया और लाडणू मे आकर डेरे किये। राज्य की सीमा के तेजसिंहोत बीदावत, सुजानसिंह से विरोध रखते थे, अजीतसिंह ने उन्हे लाडणू बुलाकर बातचीत की, जिससे उनमे से अधिकाश उसके सहायक हो गये, परन्तु गोपालपुरा के कर्मसेन तथा बीदासर के बिहारीदास ने इस दुष्कार्य मे सहयोग देना स्वीकार न किया, जिससे अजीतसिंह ने उन्हे नजर कैद कर दिया और भडारी रघुनाथ को एक बडी सेना के साथ बीकानेर पर भेजा। कर्मसेन और बिहारीदास ने नजर कैद होने पर भी इस चढाई का समाचार गुप्त रूप से बीकानेर भिजवा दिया, परन्तु बीकानेरवालो की सामर्थ्य जोधपुरवालो का सामना करने की न पडी, जिससे वहा पर अजीतसिंह का अधिकार हो गया और नगर मे उसकी दुहाई फिर गई। बीकानेर मे रामजी नामका एक वीर, साहसी एव राजभक्त लुहार रहता था। उसके हृदय को यह घटना इतनी असह्य हुई कि वह अकेला ही जोधपुर के सैनिको से भिड गया और पाच आदमियो को मारकर मारा गया। इस घटना से बीकानेर के सरदारो

---

(१) सरकार, शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरगज़ेब, पृ० ३८३।

(२) महाराजा जसवतसिंह का पुत्र।

(३) सरकार, शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरगज़ेब, पृ० ३९७।

(४) औरगज़ेब का दूसरा पुत्र मुअज़्ज़म। बादशाह की मृत्यु होने पर यह काबुल से आकर कुतुबुद्दीन शाहआलम बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा।

को भी जोश आया और भूकरका के ठाकुर पृथ्वीराज एव मलसीसर के बीदावत हिन्दूसिंह (तेजसिंहोत) सेना एकत्रकर जोधपुर की फौज के समक्ष जा डटे, जिससे जोधपुर की सेना मे खलबली मच गई। विजय की सारी आशा काफूर हो गई और जोधपुर के सारे सरदारो ने सन्धि कर लौट जाने मे ही भलाई समझी। जब अजीतसिंह के पास यह समाचार पहुचा तो उसने भी सेना का लौटना ही उचित समझा। फलत जोधपुर की सेना जैसी आई थी वैसी ही लौट गई। अजीतसिंह ने वापस लौटते वक्त कर्मसेन तथा बिहारीदास को मुक्त कर दिया[1]। अपनी अनुपस्थिति में बुद्धिमानी एव वीरता पूर्वक कार्य करने के लिए सुजानसिंह ने दक्षिण से लौटने पर पृथ्वीराज की प्रतिष्ठा बढाई[2]।

ख्यातो आदि मे महाराजा सुजानसिंह की वरसलपुर पर चढ़ाई होने का वर्णन नही मिलता है, परन्तु मथेन (मथेरण) जोगीदास[3] रचित 'वरसलपुर विजय' अर्थात् 'महाराजा सुजानसिंह रो रासो' मे इस चढ़ाई का वर्णन नीचे लिखे अनुसार मिलता है—

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४६।

जोधपुर राज्य की ख्यात में इस लड़ाई का उल्लेख नहीं है, परन्तु कविराजा श्यामलदास के 'वीरविनोद' नामक ग्रथ में भी लिखा मिलता है कि औरगज़ेब की मृत्यु होने पर, जोधपुर पर अधिकार करने के उपरान्त अजीतसिंह ने बीकानेर भी लेने का विचार किया, लेकिन उसका यह विचार पूरा न हुआ (भाग २, पृ० ५००)। इससे निश्चित है कि दयालदास का इस सम्बन्ध का वर्णन कोरी कल्पना नही है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६०।

(३) मथेन (मथेरण) = गृहस्थी बने हुए जैन यति।

इतिश्री श्रीमहाराजाधिराजमहाराजा श्री ५ श्रीसुजाणसिघजी वरसल्लपुर गढ विजय नाम समयः। मथेन जोगीदासकृत समाप्त. ॥ सवत् १७६६ वर्षे माघ सुदि ५ दिने लिखत।

एक काफिला मुलतान से बीकानेर को जा रहा था, जिसको वर-सलपुर की सीमा में वहा के भाटियो ने लूट लिया। जब काफिलेवालों ने महाराजा सुजानसिंह के दरबार में आकर शिकायत की तो प्रधान नाजिर आनन्दराम आदि की सलाह से महाराजा ने अपनी सेना के साथ प्रयाण कर वरसलपुर को जा घेरा। वहा के राव लखधीर को लूटा हुआ माल पीछा दे देने के लिए उसने कहलाया, पर उसने न माना। इसपर महाराजा ने गढ पर आक्रमण कर उसे विजय कर लिया। अत मे भाटियो ने क्षमा मागकर सेना व्यय देना स्वीकार किया, तब वहा से वह पीछा लौट गया[1]।

महाराजा सुजानसिंह का वरसलपुर विजय करना

अनन्तर वि० स० १७७६ आषाढ वदि ८ (ई० स० १७१९ ता० ३० मई) को सुजानसिंह डूगरपुर गया, जहा महारावल रामसिंह की पुत्री रूपकुवरी से उसका विवाह हुआ[2]। वहा से लौटते समय वह सलूबर के रावत केसरीसिंह के यहा ठहरा। महाराणा सग्रामसिंह (दूसरा) के आग्रह करने पर वह उदयपुर जाकर एक मास तक उसके साथ रहा। उसके घोडे की कुदान देखकर महाराणा ने उसकी बडी प्रशसा की, जिसपर उसने वह घोडा महाराणा को भेंट कर दिया। फिर नाथद्वारे मे श्रीनाथजी का दर्शन करता हुआ वह बीकानेर लौट गया[3]।

सुजानसिंह का डूगरपुर मे विवाह करना तथा लौटते समय उदयपुर ठहरना

मुगल बादशाहों में औरगजेब के समय मुग़ल साम्राज्य का विस्तार

---

(१) यह चढ़ाई वि० स० १७६७ और १७६९ के बीच होनी चाहिये क्योंकि वि० स० १७६९ की लिखी हुई उपर्युक्त पुस्तक विद्यमान है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६१। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५००। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४७।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६१। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५००। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४७।

सब से अधिक बढ़ा, परन्तु उसकी कट्टर धार्मिकता के कारण अकबर की डाली हुई मुग़ल साम्राज्य की नींव हिलने लगी और उसे जीतेजी ही यह मालूम हो गया कि मेरे पीछे राज्य की दशा अवश्य बिगड़ जायगी। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। उसके पीछे शाह-आलम (बहादुरशाह) ने लगभग ५ वर्ष तक राज्य किया[1]। फिर उसका पुत्र मुहम्मद मुईज़ुद्दीन (जहांदारशाह) तख़्त पर बैठा, परन्तु नौ मास बाद ही वह अपने भतीजे फ़र्रुख़सियर की आज्ञा से मार डाला गया[2]। फ़र्रुख़सियर भी अधिक दिनों तक राज्य सुख न भोग सका। वह तो नाम मात्र का ही बादशाह रहा, राज्य का सारा काम उसके समय में सैय्यद-बन्धु अब्दुल्लाखां तथा हुसैनखां करते थे, जिन्होंने जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह को अपने पक्ष में मिलाकर वि० सं० १७७६[3] (ई० स० १७१६) में उस (फ़र्रुख़सियर) को मरवा डाला[4]। फिर रफ़ीउद्दरजात और रफ़ीउद्दौला क्रमशः दिल्ली के तख़्त पर बैठे, परन्तु लगभग सात मास के अन्दर ही दोनों काल कवलित हो गये[5]। तदनन्तर बहादुरशाह का पौत्र तथा जहांदारशाह का पुत्र रोशनअख़्तर, मुहम्मदशाह का विरुद धारणकर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। कुछ दिनों बाद नवीन बादशाह (मुहम्मदशाह) ने सुजानसिंह को बुलाने के लिए अहदी (दूत) भेजे, परन्तु साम्राज्य की दशा दिन दिन गिरती जा रही थी, ऐसी परिस्थिति में

मुग़लों में राज्य की परिस्थिति और सुजानसिंह का स्वयं शाही सेवा में न जाना

(१) नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण), भाग ५, पृ० २६७।

(२) वही, भाग ५, पृ० २८।

(३) दयालदास की ख्यात में वि० सं० १७६६ (ई० स० १७०१) दिया है, जो ठीक नहीं है। इसी प्रकार उक्त ख्यात में आगे चलकर मुहम्मदशाह की मृत्यु आदि के जो संवत् दिये हैं, वे भी ग़लत हैं।

(४) वीरविनोद, भाग २, पृ० ८४१-४२।

(५) नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग ५, पृ० ३१२।

उसने स्वयं शाही सेवा में जाना उचित न समझा। फिर भी दिल्ली के बादशाह से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए उसने खवास आनन्दराम और मूधड़ा जसरूप को कुछ सेना के साथ दिल्ली तथा मेहता पृथ्वीसिंह को अजमेर की चौकी पर भेज दिया[1]।

जोधपुर के अजीतसिंह के हृदय में तो बीकानेर पर अधिकार करने की लालसा बनी ही थी। एक बार उसको पता लगा कि सुजानसिंह केवल थोड़े से मनुष्यों के साथ नाल में है। कुछ दिनों पूर्व (वि० सं० १७७३ में) सुजानसिंह के दूसरे कुंवर अभयसिंह का जन्म हुआ था। इस अवसर पर उस (अजीतसिंह) ने अपने दूतों के हाथ कुंवर अभयसिंह के जन्म के उपलक्ष्य में वस्त्राभूषण भिजवाये, पर उन्हें गुप्त रीति से कह दिया कि यदि अवसर मिले तो सुजानसिंह को पकड़ लाना, नहीं तो यह भेंट देकर चले आना। अजीतसिंह के इस गुप्त उद्देश्य का पता किसी प्रकार सुजानसिंह को लग गया, जिससे वह तत्काल नाल का परित्याग कर गढ़ में चला गया। तब दूत बीकानेर में भेंट आदि देकर जोधपुर लौट गये। इस प्रकार अजीतसिंह का आन्तरिक उद्देश्य सफल न हो सका[2]।

महाराजा अजीतसिंह का महाराजा सुजानसिंह को पकड़ने का प्रयत्न करना

कुछ दिनों बाद भट्टियों और जोहियों ने उत्पात करना आरंभ किया, अतएव वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में उनका दमन करने के लिए सुजानसिंह फौज एकत्रकर नोहर गया। उसका आगमन सुनते ही भट्टियों ने भटनेर के गढ़ की तालियां उसे सौंप दीं तथा पेशकशी के बीस हजार रुपये उसे दिये। वहां का समुचित प्रबन्ध करने के उपरान्त

विद्रोही भट्टियों को दबाना

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४७।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४७।

सुजानसिंह बीकानेर लौट गया[1]।

सुजानसिंह और उसके पुत्र जोरावरसिंह में मनमुटाव होना

सुजानसिंह के एक मुसाहब खवास आनन्दराम तथा जोरावरसिंह में वैमनस्य होने के कारण वह (जोरावरसिंह) उसको मरवाकर उसके स्थान में अपने प्रीतिपात्र मेहता फतहसिंह के पुत्र बख़्तावरसिंह को रखवाना चाहता था। अपनी यह अभिलाषा उसने पिता के सामने प्रकट भी की, पर जब उधर से उसे प्रोत्साहन न मिला तो वह नोहर में जाकर रहने लगा, जहां अवसर पाकर उसने वि० सं० १७८९ चैत्र वदि ८ (ई० स० १७३३ ता० २६ फरवरी) को आधीरात के समय खवास आनन्दराम को मरवा डाला। जब सुजानसिंह को इस अपकृत्य की सूचना मिली तो वह अपने पुत्र से अप्रसन्न रहने लगा। इसपर जोरावरसिंह ऊदासर जा रहा। तब प्रतिष्ठित मनुष्यों ने महाराजा सुजानसिंह को समझाया कि जो हो गया सो हो गया, अब आप कुंवर को बुला लें। इसपर सुजानसिंह ने कुंवर की माता देरावरी[2] तथा सीसोदणी राणी को ऊदासर भेजकर जोरावरसिंह को बीकानेर बुलवा लिया और कुछ दिनों बाद सारा राज्य कार्य उसे ही सौंप दिया[3]।

उन्हीं दिनों जैमलसर के भाटियों में विद्रोह का अंकुर उत्पन्न हुआ

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४७।

(२) मुहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि राणावत इन्द्रसिंह की कन्या राणी रत्नकुंवरी के गर्भ से जोरावरसिंह का जन्म हुआ था (जि० २, पृ० २०१), परंतु अन्य ग्रन्थों में उसका जन्म देरावरी राणी से ही होना लिखा है।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६२। वीरविनोद भाग २, पृ० ५०१। पाउलेट, गैज़ेटियर, ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४८। वीरविनोद में यह घटना जोधपुर के महाराणा अभयसिंह की चढ़ाई के बाद लिखी है, परन्तु जैसा कि दयालदास की ख्यात से प्रकट होता है यह उससे कुछ दिनों पहले की घटना है। जोधपुर की चढ़ाई से पहले ही पिता पुत्र के बीच का झगड़ा मिट गया था और जब वह चढ़ाई हुई तो जोरावरसिंह ने वीरतापूर्वक विरोधियों का सामना किया था।

और वहां का स्वामी उदयसिंह विपरीत आचरण करने लगा, अतएव कुंवर जोरावरसिंह उसपर फौज लेकर गया। दोपहर तक लड़ाई होने के बाद उदयसिंह ने अपने सम्बंधी कुशलसिंह को भेजकर सन्धि कर ली तथा पीछे से स्वयं जोरावरसिंह के समक्ष उपस्थित होकर उसने दो घोड़े तथा पेशकशी के पांच हजार रुपये उसे दिये और अधीनता स्वीकार कर ली। तब जैमलसर का ठिकाना फिर उसे देकर, जोरावरसिंह, ऊदासर, पुनरासर होता हुआ लौट गया[1]।

जोरावरसिंह का जैमलसर के भाटियों पर जाना

बादशाह फर्रुखसियर को मरवाने में सैय्यद अब्दुल्लाखां के साथ साथ जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह का भी हाथ था। पीछे से अब्दुल्लाखां के मुहम्मदशाह से लड़कर बन्दी होने की खबर पाकर महाराजा ने अजमेर आदि बादशाही जिलों पर कब्जा कर लिया। इसपर मुहम्मदशाह ने मारवाड़ पर फौज भेज दी। वि॰ सं॰ १७७९ (ई॰ स॰ १७२२) में मेड़ते पर घेरा पड़ने पर महाराजा ने सुलह करके अपने ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह को दिल्ली भेज दिया। कुंवर अभयसिंह को महाराजा जयसिंह तथा अन्य मुगल सरदारों ने समझाया कि फर्रुखसियर को मरवाने में शामिल रहने के कारण बादशाह महाराजा से अप्रसन्न है, तुम यदि मारवाड़ का राज्य अपने कब्जे में रखना चाहते हो तो उसे मार डालो। तब कुंवर ने अपने छोटे भाई बख्तसिंह को लिख भेजा, जिसने अपने भाई के इशारे के अनुसार वि॰ सं॰ १७८१ आषाढ सुदि १३ (ई॰ स॰ १७२४ ता॰ २३ जून) को जनाने में सोते समय अपने पिता को मार डाला। अभयसिंह ने जोधपुर का स्वामी होकर बख्तसिंह की इस सेवा के एवज में उसे राजाधिराज का खिताब एवं नागोर की जागीर दी[2]।

बख्तसिंह को नागोर मिलना

(१) दयालदास की ख्यात, जि॰ २, पत्र १२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ॰ ४८।

(२) वीरविनोद, भाग २, पृ॰ ८४१४।

वि० सं० १७९० (ई० स० १७३३)[1] में जब जोधपुर की गद्दी पर अभयसिंह था, उसके छोटे भाई बख़्तसिंह ने नागोर से एक बड़ी सेना लेकर बीकानेर पर अधिकार करने के विचार से प्रस्थान किया और स्वरूपदेसर के निकट आकर डेरे किये। उन दिनों सुजानसिंह का ज्येष्ठ पुत्र ज़ोरावरसिंह अपनी सेना सहित नोहर में था। महाराजा (सुजानसिंह) के समाचार भिजवाने पर वह अमरसर में चला आया, जहां बीकानेर की और फ़ौज भी उससे मिल गई। इस सम्मिलित सेना के साथ जोधपुर की सेना का तालाब नाजरसर पर मुक़ाबला होने पर, प्रथम आक्रमण में ही बख़्तसिंह की सेना के पैर उखड़ गये और वह भागकर अपने डेरों में चली गई। अनन्तर बख़्तसिंह के यह समाचार जोधपुर भेजने पर अभयसिंह स्वयं एक बड़ी सेना के साथ उससे आ मिला। फिर मोरचेबन्दी हुई और युद्ध जारी हुआ, परन्तु बीकानेरवालों ने गढ़ की रक्षा का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया था और इतनी दृढ़ता के साथ जोधपुरवालों का सामना कर रहे थे कि अभयसिंह को विजय की आशा न रही। फिर रसद आदि का पहुंचना भी जब बन्द हो गया तो अभयसिंह ने मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) से कहलाया कि आप अपने प्रतिष्ठित आदमियों को भेजकर हमारे बीच सुलह करा दें, जिसपर महाराणा ने चूंडावत जगत्सिंह (दौलतगढ़ का), मोही के भाटी सुरताणसिंह तथा पचोली कानजी (सहीवालों का पूर्वज) को दोनों दलों में सुलह कराने के लिए भेजा। पहले तो जोधपुरवालों ने सेना के ख़र्च की भी मांग की, परन्तु बीकानेरवालों ने वह शर्त स्वीकार नहीं की। पीछे से इस शर्त पर सुलह हुई कि जब जोधपुरवाले पीछा लौटें तो बीकानेरवाले उनका पीछा न

बख़्तसिंह का बीकानेर पर चढ़ाई

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में बख़्तसिंह का वि० सं० १७९१ (ई० स० १७३४) के भाद्रपद मास में बीकानेर पर चढ़कर जाना लिखा है (जि० २, पृ० १४२) जो ठीक नहीं है। वीरविनोद में भी वि० संवत् १७९० (ई० स० १७३३) ही मिलता है।

करें। तदनुसार फाल्गुन वदि १३ (ई० स० १७३४ ता० २० फरवरी) को दोनो भाई (अभयसिंह तथा बख्तसिंह) कूचकर नागोर चले गये[1]।

बख्तसिंह नागोर में निवास करता था। बीकानेर की प्रथम चढाई के असफल होने पर भी उसने अभी आशा का परित्याग न किया था।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६१। वीरविनोद भाग २, पृ० ५००१। पाउलेट गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४७।

यह घटना जोधपुर राज्य की ख्यात मे इस प्रकार दी है—'वि० स० १७६१ के भाद्रपद (ई० स० १७३४ अगस्त) मे बख्तसिंह ने बीकानेर पर चढ़ाइ की और गोपालपुर खरबूजी पर अधिकार करता हुआ वह बीकानेर की सीमा पर जा पहुचा। अनन्तर अभयसिंह भी जोधपुर से कूचकर खींवसर पहुचा, जहा पचोली रामकिशन, जिसे महाराज (अभयसिंह) ने एक लाख रुपया देकर फौज एकत्र करने के लिए भेजा था, चार हज़ार सवारो के साथ उससे आ मिला। बख्तसिंह के मोरचे लक्ष्मी-नारायण के मन्दिर की तरफ लगे थे। बीकानेरवालो ने बाहर आकर लड़ाई की, परन्तु बख्तसिंह के राजपूतो ने उन्हें फिर गढ के भीतर शरण लेने पर बाध्य कर दिया। इस बीच अभयसिंह भी सेना सहित आ पहुचा और नये सिरे से मोरचेबन्दी तथा युद्ध आरभ हुआ। बीकानेर के महाराजा सुजानसिंह का पुत्र जोरावरसिंह भाद्रा की तरफ था, वह भी काधलोत लालसिंह तथा अपनी ४००० सेना को साथ ले शहर में आ गया। चार महीने तक लड़ाइ हुइ, परन्तु बीकानेर की रक्षा के सुदृढ़ प्रबन्ध के कारण गढ़ टूटता दिखाइ न दिया। तब लालसिंह ने जोधपुरवालों को जाकर समझाया कि इस समय आपका चला जाना ही लाभप्रद होगा तथा उसने भविष्य मे चढ़ाई होने पर सहायता करने का वचन भी दिया। इसपर अभयसिंह और बख्तसिंह नागोर लौट गये (जि० २, पृ० १४२)।'

उपर्युक्त वर्णन मे महाराणा सग्रामसिंह (दूसरा) के आदमियों द्वारा दोनों दलों मे सधि स्थापित किया जाना नहीं लिखा है, परन्तु इसका उल्लेख 'वीरविनोद' में भी आया है (भाग २, पृ० ५०१), अतएव कोई कारण नही है कि इसपर अविश्वास किया जाय।

बीकानेर पर फिर अधिकार करने का बख़्तसिंह का विफल षड्यन्त्र

बीकानेर के वंशपरंपरागत क़िलेदार नापा साखला के वंशज दौलतसिंह ने अपने स्वामी से कपट करके बख़्तसिंह से बीकानेर के गढ़ पर उसका अधिकार करा देने के विषय में गुप्त मंत्रणा की। बख़्तसिंह तो यह चाहता ही था। दौलतसिंह के उद्योग से जैमलसर का भाटी उदयसिंह, शिव पुरोहित, भगवानदास गोवर्धनोत और उसके दो पुत्र हरिदास तथा राम एवं बीकानेर के कितने ही अन्य सरदार आदि भी विद्रोहियों से मिल गये। उदयसिंह के एक सम्बन्धी, पड़िहार राजसी के पौत्र जैतसी की बीकानेर राज्य में बहुत चलती थी। उन दिनों कुंवर जोरावरसिंह ऊदासर मे था, उदयसिंह जैतसी को साथ ले उसके पास ऊदासर में चला गया। इस प्रकार बीकानेर का गढ़ अरक्षित रह गया। ऊदासर में एक रोज गोठ के समय उदयसिंह अधिक नशे मे हो गया और ऐसी बातें करने लगा, जिससे स्पष्ट पता चलता था कि उसके मन मे कोई गुप्त भेद है। जैतसी ने जब अधिक जोर दिया तो उसने सारी बातें खोलकर उस(जैतसी)से कह दी। जैतसी सुनते ही तुरन्त सावधान हो गया और आसपास से सेना एकत्र करने को उसने ऊंट सवार भेजे। इतना करने के उपरान्त वह गढ़ के उस भाग में गया जहां पड़िहार रक्षा पर थे और उनसे रस्सी नीचे गिरवाकर वह गढ़ में दाख़िल हो गया। अनन्तर उसने महाराजा को इसकी सूचना दी। सुजानसिंह तत्काल जैतसी को लेकर सूरजपोल पर पहुंचा तो उसने उसके ताले खुले हुए पाये। इसी प्रकार गढ़ के अन्य दरवाजो के ताले भी खुले हुए थे। उसी समय सब दरवाजे मजबूती से बंद किये गये और गढ़ की रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर क़िले की तोपें दागी गई। साखला नाहरख़ां, बख़्तसिंह तथा उसके आदमियों को बुलाने गया हुआ था, जो गढ़ के निकट ही सूचना मिलने की बाट जोह रहे थे। जब उसने तोपों की आवाज सुनी तो समझ गया कि षड्यन्त्र का सारा भेद खुल गया। बख़्तसिंह ने भी जान लिया कि अब आशा फलीभूत होना असम्भव है, अतएव अपने साथियों सहित वह वहां से

निकल गया । उधर गढ़ के भीतर के साखले मार डाले गये तथा धायभाई को गढ़ की रक्षा का कार्य सौंपा गया । यह घटना वि० स० १७९१ आषाढ वदि ११ (ई० स० १७३४ ता० १६ जून) को हुई[1]।

सुजानसिंह का एक विवाह डूगरपुर में हुआ था, जिसके सम्बन्ध में ऊपर विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है। अन्य दो राणिया देरावरी[2] और सीसोदिणी थी, जिनका उल्लेख भी ऊपर आ गया है। सुजानसिंह के दो पुत्र हुए—देरावरी राणी के गर्भ से वि० स० १७६९ माघ वदि १४ (ई० स० १७१३ ता० १४ जनवरी) को कुवर जोरावरसिंह का जन्म हुआ तथा वि० स० १७७३ (ई० स० १७१६) मे उसके दूसरे कुवर अभयसिंह का जन्म हुआ[3]।

विवाह तथा स तति

कुछ दिनो बाद भूकरका के ठाकुर कुशलसिंह तथा आद्रा के ठाकुर लालसिंह में वैमनस्य उत्पन्न हो गया, जिससे गाव रायसिंहपुरे में उन दोनों मे झगडा हुआ। जब सुजानसिंह को इस घटना की खबर हुई तो वह उधर गया, जिससे वहा शाति स्थापित हो गई। रायसिंहपुरे मे ही सुजानसिंह रोगग्रस्त हुआ और वि० सं० १७९२ पौष सुदि १३ (ई० स० १७३५ ता० १६ दिसम्बर) मगलवार को वही उसका देहावसान हो गया। पीछे यह दु खद समाचार पौष सुदि

सुजानसिंह की मृत्यु

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६२ ३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४८ ६। 'वीरविनोद' में भी इस घटना का सक्षिप्त वर्णन है (भाग २, पृ० ५०१), परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं मिलता, जिसका कारण यह है कि इस चढ़ाई का सम्बन्ध केवल बख़्तसिंह से ही था, जोधपुर से नहीं। एक बार विफल प्रयत्न होने पर पुन बीकानेर पर अधिकार करने के लिए षड्यन्त्र करना कोई असम्भव कल्पना नहीं है।

(२) मुहणोत नैणसी की ख्यात (जि० २, पृ० २०१)। सुजानसिंह के मृत्यु स्मारक लेख से पाया जाता है कि देरावरी राणी का नाम सुरताणदे था।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६०।

१५ (ता० १८ दिसम्बर) को बीकानेर पहुचने पर उसकी देरावरी राणी सती हुई[1]।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६३। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४६।

पीछे से बढ़ाये हुए मुहणोत नैणसी की ख्यात के वृत्तान्त में वि० स० १७६३ (ई० स० १७३६) में सुजानसिह की मृत्यु होना लिखा है (जि० २, पृ० २०१), जो ठीक नही हो सकता, क्याकि सुजानसिह की बीकानेर की स्मारक छत्री में वि० स० १७६२ (ई० स० १७३५) मे ही उसकी मृत्यु होना लिखा है —

अथ श्रीमन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १७९२ वर्षे शाके १६५७ प्रवर्तमाने पौषमासे शुभे शुक्लपक्षे त्रयोदश्या तिथौ भौमवासरे • राठोडवंशावतंसश्रीमदनूपसिंहात्मजमहाराजाधिराजमहाराज श्री ५ श्रीसुजाणसिंहजीदेवाः श्रीदेरावरीसुरताणदेजीधर्मपत्न्या सह • ।

सातवां अध्याय

महाराजा जोरावरसिंह से महाराजा प्रतापसिंह तक

महाराजा जोरावरसिंह

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, जोरावरसिंह का जन्म वि० सं० १७६६ माघ वदि १४ (ई० स० १७१३ ता० १४ जनवरी) को हुआ था[1] और वह वि० सं० १७६२ माघ वदि ६ (ई० स० १७३६ ता० २४ फरवरी) को बीकानेर के सिंहासन पर आसीन हुआ[2]।

जन्म तथा गद्दीनशीनी

अभयसिंह ने पिछली चढ़ाई के समय बीकानेर की दक्षिणी सीमा पर अपने कुछ थाने स्थापित कर दिये थे, जिनको जोरावरसिंह ने सिंहासनारूढ़ होने के बाद ही उठा दिया[3]।

बीकानेर के इलाक़े से जोधपुर के थाने उठाना

जोधपुर के महाराजा अभयसिंह तथा उसके छोटे भाई बख्तसिंह में अनबन हो जाने के कारण, अभयसिंह ने फौज के साथ जाकर उस (बख्तसिंह) की सीमा के पास डेरा किया। बख्तसिंह अकेला अपने भाई का सामना करने की सामर्थ्य न रखता था, अतएव उसने जोरावरसिंह

बख्तसिंह तथा जोरावरसिंह में मेल का सूत्रपात

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६३। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४६।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४६।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४६।

से मेल की बातचीत की। जब अभयसिंह को इस रहस्य की खबर मिली तो वह तत्काल जोधपुर लौट गया[1]।

अनन्तर जोरावरसिंह ने अपने राज्य के भीतर होनेवाली अव्यवस्था की ओर ध्यान दिया। चूरू के ठाकुर सग्रामसिंह इन्द्रसिंहोत के बदल जाने की आशङ्का बढ़ रही थी, अतएव उसने उसकी जागीर छीनकर जुझारसिंह(इन्द्रसिंहोत)को दे दी। इसपर सग्रामसिंह जोधपुर चला गया। जोरावरसिंह यह नहीं चाहता था कि उसका कोई भी अधीनस्थ सरदार किसी दूसरे का आश्रित होकर रहे, अतएव उसने चूरू का पट्टा फिर सग्रामसिंह के ही नाम कर दिया। सग्रामसिंह जोधपुर से लौटा तो अवश्य, पर बीकानेर मे महाराजा के समक्ष उपस्थित न होकर सीधा चूरू चला गया, जिससे समस्या पहले जैसी ही हो गई और वह फिर पदच्युत कर दिया गया। सग्रामसिंह तथा भाद्रा के ठाकुर लालसिंह म बडी मित्रता थी। पदच्युत होने पर वह उस (लालसिंह) को भी साथ लेकर जोधपुर चला गया जहा महाराजा अभयसिंह ने उन दोनो का बड़ा सत्कार किया[2]।

चूरू के ठाकुर को निकालना

वि० स० १७९३ (ई० स० १७३६) में जब महाराजा जोरावरसिंह लूणकरणसर गया हुआ था, देरावर का भाटी सूरसिंह एक डोला लेकर उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। विवाहोपरान्त वि० स० १७९३ मार्गशीर्ष सुदि २ (ई० स० १७३६ ता० २३ नवम्बर) को वहा से प्रस्थान कर जोरावरसिंह ने पलू में डेरा किया जहा के राव से उसने पेशकशी वसूल की। बीकानेर लौटने पर उसने अपनी माता को दौलतसिंह पृथ्वीराजोत, मेहता

भाटी सूरसिंह का पुत्री से विवाह तथा पलू के राव को दड देना

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६३। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४६।

इस घटना का जोधपुर राज्य की ख्यात मे उल्लेख नहीं है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४६।

आनदराम आदि के साथ व्रज को यात्रा एव सोरम तीर्थ में स्नान करने को भेजा[1]।

वि० स० १७९६ (ई० स० १७३९) में जोधपुर की चढाई बीकानेर पर हुई। भडारी तथा मेडतिये आदि दस हजार फौज के साथ बीकानेर राज्य मे प्रवेशकर उपद्रव करने लगे। पचोली लाला, अभयकरण दुरगादासोत तथा आसोप का ठाकुर कनीराम रामसिंहोत भी एक बडी सेना के साथ फलोधी के मार्ग से कोलायत पहुचे। तीसरी सेना पुरोहित जगन्नाथ आदि तथा साईदासोत लालसिंह की अध्यक्षता में बीकानेर पहुच गई।

अभयसिंह की बीकानेर पर चढ़ाई

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है बख्तसिंह तथा जोरावरसिंह मे मेल की बातचीत बहुत पहले से जारी थी तथा उस(बख्तसिंह)ने बारहट दलपत को इस विषय में बातचीत करने के लिए जोरावरसिंह के पास भेजा था[2], परन्तु जोरावरसिंह को विश्वास न होता था, जिससे उसने प्रतीति के लिए प्रमाण मागा। बख्तसिंह ने तत्काल मेडते पर अधिकार करके अपनी सत्यता का प्रमाण दिया, जिसके पश्चात् उसके तथा जोरावरसिंह के बीच मेल स्थापित हो गया। तब महाराजा ने कुशलसिंह (भूकरका), दौलतराम (अमरावत बीका, महाजन का प्रधान) आदि को बख्तसिंह के पास भेजा, जिन्होने लौटकर बख्तसिंह और अभयसिंह मे वास्तव मे फूट पड जाने का निश्चित हाल उससे निवेदन किया। अनन्तर मेहता बख़्तावरसिंह के अर्ज करने पर मेहता मनरूप एव सिंढायच

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४६।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात मे लिखा है कि जब जोरावरसिंह गोपालपुर की गढ़ी में था उस समय बख़्तसिंह ने नागोर से चढ़कर उक्त गढ़ी को घेर लिया। पीछे से ख़रबूजी की पट्टी काधलोत लालसिंह को चाकरी मे देकर जोरावरसिंह ने बख़्तसिंह से सन्धि कर ली (जि० २, पृ० १४७)। इस कथन मे सत्य का अश कितना है, यह कहा नहीं जा सकता, परन्तु इतना तो निश्चित है कि जोरावरसिंह तथा बख़्तसिंह में मेल हो गया था, जिसकी वजह से अभयसिंह बीकानेर का बिगाड़ न कर सका।

अजबराम बख़्तसिंह के पास भेजे गये, जिन्होंने उससे जाकर अभयसिंह की चढ़ाई का सारा हाल निवेदन किया। तब बख़्तसिंह ने जोरावरसिंह के पास लिख भेजा कि आप निश्चिन्त रहे। मैं यहां से जोधपुर पर चढ़ाई करता हूं, जिससे अभयसिंह को बाध्य होकर अपनी सेना को पीछा बुला लेना पड़ेगा, परन्तु आप मेरे साथ विश्वासघात न कीजियेगा। जोरावरसिंह की इच्छा स्वयं बख़्तसिंह की सहायतार्थ जाने की थी, परन्तु अपनी आकस्मिक बीमारी के कारण उसे रुक जाना पड़ा और बख़्तावरसिंह आठ हजार सेना के साथ इस कार्य पर भेजा गया। इसके बाद बख़्तसिंह कापरड़े पहुंचा तथा अभयसिंह बीसलपुर, जहां युद्ध की तय्यारी हुई, पर बाद में, संभवतः बीकानेर की सहायता बख़्तसिंह को प्राप्त हो जाने के कारण उसने युद्ध से विमुख हो अपने प्रधानों को उस (बख़्तसिंह) के पास भेज सन्धि कर ली, जिसके अनुसार मेड़ता उसे वापिस मिल गया तथा जालोर की मरम्मत का तीन लाख रुपया उसे बख़्तसिंह को देना पड़ा। तदनन्तर बख़्तसिंह नागोर लौट गया, जहां से उसने बीकानेर के सरदारों को सिरोपाव देकर विदा किया[1]।

जोहियों से भटनेर लेना

कुछ ही दिन बाद महाजन के ठाकुर भीमसिंह ने जोरावरसिंह से भटनेर पर अधिकार करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। बीकों की फ़ौज, रावतोतों की फ़ौज तथा मेहता (राठी) रघुनाथ आदि इसी कार्य की पूर्ति के लिए एकत्र हुए, परन्तु प्रकट यह किया गया कि यह सेना राज्य के

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६३-४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४६।

वीरविनोद (भाग २, पृ० ५०२-३) में भी इसका संक्षिप्त वर्णन दिया है। जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु उससे इतना पता अवश्य लगता है कि बख़्तसिंह तथा अभयसिंह में मनमुटाव हो गया था, जिससे मेड़ते पर अधिकार करके बख़्तसिंह जोधपुर की तरफ़ गया था और उस समय अभयसिंह के डेरे बीसलपुर में हुए थे, जैसा कि ऊपर के वर्णन में भी आया है (जि० २, पृ० १४६)।

सुप्रबन्ध के लिए एकत्रित की गई है। फिर अपने सरदारो से सलाहकर तलवाडे के जोहिया स्वामी मला गोदारा (जिसके अधिकार मे भटनेर था) को धोखे से मरवाने का निश्चय कर १२५ ऊटों पर युद्ध का सामान लादकर भटनेर को भेज दिया। अनन्तर महाजन के ठाकुर ने भी आगे बढ़कर जोहिया मला को तलवाडे से बुलाया और एक दिन गोठ में उसको तथा उसके ७० साथियो को सोमल मिली हुई शराब पिलाकर बेहोश कर दिया और पीछे से मार डाला। यह घटना वि० स० १७९६ फाल्गुन वदि १३ (ई० स० १७४० ता० १४ फरवरी) को हुई। फिर भीमसिंह ने भटनेर के गढ़ पर चढ़ाई कर मला के पुत्रो आदि को भी मौत के घाट उतार दिया और इस प्रकार गढ़ तथा उसमे मिली हुई चार लाख की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। सारी सम्पत्ति स्वय हडप जाने और उसमें से एक अश भी किसी दूसरे को न देने के कारण, बीकानेर की सेना अप्रसन्न होकर लौट गई। इसकी खबर जोरावरसिंह को मिलने पर उसने हसनखा भट्टी को भटनेर पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। हसनखा भट्टी ने दस हजार फौज के साथ गढ़ घेर लिया। इस अवसर पर वहा की सारी प्रजा भी उसके साथ मिल गई, जिससे उसका कार्य सुगम हो गया। भीमसिंह ने अन्यत्र से सहायता मगवाने की चेष्टा की, परन्तु उसका यह प्रयत्न विफल हुआ और अन्त मे उसे भटनेर का गढ़ छोड़कर प्राण बचाने पड़े तथा वहा हसनखा भट्टी का अधिकार हो गया[1]।

बीकानेर पर की पिछली चढ़ाई की असफलता का ध्यान जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के हृदय मे बना ही हुआ था। वि० स० १७९७[2]

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ४९ ५०।

(२) दयालदास की ख्यात में वि० स० १७९६ का प्रारम्भ दिया है (जि० २, पृ० ६४) जो ठीक नही प्रतीत होता, क्योंकि उक्त सवत के फाल्गुन मास तक तो ठाकुर भीमसिंह का राज्य का पक्षपाती रहना उक्त ख्यात से सिद्ध है। जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार यह चढ़ाई श्रावणादि वि० स० १७९६ (चैत्रादि १७९७) के वैशाख मास में हुई (जि० २, पृ० १४९), जो ठीक जान पड़ता है।

अभयसिंह की बीकानेर पर दूसरी चढ़ाई

(ई० स० १७४०) मे उसने बीकानेर के विद्रोही ठाकुरो—ठाकुर लालसिंह (भाद्रा), ठाकुर सग्रामसिंह (चूरू) तथा ठाकुर भीमसिंह (महाजन)—के साथ पुन बीकानेर पर चढ़ाई कर दी। देशणोक पहुचकर उसने करणीजी का दर्शन किया और वहा के चारणों से अपने आपको उसी तरह सबोधन करने को कहा, जिस प्रकार वे अपने स्वामी (बीकानेर के राजा) को करते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा न किया। अनन्तर उसने बीकानेर (नगर) में प्रवेश कर तीन पहर तक लूट मचाई, जिससे लगभग एक लाख रुपये की सम्पत्ति उसके हाथ लगी। नगर की लूट का समाचार सुनकर कुवर गजसिंह एव रावल रायसिंह कितने ही साथियों के साथ विरोधी दल का सामना करने को आये, परन्तु जोरावरसिंह ने उन्हें भी गढ़ के भीतर बुला लिया। महाराजा अभयसिंह का डेरा लक्ष्मीनारायण के मदिर के निकट पुराने गढ के खडहरो की तरफ था, अनूपसागर कुए के पास उसकी सेना के कर्मसोतो, देपालदासोतो एव पृथ्वीराजोतो का एक मोरचा था, दूसरा मोरचा उसी कुए के पूर्वी ढाल पर मनरूप जोगीदासोत व देवकर्ण भाग चन्दोत आदि मडलावतो का था, तीसरा मोरचा दगल्या (दगली साधुओं के अखाडे का स्थान) के स्थान पर कूपावत रघुनाथ रामसिंहोत और जोधा शिवसिंह (जूनिया) का था तथा दूसरी तरफ पीपल के वृक्षों के नीचे तोपे, पैदल, रिसाला, भाटी हठीसिंह उरजनोत, पाता जोगीदास मुकुन्ददासोत, मेडतिया जैमलोत, सावलदास एव पचोली लाला आदि थे। अन्य जोधपुर के सरदार भी उपर्युक्त स्थलो पर नियुक्त थे। सूरसागर पूर्णरूप से आक्रमणकारियो के हाथ मे था एव गिन्नाणी तालाब पर भी भाद्रा का विद्रोही ठाकुर लालसिंह तथा अनेक राठोड़ एव भाटी आदि थे।

उधर गढ़ के भीतर भी सारे बीका, बीदावत व रावतोत सरदार आदि महाराजा जोरावरसिंह की सेवा मे गढ़ की रक्षार्थ उपस्थित थे और सारी सेना का सचालन भूकरका के ठाकुर कुशलसिंह के हाथ में था। तोपों के गोलों की लगातार वर्षा से गढ़ का बहुत नुक़सान हो रहा था।

मुख्यत एक 'शभुबाण' नाम की तोप तो क्षण क्षण पर अपनी विकरालता का परिचय दे रही थी। उसका नष्ट करना बहुत आवश्यक हो गया था, अतएव कुवर गजसिंह की आज्ञानुसार एक पडिहार ने 'रामचगी' तोप के सहारे अन्त में उसका ध्वस कर दिया[1], जिससे जोधपुरवालों का एक प्रबल नष्टकारी शस्त्र बेकार हो गया। अनन्तर खवास अजबसिंह आनद रामोत तथा पडिहार जैतसिंह भोजराजोत, भाद्रा के ठाकुर लालसिंह के पास उसे अपनी ओर मिलाने के लिए भेजे गये। पीछे से महाराजा स्वय गुप्त रूप से उससे मिला, परन्तु कोई परिणाम न निकला।

युद्ध दिन पर दिन उग्र रूप धारण कर रहा था। इसी अवसर पर नागोर से बख़्तसिंह का भेजा हुआ केलण दूदा एक पत्र लेकर आया और उसने निवेदन किया कि मेरे स्वामी ने कहा है कि आप निश्चिन्त होकर गढ़ की रक्षा करें और अपना एक मनुष्य उनके पास भेज दे ताकि सहा यता का समुचित प्रबन्ध किया जाय, परन्तु जोरावरसिंह ने इसपर कुछ ध्यान न दिया। कुछ दिनो पश्चात् दूसरा मनुष्य बख़्तसिंह के पास से आने पर आनदरूप उसके पास भेजा गया, जिसने जाकर निवेदन किया कि गढ़ मे सामग्री तो बहुत है, परन्तु बाहर से सहायता प्राप्त हुए बिना विजय पाना असम्भव है[2]। बख़्तसिंह ने उत्तर मे कहा कि मैं तन धन दोनों

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि 'शभुबाण' तोप वहा नष्ट नहीं हुई, वरन् अभयसिंह के घेरा उठाने के बाद पचोली लाला तथा पुरोहित जग्गा उसको अपने साथ ला रहे थे, उस समय बैलो के थक जाने से उन्होने उसे एक दूसरी तोप के साथ ज़मीन मे गाड़ दिया। पीछे से उसे खुदवाकर मगवाया गया (जि० २, पृ० १५०)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि अभयसिंह के किला घेर लेने से, भीतर रसद की कमी हो गई तो जोरावरसिंह ने उसके पास आदमी भेजकर कह लाया कि यदि आप बारबरदारी दे तो हम किला छोड़ कर चले जाय, पर यह शर्त स्वीकार न हुई। इस बीच बख़्तसिंह रसद आदि सामान नागोर से बीकानेरवालों के पास भेजता रहा। पीछे से जोरावरसिंह ने मेहता बख़्तावरमल को उसके पास सहायता के लिए भेजा (जि० २, पृ० १४६)। दयालदास की ख्यात से इस वर्णन में थोड़ा अन्तर अवश्य है, जो स्वाभाविक ही है, परन्तु इससे ऐतिहासिक सत्य मे कोई भेद नही पड़ता।

से तुम्हारे स्वामी की सहायता करने को प्रस्तुत हू। फिर उसी के परामर्शानुसार आनन्दरूप, धाधल कल्याणदास के साथ जयपुर के स्वामी सवाई जयसिंह के पास सहायता प्राप्त करने के लिए गया, पर जयसिंह को बख़्तसिंह की तरफ़ से कुछ सन्देह था, जिससे उसने कहलाया कि पहले आप मेडता ले ले, मैं भी निश्चय आऊगा। यह सदेश प्राप्त होते ही मेड़ता पर अधिकार करके बख़्तसिंह ने अपनी सचाई का प्रमाण दिया[1]। कुछ दिनो बाद आनन्दरूप ने जयसिंह से निवेदन किया कि आपने सहायता देना तो स्वीकार कर लिया है अब आप इस आशय का एक पत्र बीकानेर लिख दें। जयसिंह ने उसी समय महाराजा जोरावरसिंह के नाम खरीता लिखकर उसे दे दिया और हॅसी मे उससे पूछा कि तुम्हारी करणीजी और लक्ष्मीनारायणजी इस अवसर पर कहा चले गये? चतुर आनदरूप ने तुरत उत्तर दिया कि उनका प्रवेश इस समय आप मे ही हो गया है, क्योंकि आप हमारी सहायता के लिए कटिबद्ध हो गये हैं। जयसिंह आनन्दरूप की इस अनूठी उक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इसी अवसर पर उस (जयसिंह) के पास सूचना पहुची कि बादशाह मुहम्मदशाह[2] के पास से इस आशय का एक पत्र बीकानेर आया है कि यदि गढ़ पर अभयसिंह का अधिकार हो भी गया तब भी वह बाहर निकाल दिया जायगा, जिससे बीकानेरवालो मे नई स्फूर्ति एव साहस का सचार हो गया है।

अनन्तर महाराजा जयसिंह ने २०००० सेना के साथ राजामल खत्री को जोधपुर पर भेजा। बख़्तसिंह उस समय मेडते के पास गाव जालोडे मे था तथा मेड़ते मे अभयसिंह की तरफ के पचोली मेहकरण आदि १०००० फौज के साथ थे। राजामल के आने का समाचार सुनते ही, उन्होने बख़्तसिंह पर

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात से भी पाया जाता है कि बख़्तसिंह ने मेड़ते पर अधिकार कर लिया था और जयसिंह उससे उसी स्थान पर आकर मिला था (जि० २, पृ० १४०)।

(२) दयालदास ने इसके स्थान पर अहमदशाह लिखा है जो ठीक नहीं है, क्योंकि उस समय दिल्ली के तख़्त पर मुहम्मदशाह था।

आक्रमण कर दिया, परन्तु उनको विजय प्राप्त न हुई। पीछे से राजामल भी बख्तसिंह से आकर मिल गया। जयसिंह ने इसमें स्वयं अब तक कोई विशेष भाग नहीं लिया था। जब बार बार उससे आग्रह किया गया तो उसने अपने सरदारों से इस विषय में राय ली। अधिकांश लोगों की तो राय यह थी कि अभयसिंह उसका सम्बन्धी (जामाता) है, दूसरे इस युद्ध में अपरिमित धन व्यय होगा, अतएव चढ़ाई करना युक्तिसंगत न होगा, परन्तु शिवसिंह (सीकर) ने कहा कि जोधपुर का बीकानेर पर अधिकार हो जाना पड़ोसी राज्यों के लिए हानिकारक ही सिद्ध होगा, इसलिए प्रारम्भ में ही इसका कोई उपाय करना चाहिये। जयसिंह के हृदय में उसकी बात बैठ गई और उसने तीन लाख सेना के साथ जोधपुर पर चढ़ाई कर दी[1]। जब अभयसिंह को यह समाचार ज्ञात हुआ, तो उसने उदयपुर आदमी भेजकर वहां के प्रतिष्ठित मनुष्यों को बीकानेर के साथ संधि करा देने को बुलवाया। अभयसिंह यह चाहता था कि यदि बीकानेरवाले झुक जायं तो वह वापस चला जाय, परन्तु जब बीकानेर वालों ने यह अपमान-जनक शर्त स्वीकार न की और स्पष्ट कह दिया कि हमारी ओर से उत्तर जयसिंह देगा तो अभयसिंह को इतने दिनों के परिश्रम के बदले में फिर निराश होकर लौट जाना पड़ा। इस अवसर पर भागते हुए जोधपुर के सैन्य को बीकानेर की फौज ने बुरी तरह लूटा। अभयसिंह भागा भागा एक हजार सवारों के साथ जोधपुर पहुंचा, क्योंकि उसे जयसिंह की ओर से पूरा पूरा भय था, परन्तु जयसिंह अभी तक मार्ग में ही था। उसका वास्तविक उद्देश्य जोधपुर पर अधिकार करने का न था। वह तो केवल अभयसिंह को बीकानेर से हटाकर एवं उससे कुछ रुपये वसूल कर स्वदेश लौट जाना चाहता था। अभयसिंह के आते ही २१ लाख

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी लिखा है कि जयसिंह ने यह सोचकर कि बीकानेर पर अधिकार कर लेने से अभयसिंह की शक्ति बढ़ जायगी, तत्काल उसे लिखा कि बीकानेर पर से घेरा उठा लो, परन्तु जब उसने ऐसा न किया, तो उस-(जयसिंह) ने जोधपुर पर चढ़ाई कर दी (जि० २, पृ० १४६ ४०)।

रुपये पेशकशी के वसूलकर वह वहा से लौट गया[1]। इस धन में से ११ लाख के तो वे ही आभूषण थे, जो उसने विवाह के अवसर पर अपनी पुत्री को दिये थे, परन्तु उसने यह कहकर उन्हें भी स्वीकार कर लिया कि अब ये जोधपुर की निजी सम्पत्ति हैं अतएव इन्हे लेने मे कोई दोष नही है[2]।

वहा से प्रस्थान कर जयसिंह ने गाव वणार में डेरा किया जहा बीकानेर से जोरावरसिंह भी आकर उपस्थित हुआ और समय पर सहायता प्रदान करने के लिए उसे धन्यवाद दिया। पर जयसिंह ने यही कहा कि मैंने जो कुछ भी किया है उसका मूल्य 'कुछ नहीं' के बराबर है, क्योंकि आपके पूर्वज जैतसी ने हमारे पूर्वज सागाजी की बड़ी सहायता की थी[3]।

जोरावरसिंह का जयसिंह से मिलना

अनन्तर दोनो के डेरे बीचम मे हुए। वहा से वे बाधनवाडे पहुचे, जहा उनकी उदयपुर के महाराणा जगत्सिंह (दूसरा) और कोटे के महाराव दुर्जनसाल से मुलाकात हुई। फिर बीमार पड़ जाने से जोरावरसिंह कुछ दिनो के लिए जयपुर चला गया। इसी बीच बीकानेर राज्य मे साईदासोतों के बखेड़ा करने पर उसने खाटू में जयसिंह के पास जाकर उनका दमन करने के लिए फौज

साईदासोतों का दमन करना

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में बीस लाख रुपया लिखा है (जि० २, पृ० १४२)।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६४ ७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५०-५१।

वीरविनोद (भाग २, पृ० ५०२ ३) में भी इस घटना का लगभग ऐसा ही संक्षिप्त वर्णन है। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी कहीं कहीं थोड़े अन्तर के साथ यह घटना दी है। इससे यह निश्चित है कि अभयसिंह की चढ़ाई जिस समय बीकानेर पर हुई थी, उस समय जयसिंह ने जोधपुर पर चढ़ाई की और बख़्तसिंह भी उसका सहायक हो गया, जिससे अभयसिंह को फ़ौरन जोधपुर लौटना पड़ा।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५२।

भेजने को कहा, जिसपर दस हजार फौज के साथ जयपुर के शेखावत शार्दूलसिंह (जगरामोत) आदि मेहता बख़्तावरसिंह के साथ उधर भेजे गये। उस समय लालसिंह बाय के किले में तथा सग्रामसिंह चूरू मे था। रिणी से चलकर जब कछवाहो की सेना बाय मे पहुची तो लालसिंह रात्रि के समय वहा से भागकर भाद्रा चला गया। अभयसिंह की दी हुई दस तोपे उसके पास थीं, जिनपर विजेताओं का अधिकार हो गया। जब भाद्रा में भी लालसिंह का पीछा किया गया तो उसने शेखावत शार्दूलसिंह की मारफत बातचीत की और पेशकशी का एक लाख रुपया देना ठहराकर मेल कर लिया। तब शार्दूलसिंह लालसिंह को लेकर जयपुर गया, जहां वि० स० १७६७ कार्तिक वदि ११ (ई० स० १७४० ता० ५ अक्टोबर) को वह (लालसिंह) नाहरगढ़ में क़ैद कर दिया गया। जोरावरसिंह जब बीकानेर लौट रहा था तो मार्ग में सग्रामसिंह भी उसकी सेवा मे उपस्थित हुआ और दड के पचीस हजार रुपये देने का वचन दे विदा हुआ। इस प्रकार उस प्रदेश के विद्रोहियो का दमन होकर सुव्यवस्था का आविर्भाव हुआ[1]।

सग्रामसिंह इतना हो जाने पर भी ठीक रास्ते पर न आया था। उसके रहते शाति भग होने की आशका सदा विद्यमान रहती थी। अतएव बख़्तावरसिंह जाकर उसको उसके भाई भोपतसिंह सहित सालू मे ले आया, जहा वि० स० १७६८ आषाढ वदि ४ (ई० स० १७४१ ता० २३ मई) को वे दोनों छल से मार डाले गये। अनन्तर जोरावरसिंह ने जाकर चूरू तथा वहा की सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया एव उन समस्त वणीरोतों को बाहर निकाल दिया जो राजकीय सेवा में नहीं थे। लगभग छ महीने तक उस इलाके को अपने हाथ में रखने के बाद पुन सग्रामसिंह के पुत्र

जोरावरसिंह का चूरू पर अधिकार करना

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६७। पाउलेट कृत 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' में केवल इतना लिखा है कि बीकानेर में उपद्रवी ठाकुरो का दमन करने में जयसिंह ने जोरावरसिंह की सहायता की (पृ० ५२)।

बीरतसिंह को ही उसने वहां का स्वामी बना दिया[1]।

जयसिंह पर बख्तसिंह की चढ़ाई

महाराजा जयसिंह की जोधपुर पर की विगत चढ़ाई में बख़्तसिंह को आशा हो गई थी कि इससे उसका जोधपुर की गद्दी पर अधिकार करने का अपना स्वार्थ भी सिद्ध होगा, परन्तु जब जयसिंह के केवल कुछ धन प्राप्तकर लौट जाने से उसकी यह आशा धूल में मिल गई, तो वह जयसिंह का विरोधी हो गया और उसने अपने भाई अभयसिंह से मेल कर लिया। अनन्तर उसने ससैन्य ढूंढाड़ पर चढ़ाई की। यह ख़बर जयसिंह को मिलने पर वह भी फौज के साथ उसका सामना करने को गया और कुछ देर की लड़ाई के बाद उसने उस(बख्तसिंह)को भगा दिया। अभयसिंह उस समय आलणियावास में था, जहां बख्तसिंह चला गया। जयसिंह ने अजमेर पहुंचकर अभयसिंह को युद्ध की चुनौती दी तथा मेहता आनदरूप से कहा कि तुम अपने स्वामी (जोरावरसिंह) को लिखो कि नागोर पर चढ़ाई करे और शीघ्रतापूर्वक मुझ से आकर मिले। जोरावरसिंह तबतक चूरू में ही था, यह समाचार वहां पहुंचने पर उसने आगे बढ़कर नागोर का बड़ा बिगाड़ किया, परन्तु जब कुछ दिन बीत जाने पर भी वह जयसिंह के शामिल नहीं हुआ, तो उस(जयसिंह)ने आनदरूप से इसके बारे में कहा। तब आनदरूप स्वयं जोरावरसिंह के पास गया, पर जब उसके प्रस्थान करने का विचार न देखा, तो वह लौटकर जयसिंह की सेना में गया, परन्तु मार्ग में ही तबियत ख़राब हो जाने से पुष्कर के पास गांव बसी में उसका देहांत हो गया[2]।

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५३।

वीरविनोद (भाग २, पृ० ५०३) में भी संग्रामसिंह और भूपाल(भोपत)सिंह के मरवाये जाने का हाल है, पर उसमें यह घटना ता० ३ जून को होना लिखा है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६७-८। पाउलेट गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५३।

बीकानेर का समुचित प्रबन्ध करके जोरावरसिंह जयपुर गया और ६ मास तक जयसिंह का मेहमान रहने के अनतर वहा से लौटा[1]।

जोरावरसिंह का जयपुर जाना

भट्टियों और जोहियो का उत्पात फिर बढ़ रहा था, अतएव यह निश्चय हुआ कि तुर्कों के इन दोनो दलो को निकालकर हिसार पर अधिकार कर लेना चाहिये। इस विचार को कार्यरूप मे परिणत करने के पूर्व कुवर गजसिंह, शेखावत नाहरसिंह तथा मेहता बख्तावरसिंह को नोहर में छोडकर जोरावरसिंह सकुटुम्ब करणीजी का दर्शन करने गया। ठाकुर कुशलसिंह सात हजार फौज के साथ कर्णपुरा के जोहियो पर गया हुआ था, उसे जोरावरसिंह ने वापस बुला लिया[2]।

जोरावरसिंह का हिसार पर अधिकार करने का विचार करना

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि अभयसिह से मेलकर ५००० सेना के साथ बख़्तसिह जयसिह पर गया। उधर ५०००० सेना के साथ जयसिह भी गगवाणे आया, जहा दोनो मे युद्ध हुआ। इतनी थोड़ी सेना रहने पर भी बख्तसिह अभूतपूर्व वीरता के साथ लड़ा और दो तीन बार कछवाहो की सेना के एक छोर से दूसरे छोर तक निकल गया (जि० २, पृ० १५२ ३)। अन्यत्र इस सम्बन्ध मे यह लिखा मिलता है कि बख़्तसिह क पास ५ ६ हज़ार सेना थी और जयसिह के पास ३००००, जब बख़्तसिंह के पाच हज़ार आदमी कट गये तो उसने अपने बचे हुए साथियो के साथ इतने प्रबल वेग से शत्रु पक्ष पर आक्रमण किया कि जयसिंह को जयपुर की तरफ़ भागना पड़ा, परन्तु यह केवल कल्पना मूलक बात ही प्रतीत होती है। अपने से छ गुना या उससे भी अधिक सैन्य का सामना करना तो माना जा सकता है, पर उसे परास्त कर सकना कल्पना से दूर की बात है। वीरविनोद (भाग २, पृ० ५०२ ३) में भी दयालदास की ख्यात जैसा ही वर्णन है, अतएव उसपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। आगे चलकर जोधपुर राज्य की ख्यात मे भी लिखा है कि भडारी रघुनाथ के उद्योग से जोधपुर और जयपुर मे सन्धि हुई (जि० २, पृ० १५४)।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५३।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५३ ४।

अनन्तर जब राजमाता सीसोदिणी ने बीकानेर मे चतुर्भुज का का मंदिर बनवाया तो जोरावरसिंह ने उसकी प्रतिष्ठा की । वि० स० १८०१ (ई० स० १७४४) में महाराजा जोरावरसिंह ने कोलायत जाकर कार्तिक सुदि १५ (ता० ६ नवबर) को चादी की तुला की। फिर वहा से उसने मेहता रघुनाथ को फौज देकर सिरड भेजा, जहा थोडी सी लड़ाई के बाद उसका अधिकार हो गया[1] ।

जोरावरसिंह का चादी की तुला करना तथा सिरड पर अधिकार करना

कुछ समय पश्चात् रेवाड़ी के राव गूजरमल ने कहलाया कि हम और आप हिसार ले ले अतएव आप सेना भेज । इसपर जोरावरसिंह ने वहा सेना भेजी। दौलतसिंह पृथ्वीराजोत (वाय) और मेहता बख़्तावरसिंह फौज के साथ रिणी भेजे गये और जुझारसिंह आदि बणीरोतो की फौज लेकर मेहता साहबसिंह चगोई गया, जिसने तारासिंह (आनदसिंहोत) से, जो बिना आज्ञा के चगोई पर अधिकार कर बैठा था, उस स्थान को फिर छीन लिया। इस बात से नाराज होकर आनदसिंह के चारों पुत्र मलसीसर गये, जहा से गजसिंह जयपुर मे ईश्वरीसिंह के पास होता हुआ नागोर मे बख़्तसिंह के पास गया। अनन्तर उपर्युक्त दोनो फौजें मिलकर राव गूजरमल के पास हासी हिसार में गई, जहा उसका अमल हुआ। जोरावरसिंह स्वय भी वहा गया और वहा से ही कुछ फौज फतेहाबाद के भट्टियो पर भेजी गई, जिनका दमन किया जाकर वहा जोरावरसिंह का अधिकार हो गया[2] ।

गूजरमल की सहायता तथा चगोई, हिसार, फतेहाबाद पर अधिकार करना

वहा से लौटते समय मार्ग मे जोरावरसिंह हसनखा भट्टी (भटनेर का) के पुत्र मुहम्मद से मिला और उससे पेशकशी ठहराई[3] । जिन दिनों

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६८ ।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६८ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५४ ।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६९ ।

मृत्यु

वह अनूपपुर मे ठहरा हुआ था, उसका शरीर अस्वस्थ हो गया और चार दिन की बीमारी के बाद वहीं उसका वि० स० १८०३ ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० स० १७४६ ता० १५ मई) को नि सन्तान देहात हो गया[1]। यह भी कहा जाता है कि उसकी मृत्यु विष प्रयोग से हुई। उसके साथ उसकी देरावरी और तवर राणिया सती हुई[2]।

महाराजा जोरावरसिंह का व्यक्तित्व

जोरावरसिंह वीर, राजनीतिज्ञ और काव्यमर्मज्ञ था। वह युद्ध से बढ़कर मेल का महत्व समझता था। इसी से अवसर प्राप्त होने पर उसने जोधपुर और जयपुर से मेल करने मे मुह न मोडा। इसका परिणाम भी अच्छा ही हुआ। कुछ सरदार उसके विरोधी अवश्य थे, परन्तु शेष के साथ उसका सम्बन्ध बडा अच्छा था। वह समझता था कि सरदारो

---

(१) अथास्मिन् शुभसम्वत्सरे श्रीमन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १८०३ वर्षे शाके १६६८ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमेमासे ज्येष्ठमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ षष्ठया गुरुवासरे महाराजाधिराज-महाराजश्रीजोरावरसिहजीवर्मा देरावरीजीश्रीअखैकुवर तवरजी श्रीउमेद-कुवरजी एव द्वाभ्या धर्मपत्नीभ्या सह श्रीनारायणपरमभक्ति-ससक्तचित्त परमधाममुक्तिपद प्राप्त

(जोरावरसिह की बीकानेर की स्मारक छत्री से)।

स्मारक छत्री के उपर्युक्त लेख के तिथि, वार आदि का मिलान करने से वे वि० स० १८०३ मे ही पडते हैं, अतएव जोरावरसिंह की मृत्यु का यह सवत् ठीक होना चाहिये। इसके विपरीत ख्यातों में सवत् १८०२ ज्येष्ठ सुदि ६ दिया है जो आषाढादि अथवा श्रावणादि सवत् होने से तो स्मारक छत्री के लेख से मेल खा जाता है, परन्तु आगे चलकर ख्यात में गजसिह की मृत्यु का समय वि० स० १८४४ चैत्र सुदि ६ (ई० स० १७८७ ता० २५ माच) दिया है और यही उसकी स्मारक छत्री मे भी है, जिससे यह निश्चित है कि ख्यात में दिये हुए सवत् भी चैत्रादि ही है। इस दृष्टि से ख्यात का दिया हुआ वि० स० १८०२ (ई० स० १७४५) ठीक नहीं माना जा सकता।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६६ तथा जोरावरसिह की स्मारक छत्री का लेख।

पर ही राज्य का अस्तित्व निर्भर है और इसी कारण उन्हें विरोधी होने का मौक़ा कम देता था।

मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार जोरावरसिंह संस्कृत और भाषा का अच्छा कवि था। उसके बनाये दो संस्कृत ग्रन्थ—'वैद्यकसार' और 'पूजा-पद्धति'—बीकानेर के पुस्तकालय में हैं। भाषा में उसने 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' की टीकायें बनाई थी[1]। महाराजा अभयसिंह के द्वारा बीकानेर के घेरे जाने पर एक सफेद चील को देखकर उसने यह दोहा कहा था—

डाढ़ाली डोकर थई, का तूं गई विदेस।
खून बिना क्यों खोसजे, निज बीका रां देस[2]॥

महाराजा गजसिंह

गजसिंह को गद्दी मिलना

दयालदास लिखता है—'जोरावरसिंह के निःसन्तान मरने के कारण गढ़ तथा नगर का सारा प्रबन्ध अविलम्ब ठाकुर कुशलसिंह (भूकरका) और मेहता बख्तावरसिंह ने अपने हाथ में ले लिया। उसके किसी सुयोग्य सम्बन्धी को सिंहासनारूढ़ करने का विचार हो ही रहा था कि इतने मे अमरसिंह, तारासिंह तथा गूदड़सिंह[3] नागोर से सेना लेकर लाडणू में बीकानेर का बिगाड करने के लिए आ पहुंचे। ठाकुर कुशलसिंह ने बीका बलरामसिंह को भेजकर उन्हें बुलवाया, जिसपर वे गाव गाढ़वाला में एक शमी-वृक्ष के नीचे आ ठहरे। यह समाचार अमरसिंह के छोटे भाई गजसिंह को विदित होने पर उसने भी तुरन्त बीकानेर आकर भोमियादेव के शमी वृक्ष के नीचे डेरा किया। शकुन विचारनेवालो से जब राज्य के भावी स्वामी के सम्बन्ध मे प्रश्न किया गया तो उन्होंने बतलाया कि भोमियादेव के वृक्ष के नीचे आकर ठहरनेवाला व्यक्ति ही राज्य का अधिकारी होगा। गजसिंह ही सभों मे अधिक बुद्धिमान

(१) राजरसनामृत, पृ० ४९-५०।
(२) नरोत्तमदास स्वामी, राजस्थान रा दूहा, भाग १, पृ० ६६ तथा २३७।
(३) जोरावरसिंह के चाचा आनन्दसिंह के पुत्र।

महाराजा गजसिंह

था, अतएव ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह के होते हुए भी, ठाकुर कुशलसिंह तथा मेहता बख्तावरसिंह एव अन्य सरदारो आदि ने सलाह कर उस(गजसिंह)को ही गद्दी पर बैठाने का निश्चय किया और उसे बुलाकर उस समय तक के राज्यकोष का हिसाब न मागने का वचन लेकर वि० स० १८०२ आषाढ वदि १४ (ई० स० १७४५ ता० १७ जून) को उसे बीकानेर के राज्यसिंहासन पर बिठलाया। अमरसिंह ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण निश्चिन्त था, परन्तु गजसिंह की गद्दीनशीनी का हाल मालूम होते ही वह वहा से चला गया[1]।'

दयालदास का दिया हुआ गद्दीनशीनी का उपर्युक्त सवत् ठीक नही है, क्योकि महाराजा ज़ोरावरसिंह के स्मारक लेख से वि० स० १८०३ ज्येष्ठ सुदि ६ को उसकी मृत्यु होना निश्चित है[2]। सभव है उसमे दी हुई गजसिंह की गद्दीनशीनी की तिथि ठीक हो[3]।

अभयसिंह उन दिनों अजमेर में था, जहा महाजन का ठाकुर भीमसिंह तथा अन्य बीकानेर के विरोधी उसके पास थे। लालसिंह(भाद्रा)को

जोधपुर की सहायता से अमरसिंह की बीकानेर पर चढाई

भी सवाई जयसिंह के मरने पर अभयसिंह ने छुडवाकर अपने पास रख लिया था। अमरसिंह भी भागकर उस(अभयसिंह)के पास चला गया तथा अभयसिंह के साथ रहे हुए बीकानेर के विरोधी सरदारों ने उसे ही बीकानेर की गद्दी दिलाने का निश्चय किया। अनन्तर अभयसिंह ने अपने बहुत से सरदारों एव भीमसिंह, लालसिंह अमरसिंह आदि के साथ एक विशाल सेना बीकानेर पर भेजी, जो मार्ग में लूटमार करती हुई सरूपदेसर के पास ठहरी। बीकानेरवाले जोधपुर के विगत हमलों से सतर्क रहने लगे थे। इस अवसर पर बीकों,

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५४-५।

(२) देखो ऊपर पृ० ३२१, टि० १।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात के पीछे से बढ़ाये हुए अश मे गजसिंह की गद्दीनशीनी का समय वि० स० १८०३ आश्विन वदि १३ (ई० स० १७४६ ता० २ सितम्बर) दिया है (जि० २, पृ० २०१), जो ठीक प्रतीत नही होता।

बीदावतों, रावतोतों, वणीरोतों, भाटियों, रूपावतों, कर्मसोतों आदि की सेनाए एकत्र होकर शत्रुपक्ष का सामना करने के लिए रामसर कुए पर जाकर डटीं, परन्तु कई मास तक एक दूसरे के सम्मुख पडे रहने पर भी केवल मुठभेड़ होने के अतिरिक्त कोई बडा युद्ध न हुआ। तब जोधपुर के सरदारों ने कहलाया कि यदि भूमि के दो भाग कर दिये जावें तो हम वापस लौट जावें, परन्तु गजसिंह ने यही उत्तर दिया कि हम इस तरह सुई की नोक के बराबर भूमि भी न देंगे और कल प्रात तलवार से हमारी शान्ति की शर्तें तय होंगी। दूसरे दिन अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त कर गजसिंह शत्रुओं के सामने जा पहुचा। बीदावतों, रावतोतों और बीका राठोडों की बीच की अनी में महाराजा स्वय हाथी पर विद्यमान था। दाहिनी अनी में भाटी, रूपावत और मडलावत थे तथा बाई अनी मे तारासिंह, चूरू का ठाकुर धीरजसिंह और मेहता बख्तावरसिंह आदि थे। हरावल में कुशल सिंह (भूकरका), मेहता रघुनाथसिंह तथा दौलतसिंह (वाय) थे और चदावल में प्रेमसिंह बाघसिंहोत बीका, महाराजा के अंगरक्षकों सहित था। सुजानदेसर कुए के पास शत्रुपक्ष में से कुछ ने एक बुर्ज बना ली थी, परन्तु बीकानेर की दाहिनी अनी ने हल्ला कर उन्हें वहा से भगा दिया और वहा अधिकार कर लिया। इसपर जोधपुर की सेना मे से भडारी रतनचन्द अपनी सारी फौज के साथ चढ़ गया। गजसिंह उस समय घोड़े पर सवार होकर लड रहा था, उस घोडे के एक गोली लग जाने से वह मर गया, तब वह दूसरे घोडे पर बैठकर लडने लगा। अमरसिंह उस समय तक यही समझ रहा था कि गजसिंह हाथी पर चढ़कर लड़ रहा है, अतएव उसने उधर ही आक्रमण किया। तारासिंह ने उधर घूमकर अमरसिंह पर वार किया। इसी बीच गजसिंह का दूसरा घोड़ा भी मर गया, जिससे वह फिर हाथी पर ही आरूढ़ हो गया। इतनी देर की लडाई मे भडारी (रतनचन्द), भीम सिंह तथा अमरसिंह इतने घायल हो गये कि उनके लिए अधिक लड़ना असम्भव हो गया। फिर महाराजा गजसिंह के हाथ से भडारी रतनचन्द की आख में तीर लगते ही शत्रु, बची हुई सेना के साथ रणक्षेत्र छोड़कर भाग

गये[1], परन्तु बीकानेर के जैतपुर के ठाकुर स्वरूपसिंह ने आगे बढ़कर बरछी के एक वार से भडारी का काम तमाम कर दिया। इस युद्ध मे जोधपुर की बडी हानि हुई। बीकानेर के भी कितने ही सरदार काम आये। जब इस पराजय का समाचार अभयसिंह के पास पहुचा तो उसे बडा खेद हुआ और उसने एक दूसरी सेना भडारी मनरूप की अध्यक्षता मे भेजी, जो डीडवाणे तक आई, परन्तु इसी समय बीकानेर से सेना आ जाने के कारण वह वहा से लौट गई। यह घटना वि० स० १८०४ (ई० स० १७४७) मे हुई[2]।

---

(१) यह घटना वि० स० १८०४ के श्रावण मास मे हुइ, जसा कि बीकानेर के भाडासर नामक जैनमन्दिर के पास से मिले हुए नीचे लिखे स्मारक लेख से पाया जाता है—

स्वस्ति श्रीमत्शुभसवत्सरे सवत् १८
०४ वर्षे शाके १६६६ प्रवर्त्तमाने
महामागल्यप्रदमासोत्तममासे
श्रावणमासे कृष्णपक्षे तिथौ
तृतीयाया ३ सामवासरे श्री-
बीकानेयर मध्ये महाराजा-
धिराजमहाराजाश्रीगज-
[सि]घजीविजयराज्ये काश्यप-
गोत्रे राठोडकाधलवशे वणीरो-
त राजश्रीअजबसघजीतत्पु-
त्रमोहकमसघजीतस्यात्मज
[स]बाईसघजी जोधपुर री फो-
ज भागी ताहीरा काम आया

(मूल लेख से)।

(२) दयालदास की ख्यात जि० २, पत्र ६६ ७१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५५ ६।

उन्हीं दिनों कतिपय बीदावतों का उत्पात बहुत ज्यादा बढ़ गया था इसलिए महाराजा गजसिंह ने छापर में निवास करते समय मुहब्बतसिंह बिहारीदासोत बीदावत (भागचन्दोत), देवीसिंह हिन्दूसिंहोत बीदावत तथा संग्रामसिंह दुर्जनसिंहोत बीदावत को अपने पास बुलवाकर मरवा डाला, जिससे देश में शान्ति हुई[1]।

उपद्रवी बीदावतों को मरवाना

इसी बीच अभयसिंह और बख़्तसिंह में वैमनस्य बढ़ गया, जिससे बख़्तसिंह ने पड़िहार शिवदान आदि को बीकानेर भेजकर बख्तावरसिंह की मारफ़त गजसिंह से मेल कर लिया। अनन्तर जोधपुर पर चढ़ाई करने का निश्चयकर वह दिल्ली में बादशाह मुहम्मदशाह[2] की सेवा में गया और

गजसिंह का बख़्तसिंह की सहायता को जाना

जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १४८-९) से भी पाया जाता है कि जोरावरसिंह के निस्संतान मरने पर उसके भाई आनन्दसिंह के छोटे पुत्र गजसिंह को बीकानेर की गद्दी मिली। इसपर जोधपुर की सेना ने बीकानेर पर चढ़ाई की, जिसमें गजसिंह का बड़ा भाई अमरसिंह भी साथ था। इस लड़ाई का परिणाम तो उक्त ख्यात में नहीं दिया है, परन्तु आगे चलकर भंडारी मनरूप को चांपावत देवीसिंह (पोहकरण), ऊदावत कल्याणसिंह (नींबाज), मेड़तिया शेरसिंह (रीयां) आदि सहित फिर बीकानेर पर भेजना लिखा है, जिससे यह निश्चित है कि पहले भेजी हुई सेना की पराजय हुई होगी। जोधपुर राज्य की ख्यात में भंडारी मनरूप की सेना में भी अमरसिंह का होना लिखा है। उसी ख्यात से पाया जाता है कि उन्हीं दिनों मल्हारराव होल्कर ने जयपुर पर चढ़ाई कर अभयसिंह से सैनिक सहायता मंगवाई, जिसपर मनरूप उधर भेज दिया गया।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५६।

(२) दयालदास की ख्यात में अहमदशाह नाम दिया है, जो ठीक नहीं है। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी बख़्तसिंह का मुहम्मदशाह के समय दिल्ली जाना तथा वहां से अहमदशाह के समय में लौटना लिखा है (जि० २, पृ० १६०)। वीरविनोद, (भाग २, पृ० ५०४) में भी अहमदशाह ही दिया है। ख्यातों में 'म' के स्थान पर 'अ' हो जाना असम्भव नहीं है।

पठानों के साथ के युद्ध मे भाग लेने के पश्चात् वहा से एक बडी सेना सहायतार्थ प्राप्तकर साभर में आकर ठहरा, जहा उसने गजसिंह को भी बुलाया। अभयसिंह को इसकी खबर मिलने पर उसने मल्हारराव होल्कर को अपनी सहायता के लिए बुलाया। गजसिंह के आ जाने से बख्तसिंह की सैनिक शक्ति बहुत बढ गई। इस सम्बन्ध मे उसने गजसिंह से कहा भी था कि आपके मिल जाने से हम एक और एक दो नहीं वरन् ग्यारह हो गये हैं।

अभयसिंह ने मरहटों की सहायता के बल पर भाई पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया, परन्तु इसी समय जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह के भेजे हुए एक मनुष्य के आ जाने से बख्तसिंह और मल्हारराव होल्कर की बातचीत हो गई और उस (मल्हारराव) ने दोनो भाइयो में मेल करा दिया, पर इससे आन्तरिक मनोमालिन्य दूर न हुआ[1]।

तदनन्तर गजसिंह स्वदेश को लौटता हुआ डीडवाणे पहुचा जहा मेहता भीमसिंह द्वारा उसे अपने पिता (आनन्दसिंह) के रिणी मे रोगशय्या पर पडे रहने का समाचार मिला, परन्तु बीकानेर पहुचने पर भी वह उधर नही गया, क्योंकि बीकमपुर के भाटियो का उपद्रव उन दिनो बहुत बढ़

बीकमपुर पर गजसिंह का अधिकार होना

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७१ २। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०४। पाउलेट, गैज़टियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५६ ७।

जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १६०) मे भी लिखा है कि भाई की इच्छा के विरुद्ध बख़्तसिंह दिल्ली जाकर बादशाह की तरफ़ से पठानों से लड़ा तथा अहमदशाह के सिंहासनारूढ़ होने पर फ़ौज ख़र्च तथा साभर, डीडवाणा, नारनोल और गुजरात का सूबा प्राप्तकर देश को लौटा। इसपर अभयसिंह मल्हारराव को सहायतार्थ बुलवाकर साभर में जहा बख़्तसिंह के होने का समाचार मिला था, गया। अभयसिंह का इरादा जालोर छुड़ा लेने का था, परन्तु बाद में दोनों भाइयों के मिल जाने पर अभयसिंह अजमेर चला गया और बख़्तसिंह नागोर, परन्तु उसने जालोर नहीं छोड़ा। उक्त ख्यात में बख़्तसिंह के सहायकों में गजसिंह का होना नही लिखा है, परन्तु अधिक सभव तो यही है कि वह उस (बख़्तसिंह) की सहायतार्थ गया हो, क्योंकि इससे पहले भी कई वार बीकानेर से उसे सहायता मिल चुकी थी।

रहा था, जिसे रोकना बहुत आवश्यक था। कोलायत पहुंचकर उसने मेहता भीमसिंह को फौज देकर इस कार्य पर भेजा, जिसने माडाल मे डेरा किया। अनन्तर भाटी कुंभकर्ण की मारफत दस हजार रुपये पेशकशी के ठहराकर बीकमपुर के प्रधान ने गजसिंह से संधि कर ली, जिसपर गजसिंह बीकानेर लौट गया। इसी बीच वि० सं० १८०५ फाल्गुन सुदि १३ (ई० स० १७४६ ता० १६ फरवरी) को[1] आनन्दसिंह के स्वर्गवास होने का समाचार उसके पास पहुंचा, जिसे सुनकर उसे बहुत दुःख हुआ। द्वादशाह करने के उपरान्त वह रुणिया गया। बीकमपुर के पेशकशी के रुपये न दिये जाने के कारण कुंभकर्ण ने महाराजा से बीकमपुर पर अधिकार करने की आज्ञा प्राप्त की। कुछ ही समय के बाद वहां के राव स्वरूपसिंह को मारकर उसने वहां अधिकार कर लिया और इसकी सूचना गजसिंह को दी। तब गजसिंह ने एक सोने की मूठ की तलवार तथा सिरोपाव देकर मेहता भीमसिंह और पड़िहार धीरजसिंह को वहां भेजा[2]।

गजसिंह जब गारबदेसर में था, उस समय वाय के दौलतसिंह आदि के प्रयत्न से महाजन का विद्रोही ठाकुर भीमसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हो गया। गजसिंह ने उसका अपराध क्षमा कर उसकी जागीर उसे सौंप दी। भीमसिंह ने अभय सिंह से मिला हुआ 'गोकुलगज' नाम का हाथी इस अवसर पर महाराजा को भेंट किया[3]।

भीमसिंह का आकर क्षमा-प्रार्थी होना

जिन दिनों गजसिंह कुछ ठाकुरों के झगड़े निबटाने में व्यस्त था, उसके पास भीखमपुर से समाचार आया कि जैसलमेर के रावल ने चढ़ाई

(१) 'वीरविनोद' में भी आनन्दसिंह की मृत्यु का यही समय दिया है (भाग २, पृ० ५०४)।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५७।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५७।

बीकमपुर पर रावल अखैसिंह का अधिकार होना

कर दी है, अतएव आप शीघ्र सहायता को आवे। इसपर वह स्वय सहायता के लिए चला, परन्तु मार्ग मे श्रावणादि वि० स० १८०५ (चैत्रादि १८०६) आषाढ सुदि १५ (ई० स० १७४९ ता० १९ जून) सोमवार[1] को अजमेर मे अभयसिंह का देहात होने की खबर मिलते ही वह फिर बीकानेर लौट गया। श्रावण सुदि १०[2] को रामसिंह के जोधपुर की गद्दी पर बैठने पर जब बख्तसिंह ने उसके पास टीका भेजा तो उसने उसे यह कहकर लौटा दिया कि पहले जालोर छोडो तो वह स्वीकार किया जायगा। बख्तसिंह के इस बात को अस्वीकार करने पर उसने मेडतियो की सहायता से उस(बख्तसिंह) पर चढ़ाई कर दी[3]। तब बख्तसिंह ने आदमी भेजकर बीकानेर से सहायता मगवाई। इसपर गजसिंह १८००० सेना लेकर उसकी सहायता के लिए गया। एक साथ दो स्थानो पर लडना कठिन कार्य था अतएव उसने बीकमपुर मे रक्खी हुई सेना भी अपने पास बुला ली। ऐसा अच्छा अवसर देख जैसलमेर के रावल अखैराज ने बीकमपुर पर चढाई कर कुभकर्ण को छल से मार वहा अधिकार कर लिया। तब से बीकमपुर जैसलमेर राज्य मे है[4]।

फिर गाव सरणवास मे जाकर महाराजा गजसिंह बख्तसिंह से मिला। अनन्तर बख्तसागर होते हुए हीलोडी गाव मे दोनो के डेरे हुए,

बखतसिंह का सहायता को जाना

जहा रूण मे महाराजा रामसिंह के होने का समाचार आने पर बख्तसिंह ने वहा पहुच-

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी अभयसिंह की मृत्यु का यही समय दिया है (जि० २, पृ० १६१)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० २, पृ० १६३। दयालदास की ख्यात में वि० स० १८०५ श्रावण वदि १२ दिया है, जो ठीक नहीं है।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात मे भी ऐसा ही उल्लेख है (जि० २, पृ० १६३-४)।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५७ (जालोर के स्थान पर नागोर दिया है, जो ठीक नहीं है)।

कर भंडारी मनरूप को दगा से मार डाला, परन्तु कोई बड़ी लड़ाई नहीं हुई। जब बख़्तसिंह तथा गजसिंह मोडी में पहुंचे तो उन्हें पता लगा कि अमरसिंह तथा भाद्रा के लालसिंह ने सवाई आदि गावों को लूटा और झगड़ा किया है। इसपर तारासिंह सेना सहित उनपर चढ़ा। रिणी पहुंचने पर उसने बड़ी वीरतापूर्वक विद्रोहियों का सामना किया, परन्तु अंत में अपने कितने ही साथियों सहित वह मारा गया, जिससे रिणी में अमरसिंह का अधिकार हो गया। इतना होने पर भी गजसिंह ने बख़्तसिंह का साथ न छोड़ा, पर अपने कई सरदारों को सेना देकर उधर भेज दिया। पीछे से ऊंट सवारों के साथ मेहता मनरूप को भी बख़्तसिंह ने उनकी सहायतार्थ रवाना कर दिया। रामसिंह की सेना में जयपुर के महाराजा ईश्वरीसिंह का भेजा हुआ राजावत दलेलसिंह निर्भयसिंहोत ४००० सवारों के साथ था, उसने बख़्तावरसिंह से बात कर बख़्तसिंह के जालोर छोड़ देने एवं बदले में तीन लाख रुपये तथा अजमेर लेने की शर्त पर दोनों में सन्धि करा दी[1]। रुपया चुकाने की अवधि छः मास निश्चित हुई। अनन्तर रामसिंह वहां से लौट गया तथा गजसिंह भी दलेलसिंह से बातचीत कर बीकानेर चला गया[2]।

अमरसिंह से रिणी छुड़ाना

रिणी पर तब तक अमरसिंह का ही अधिकार था। बीकानेर लौटने पर गजसिंह ने रिणी की ओर प्रस्थान किया, जिसकी ख़बर लगते ही अमरसिंह डरकर रिणी

(१) इसके विपरीत जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि ईश्वरीसिंह के पास से राजावत दलेलसिंह उसकी पुत्री के विवाह के नारियल लेकर रामसिंह के पास आया हुआ था। उसका इस सन्धि में कोई हाथ नहीं रहा। थोड़ी लड़ाई के बाद बख़्तसिंह ने जालोर देने की शर्त कर संधि कर ली थी, परन्तु उसने जालोर से अपना अधिकार लड़ाई बंद होने पर भी नहीं हटाया (जि० २, पृ० १६६)। उक्त ख्यात से इस लड़ाई में गजसिंह का बख़्तसिंह के पक्ष में होना नहीं पाया जाता, परन्तु उसका बख़्तसिंह के शामिल होना अविश्वसनीय कल्पना नहीं है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पृ० ७२३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५७८।

छोड़कर फतहपुर होता हुआ जोधपुर भाग गया[1]।

जिन दिनों गजसिंह रिणी इलाके के गांव जोडी मे ठहरा हुआ था, उसके पास बख़्तसिंह ने कहलाया कि मैं बादशाह के बख़्शी (सलाबतखां) को सहायतार्थ लाने जा रहा हूं, आप भी शीघ्र आजावे। उधर जोधपुर के शासक रामसिंह के कुछ जिद्दी होने के कारण और उसके अपमानपूर्ण व्यवहारो से तंग आकर कितने ही प्रमुख सरदार नागोर मे बख़्तसिंह से जा मिले। बादशाही सेना के पहुंचने के बाद ही गजसिंह भी अपने राज्य का समुचित प्रबन्ध कर सेना सहित बख़्तसिंह से मिल गया। इस विशाल सैन्य का आगमन सुन रामसिंह ने जयपुर से महाराजा ईश्वरीसिंह के पास से सहायता मंगवाई। गांव सूरियावास में विपक्षी दलों मे तोपों का भीषण युद्ध हुआ, जिसमे दोनों ओर के बहुसंख्यक लोग मारे गये। अनन्तर पीपाड मे भी बडा युद्ध हुआ, जिसमे अमरसिंह (पीसांगण) आदि रामसिंह के कई सहायक सरदार मारे गये, परन्तु कुछ निर्णय न हुआ। युद्ध से होनेवाली भीषण हानि देखकर ईश्वरीसिंह मुसलमान सेनाधिपति से मिल गया और वे दोनो युद्धक्षेत्र छोड़कर अपने अपने स्थानो को चले गये। प्रधान सहायकों के चले जाने पर युद्ध का जारी रखना हानिप्रद ही सिद्ध होता अतएव गजसिंह, बख़्तसिंह तथा रामसिंह भी अपने अपने स्थानो को लौट गये[2]।

बख़्तसिंह की सहायतार्थ जाना

विo सo १८०७ (ईo सo १७५०) मे ईश्वरीसिंह जहर खाकर मर गया और जयपुर की गद्दी पर उसका भाई माधोसिंह बैठा। ईश्वरीसिंह के मरने से रामसिंह का एक प्रधान सहायक जाता रहा। तब मारवाड़ के प्रमुख सरदारों ने, जो पहले

दूसरी बार बख़्तसिंह की सहायता करना

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५८।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५८। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस घटना का उल्लेख है (जि० २, पृ० १७१)। उक्त ख्यात में भी नवाब का नाम सलाबतख़ां दिया है।

से ही रामसिंह के विरुद्ध थे, बख्तसिंह से जाकर निवेदन किया कि रामसिंह इस समय केवल थोड़े से साथियो सहित मेड़ते में है, अतएव चढाई करने का उपयुक्त अवसर है। बख्तसिंह के मन मे भी यह बात जम गई। बीकानेर से गजसिंह को इससे पूर्व ही उसने अपने पास बुला लिया था। दोनो की सम्मिलित सेना ने खेढली होते हुए दूदासर तालाब पर पहुचकर वि० स० १८०७ मार्गशीर्ष वदि ६ (ई० स० १७५० ता० ११ नवम्बर) को मेड़तियो को हराकर रामसिंह का डेरा इत्यादि लूट लिया। वहा से गजसिंह तथा बख्तसिंह ने बीलाड़े जाकर एक लाख रुपये पेशकशी के वसूल किये। पीछे जब वे सोजत मे थे, तब रामसिंह ने सैन्य एकत्र कर उनपर फिर आक्रमण किया, परन्तु उसे पराजित होकर भागना पड़ा। विजयी सेना ने उसके खेमे लूटकर उनमे आग लगा दी। इस अवसर पर जालिमसिंह किशोरसिंहोत मेड़तिया ने उनको रोकने का प्रयत्न किया, पर विपक्षी सेना के अधिक होने से उसे अपने प्राण गवाने पड़े। अनन्तर युद्ध करने मे कोई लाभ न देख सन्धि कर रामसिंह जोधपुर चला गया और गजसिंह तथा बख्तसिंह नागोर लौट गये[१]।

बख्तसिंह को जोधपुर का राज्य दिलाना

उनके उधर प्रस्थान करते ही रामसिंह पुन मेड़ते जा रहा, जिसकी खबर लगते ही गजसिंह तथा बख्तसिंह ने वि० सं० १८०८ आषाढ सुदि ६ (ई० स० १७५१ ता० २१ जून) को सीधे जोधपुर जाकर वहा चार प्रहर तक खूब लूट मचाई। गढ़ के भीतर भाटी सुजानसिंह तथा पोकरण के ठाकुर देवीसिंह के श्वसुर थे, जो उनकी सेवा मे उपस्थित हो गये और गढ़ उनके सुपुर्द कर दिया। तब किले मे प्रवेश कर गजसिंह ने बख्तसिंह को गद्दी पर बैठाया और इसकी बधाई दी। बख्तसिंह ने इसके उत्तर में निवेदन किया कि यह आपकी समयोचित सहायता के बल पर ही सभव हो

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७४-५। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५८ । जोधपुर राज्य की ख्यात मे भी इस घटना का प्राय ऐसा ही वर्णन है (जि० २, पृ० १७३ ८)।

सका है । अनन्तर वहा से बिदा हो गजसिंह बीकानेर लौट गया[1] ।

इसी समय जैसलमेर से रावल अखैराज के पास से उसके विवाह का सन्देश आया । गजसिंह ने इस खुशी के अवसर पर बख्तसिंह को भी निमन्त्रित किया । युद्ध होने की आशका से वह स्वय तो न गया, परन्तु अपने पुत्र विजयसिंह को उसने भेज दिया, जो मार्ग मे गाव ओढाणी मे बरात के शामिल हो गया । वि० स० १८०८ माघ सुदि ५ (ई० स० १७५२ ता० १० जनवरी) को गजसिंह ने जैसलमेर पहुचकर रावल अखैराज की पुत्री चद्रकुवरी से विवाह किया । इस अवसर पर उसके साथ के बहुतसे सरदारो की शादिया भी वहा हुई[2] ।

गजसिंह का जैसलमेर में विवाह

बीकानेर लौटने पर गजसिंह ने मेहताओं को पदच्युत कर उनके स्थान पर मूधड़ो को नियुक्त किया । अनन्तर वि० स० १८०९ (ई० स० १७५२) में उसने मूधडा अमरसिंह को शेखावतो के गाव शिवदडा पर भेजा, क्योकि वहा उपद्रव बढ रहा था । वहा बख्तसिंह की आज्ञा से दौलतपुर (शेखावाटी) का नवाब भी आकर शामिल हो गया । इस सम्मिलित सैन्य ने गाव को लूटकर गढ़ी को गिरा दिया और उपद्रवियो को पकडकर वहा शान्ति

शेखावतों का दमन करना

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७५ । पाउलेट, गैजेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५६ । वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०४ । जोधपुर राज्य की ख्यात मे वि० स० १८०८ श्रावण वदि २ (ई० स० १७५१ ता० २६ जून) को जोधपुर पर बख़्तसिंह का अधिकार होना लिखा है । इस अवसर पर उसने अभयसिंह द्वारा छीनी हुई बीकानेर की खरबूजी की पट्टी पीछी गजसिंह को दे दी (जि० २, पृ० १८०) ।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७५ ६ । वीरविनोद, भाग २ पृ० ५०५ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५६ ६० ।

इस विवाह का उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १८१) में भी है । लक्ष्मीचन्द्र लिखित 'जैसलमेर की तवारीख़' मे भी चन्द्रकुवरी का विवाह महाराजा गजसिंह के साथ होना लिखा है (पृ० ६७) ।

स्थापित की[1]।

कुछ दिनों बाद गजसिंह का डेरा रिणी मे हुआ, जहा रहते समय बख्तसिंह के पास से समाचार आया कि रामसिंह दक्खिनियों की फौज लेकर अजमेर तक आ गया है, अतएव आप सहायतार्थ आइये। इसपर गजसिंह ने नागोर की ओर प्रस्थान किया। बख्तसिंह पहले ही अजमेर की ओर रवाना हो चुका था। लाडपुरा मे दोनों एकत्र हो गये। वहा से चलकर दोनों पुष्कर मे ठहरे। उनका आगमन सुनते ही रामसिंह और मरहठे बिना लड़े वापस चले गये। तब गजसिंह बिदा ले बीकानेर लौट गया[2]।

बख्तसिंह की सहायता को जाना

हिसार का परगना बहुत दूर होने के कारण, बादशाह (अहमदशाह) वहा का सुचारु प्रबन्ध नही कर सकता था और वहा के लोग सदा उपद्रव किया करते थे, अतएव वह परगना गजसिंह के नाम कर दिया गया। उसने मेहता बख्तावरसिंह को ससैन्य भेज वि० स० १८०६ ज्येष्ठ वदि २ (ई० स० १७५२ ता० १९ मई) को वहा अपना अधिकार स्थापित किया[3]।

बादशाह का तरफ से गजसिंह को हिसार का परगना मिलना

वि० स० १८०९ भाद्रपद वदि १३ (ई० स० १७५२ ता० २६ अगस्त) को अजमेर इलाके के सोनौली गाव में बख्तसिंह का स्वर्गवास हो गया और उसका पुत्र विजयसिंह

बख्तसिंह की मृत्यु

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६०।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७६। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०५। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६०। रामसिंह का मरहटों से भाई चारा स्थापित करने एव अजमेर आने का उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात में भी है (जि० २, पृ० १८३ ४)।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६१।

जोधपुर की गद्दी पर बैठा[1]।

उन्हीं दिनों बादशाह अहमदशाह के पास से आज्ञापत्र आया कि वज़ीर मन्सूरअलीखां (? सफ़दरजंग) विद्रोही हो गया है, इसलिए शीघ्र सेना लेकर आओ। इसपर गजसिंह ने बादशाह की सेवा में सेना भेजी, जो हिसार में मेहता बख्तावरसिंह के शामिल होकर दिल्ली पहुंची[2]। बख़्तावरसिंह ने बादशाह की सेवा में उपस्थित हो महाराजा की ओर से मोहरें आदि भेंट कीं। समय पर सहायता लेकर पहुंच जाने से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने गजसिंह का मनसब सात हज़ारी करके सिरोपाव के साथ 'श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजाशिरोमणि श्री गजसिंह' का ख़िताब प्रदान किया, जो बाद में उसके नाम की मुद्रा[3]

बादशाह की तरफ़ से गजसिंह को मनसब मिलना

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७६। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०५। जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० २, पृ० १८६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६१।

(२) सर यदुनाथ सरकार ने इस अवसर पर बीकानेर (महाराजा गजसिंह) से ७५०० सेना आना लिखा है (फ़ॉल ऑव् दि मुग़ल एम्पायर, जि० १, पृ० ४६२ का टिप्पण)।

(३) वि० सं० १८२६ वैशाख वदि २ (ई० स० १७६६ ता० २३ अप्रेल) के नौहर क़स्बे से महाराजा गजसिंह और महाराजकुमार राजसिंह के लिखे हुए जोधपुर के ओझा रामदत्त के नाम के परवाने के ऊपर छः पंक्तियों की नीचे लिखी हुई मुद्रा लगी है—

श्रीलक्ष्मीनारायणजी-
भक्त राजराजेश्वर म-
हाराजाधिराज महारा-
जशिरोमणि महारा-
ज श्री गजसिंहाना मु-
द्रेय विजयते ॥ १ ॥

और शिलालेखो[1] मे लिखा जाने लगा[2]। इस अवसर पर उसे माही मरातिब का श्रेष्ठ सम्मान भी प्राप्त हुआ और उसके कुवर राजसिंह को चार हजारी मनसब[3] तथा मेहता बख़्तावरसिंह को राव का खिताब दिया गया[4]। कितने ही दूसरे सरदारों आदि को भी सिरोपाव मिले[5], जिनमे से प्रमुख के नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—भोपतसिंह	ठिकाना	बाय
२—जोरावरसिंह	,,	कुभाणा
३—पेमसिंह	,,	नीमा
४—सरदारसिंह	,,	पारवा
५—सुखरूप	,,	परावा
६—जालिमसिंह	,,	बीदासर
७—दीपसिंह	,,	कणवारी

(१) अथास्मिन् शुभसवत्सरे श्रीविक्रमादित्यराज्यात् सवत् १८३६ वर्षे शके १७०१ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमे माघमासे शुक्लपक्षे तिथौ द्वादश्या • पुनर्वसुनक्षत्रे श्रीराजराजेश्वरमहाराजाधिराज-महाराजशिरोमणिमहाराजश्री १०८ श्रीगजसिहदेवै' चूडासागरस्य जीर्णोद्धार कृत

(चूडासागर के लेख की छाप से)।

(२) बादशाह अहमदशाह के सन् जुलूस ६ ता० २ शव्वाल (हि० स० ११६६ = वि० स० १८१० श्रावण सुदि ४ = ई० स० १७५३ ता० ३ अगस्त) के फ़रमान में भी गजसिह को सात हज़ार ज़ात और पाच हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है।

(३) उपर्युक्त टिप्पण २ की तारीख़ के एक दूसरे फ़रमान में गजसिह के पुत्र राजसिह को चार हज़ार ज़ात और दो हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है।

(४) उपर्युक्त टिप्पण २ मे आई हुई तारीख़ के एक दूसरे फ़रमान में बख्तावरसिंह को चार हज़ार ज़ात और एक हज़ार सवार का मनसब तथा 'राव' का ख़िताब मिलना लिखा है।

(५) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७७। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०५। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६१।

८—धीरतसिंह ठिकाना साडवा
९—देवीसिंह „ हरासर
१०—विजयसिंह „ चाहड़वास
११—धीरतसिंह „ चूरू
१२—शेखावत चादसिंह
१३—पुरोहित रणछोडदास

जिन दिनों महाराजा हिसार मे था बीकानेर और जोधपुर की मिलाकर ५०००० फौज उसके साथ थी। दिल्ली मे मनसूरअलीखा (? सफ़दरजग) का विद्रोह भी समाप्त हो चुका था। इसी समय गजसिंह से विजयसिंह ने यह कहलाया कि दक्खिनियो की सहायता से रामसिंह राज्य पर आक्रमण करनेवाला है, आप शीघ्र सहायता को आवे। इसपर उस(गजसिंह)ने खींवसर के ठाकुर जोरावरसिंह उदयसिंहोत आदि कई सरदारो को ४००० सेना के साथ उधर रवाना किया। अनन्तर हिसार का प्रब ध मेहता रघुनाथ एव द्वारकाणी (महाजन) के हाथो मे देकर वह स्वय रिणी गया। वहा जैसलमेरी राणी से कुवर सबलसिंह का ज म हुआ, जिसका उत्सव मनाने के बाद मेहता भीमसिंह तथा पुरोहित को भी ससैन्य पीछे आने का आदेश कर वह नागोर पहुचा। पीछे चली हुई भीमसिंह की सेना के भी शामिल हो जाने पर वह खजवाणा होता हुआ मेड़ता पहुचा। इसी बीच मरहटों की सेना के व्रज की ओर चले जाने का समाचार मिला। तब गजसिंह ने अपनी अनुपस्थिति में हिसार के परगने मे उपद्रव होने की आशका देख उधर जाने की अनुमति मागी, परन्तु जोधपुर का उपद्रव शात हो जाने तक विजयसिंह ने उससे वही रहने का आग्रह किया और कहा कि इधर से निवृत्त होने पर हिसार पर फिर अधिकार कर लेगे। इसपर गजसिंह वही ठहर गया और हिसार से थाना उठा लिया गया। अनन्तर उसने पूनियाण का प्रबन्ध कर सादाऊ मे अपना थाना स्थापित किया तथा सिवराण से पेशकशी वसूल की और मडोली के विद्रोही जाटों को मारकर

विजयसिंह की सहायताथ जाना

उस प्रदेश मे सुप्रबन्ध का आविर्भाव किया[1]।

इसके थोड़े दिनो बाद ही जयआपा सिन्धिया ने मारवाड़ पर आक्रमण किया। गजसिंह ने इस अवसर पर स्वदेश से और सेना बुलवाई। अब सब मिलाकर उसकी सेना ४०००० हो गई, इसके अतिरिक्त ७०००० फौज विजयसिंह की थी तथा ५००० सेना के साथ किशनगढ का राजा बहादुरसिंह भी सहायतार्थ आया हुआ था। रामसिंह के पास इसके दूने से भी अधिक सेना थी और उसका डेरा गगारडा में था। उस (रामसिंह)पर गजसिंह, विजयसिंह तथा बहादुरसिंह ने तीन बार चढ़ाईकर तोपो के गोलो की वर्षा की, जिससे शत्रु हटकर सात कोस दूर गाव चौरासण मे चले गये। अपने सरदारो के परामर्शानुसार वि० स० १८११ आश्विन सुदि १३ (ई० स० १७५४ ता० २९ सितम्बर) को फिर विजय सिंह ने अपने सहायको सहित शत्रुओ पर पहले से प्रबल आक्रमण किया। सदा की भाति ही इस बार भी राठोडो ने अद्भुत वीरता का परिचय दिया, परन्तु शत्रु सेना अधिक होने से उन्हे हारकर पीछा मेडते लौटना पडा[2]। इस आक्रमण मे विजयसिंह के सरदारो के अतिरिक्त, गजसिंह की तरफ के बीदावत इन्द्रभाण मोहकमसिंहोत (गाव ककू का), बीका कीरतसिंह (किशनसिंहोत), बीदावत अखैसिंह नारायणदासोत, फतहपुर का नवाब एव कई अन्य सरदार काम आये। बहादुरसिंह तो अपनी सारी सेना के कट जाने से किशनगढ लौट गया। सैन्य बहुत कम हो जाने से उस स्थल पर लडाई जारी रखना उचित न समझ गजसिंह तथा विजयसिंह नागौर की ओर चले। वहा से विजयसिंह ने गजसिंह को बीकानेर से रसद आदि सामान भेजते रहने के लिए कहकर विदा कर दिया और स्वय नागौर के गढ़ मे जा रहा। तब रामसिंह तथा जयआपा सिन्धिया ने

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७७ ८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६१।

(२) टॉड-कृत 'राजस्थान' में जोधपुर के प्रसग में इस लड़ाई का विशद विवरण दिया है (जि० २, पृ० ८७० तथा १०६१ ४)।

मोरचाबन्दी कर नागौर को घेर लिया तथा ५०००० फौज के साथ जयआपा के पुत्र जनकू ने जोधपुर पर आक्रमण किया। विजयसिंह ने मरहटों से लडने मे कोई लाभ न देख महाराणा को लिखकर उदयपुर से चूडावत जैतसिंह कुबेरसिंहोत (सलूबर) को बुलवाया। जैतसिंह ने जयआपा से समझौते के सम्बन्ध मे बातचीत की, परन्तु कोई परिणाम न निकला। ऐसे समय मे महाराजा विजयसिंह की इच्छानुसार उसके दो राजपूतो ने जयआपा को छल से मार डाला। इसपर मरहटी सेना ने क्रुद्ध होकर राजपूतो पर हमला कर दिया, जिसमें जैतसिंह अपनी सेना सहित वीरता के साथ लडता हुआ निरर्थक मारा गया।

उधर जयपुर का महाराजा माधोसिंह भी इस उद्योग म था कि जोधपुर का राज्य रामसिंह को मिले तो अपने यश मे वृद्धि हो, परन्तु इसी बीच विजयसिंह का आदमी आ जाने से उसने उसकी सहायता करने का निश्चय कर बीकानेर से भी सेना मगवाई, जो बख्तावरसिंह की अध्यक्षता में डीडवाणे मे जयपुर की सेना के शामिल हो गई। मरहटो ने इसकी सूचना पाते ही इस फौज को घेरकर इसका आगे बढना रोक दिया। चौदह मास तक जब घेरा न उठा, तब अपने सरदारो से सलाह कर विजयसिंह एक रात्रि को एक हजार सवारो के साथ गढ़ छोड़कर बीकानेर की ओर चला गया और ३६ घटे मे देशणोक जा पहुचा[1]।

उसके आगमन का समाचार बीकानेर पहुचने पर गजसिंह ने उसके आदर-सत्कार का समुचित प्रबन्ध किया और मेहता रघुनाथसिंह आदि को उसका स्वागत करने के लिए भेजा। अनन्तर परस्पर मिलकर शत्रुओं पर आक्रमण करने से पूर्व माधोसिंह की सहायता पाना आवश्यक समझ

विजयसिंह का बीकानेर पहुँचना तथा वहा से गजसिंह के साथ जयपुर जाना

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७८ ६। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०५ ६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६२।

जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १८८ ६५) में भी इस घटना का लगभग ऊपर जैसा ही उल्लेख है।

गजसिंह तथा विजयसिंह जयपुर गये[1], जहा क्रमश करोली के महाराजा गोपालसिंह तथा बूदी के रावराजा उम्मेदसिंह से उनकी भेट हुई। कुछ ही दिनो बाद माधोसिंह के पुत्र उत्पन्न होने से उत्सव आदि के कारण उनके रहने की अवधि बढती गई और जिस काम के लिए वे आये थे उसके सम्बन्ध मे कुछ भी बात न हुई। एक दिन गजसिंह ने उपयुक्त अवसर देख विजयसिंह की सहायता की चर्चा माधोसिंह के आगे छेड़ी, परन्तु उसने कोई ध्यान न दिया। जब गजसिंह ने मेहता भीमसिंह आदि को इस सम्बन्ध मे स्पष्ट उत्तर मागने के लिए भेजा तो माधोसिंह की इच्छानुसार हरिहर बगाली ने कहा कि यदि विजयसिंह को सहायता दी गई तो जयपुर को मरहटो से लोहा लेना पडेगा, जिसमे एक करोड़ रुपया खर्च होगा। इतना रुपया विजयसिंह दे तो उसे सहायता दी जा सकती है। इस उत्तर को पाकर गजसिंह तथा विजयसिंह ने वहा समय व्यर्थ गवाना ठीक न समझा और वे माधोसिंह से विदा होने गये। इस अवसर पर माधोसिंह ने गजसिंह को एकान्त मे ले जाकर दोनो राज्यो की परस्पर मैत्री का स्मरण दिलाते हुए कहा कि आपके राज्य के फलोधी आदि जो ८४ गाव अजीतसिंह ने जोधपुर में मिला लिये थे, वे सब मैं रामसिंह से कहकर वापस दिला दूगा। रहा विजयसिंह, सो उसका प्रबन्ध यहा कर दिया जायगा (मरवाया या कैद किया जायगा), परन्तु गजसिंह ने यह घृणित बात मानने से इनकार कर दिया। माधोसिंह ने बहुत जोर दिया, पर वह (गजसिंह) अपने निश्चय पर स्थिर रहा। तब माधोसिंह ने उसका विवाह करने के बहाने उसे वहा रोकना चाहा, परन्तु उसने यही उत्तर दिया कि पहले विजयसिंह को सकुशल अपने राज्य की सीमा तक पहुचा दू तब लौट सकता हू। फिर माधोसिंह ने गजसिंह से कहा कि आप पधारें, मैं विजयसिंह से बात कर लू। गजसिंह के मन में शका ने घर तो कर ही लिया था, उसने तुरन्त प्रेमसिंह किशनसिंहोत बीका तथा हठीसिंह वणीरोत को विजयसिंह की

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १६६) में भी विजयसिंह का बीकानेर तथा वहा से गजसिंह को साथ ले जयपुर जाना लिखा है।

रक्षा पर नियुक्त कर दिया[1]।

विजयसिंह के पक्ष का रीया का ठाकुर जवानसिंह सूरजमलोत जयपुर के नाथावत ठाकुरो के यहा ब्याहा था। उसकी नाथावत स्त्री ने जवानसिंह को उसके स्वामी पर चूक होने की सूचना दे दी। इसपर जवानसिंह अपने स्वामी को, जो माधोसिंह से बाते कर रहा था, सावधान करने के लिए गया। माधोसिंह ने पेशाब करने के बहाने वहा से हटने का प्रयत्न किया, परन्तु इसी समय बीकानेर के पूर्वोक्त ठाकुरो ने उसकी कमर मे हाथ डाल उसे यह कहकर बैठा दिया कि महाराज हमे आशका है अतएव आप न जावे। इसपर जयपुर के ठाकुर उनपर आक्रमण करने को उद्यत हुए, परन्तु माधोसिंह के मना करने से वे रुक गये। विजयसिंह भी पूर्वोक्त ठाकुरो के कहने से गजसिंह के पास चला गया। अनन्तर उन ठाकुरों ने माधोसिंह से क्षमा माग ली। गजसिंह ने भी मेहता बख़्तावरसिंह को उसके पास भेज उसे प्रसन्न कर लिया। फिर अपने जयपुर लौट आने तक के लिए मेहता भीमसिंह आदि को वहा छोडकर गजसिंह तथा विजयसिंह ने प्रस्थान किया[2]।

जयपुर के माधोसिंह का विजयसिह पर चूक करने का निष्फल प्रयत्न

पाटण, पचेरी और लोहारु होते हुए वे दोनो रिणी पहुचे। जहा नागोर से समाचार आया कि वि० स० १८१२ माघ सुदि २ (ई० स० १७५६ ता० २ फरवरी) को बीस लाख रुपया लेना ठहराकर मरहटो ने वहा से घेरा उठा लिया है और जोधपुर भी विजयसिंह के बहाल हो गया

विजयसिंह को जोधपुर वापस मिलना

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ७९-८१। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६२ ३।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८१ २। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०१। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६३-४। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी लिखा है कि पहले तो माधोसिंह विजयसिह को सहायता देने के लिए प्रस्तुत हो गया था, परन्तु पीछे से बदल गया (जि० २, ० १८७)।

है[1]। इस समाचार से बडी प्रसन्नता हुई तथा गजसिंह ने बहुतसा सामान भेट मे देकर विजयसिंह को जोधपुर भेजा, जहा पहुचने पर उसने बख़्तसिंह द्वारा तागीर किये हुए ५२ गावों की सनद तथा सवा लाख रुपया नक़द भेजा, जैसी कि उसने बीकानेर में रहते समय प्रतिज्ञा की थी[2]।

साखू के ठाकुर को क़ैद करना

उधर गजसिंह ने माधोसिंह से की हुई अपनी प्रतिज्ञा पालनार्थ जयपुर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में उसने साखू के विद्रोही ठाकुर शिवदानसिंह बहादुरसिंहोत को क़ैद कर उसकी जागीर प्रेमसिंह बाघसिंहोत को दे दी[3]।

विद्रोही सरदारों का दमन करना

अनन्तर माधोसिंह से मिल और वहा अपना विवाह कर, गजसिंह ने बीकानेर की ओर प्रस्थान किया। पूनियाण के दो गाव शेखावत हाथीराम भूपालसिंहोत ने दबा लिये थे तथा शेखावत नवलसिंह (जोरावरसिंहोत) और भूपालसिंह किशनसिंहोत में सिंघाणे आदि की सीमा के सम्बन्ध में झगडा चल रहा था। साखू में डेरा रहते समय गजसिंह ने राव बख़्तावरसिंह को इसका निबटारा करने के लिए भेजा, जो जाकर नवल सिंह के शामिल हो गया। इस झगड़े की खबर जयपुर पहुचने पर वहा से कछवाहा रघुनाथसिंह ने आकर विद्रोही सरदारों को दबाया और उनके वे गाव बीकानेर के अधीन करा दिये[4]।

महाराजा गजसिंह के जयपुर निवास के समय वि० स० १८१२ (ई० स०

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १६८) मे लिखा है कि ५१ लाख रुपये और अजमेर पाने की शर्त पर मरहटों ने घेरा उठा लिया।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६४ (इस पुस्तक में केवल ४२ गावों की सनद भेजना लिखा है)।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८२। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६४।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६५।

१७५५) मे बीकानेर मे बड़ा भारी दुर्भिक्ष पडा। उस समय उसने मेहता भीमसिंह आदि को प्रजा का कष्ट निवारण करने के लिए भेजा। उन्होने सदाव्रत खुलवाये और राज्य में नई इमारते बनवाना आरम्भ किया, जिससे क्षुधाग्रस्त मनुष्यो का बहुत भला हुआ। उन्ही दिनो शहरपनाह का भी निर्माण हुआ[1]।

बीकानेर में दुर्भिक्ष पड़ना

जयपुर से लौटने पर नारणोतो तथा मघरासर के ठाकुर का, जो विद्रोही हो रहे थे, दमन कर उन्हे गजसिंह ने अपने अधीन बनाया। उन दिनो मलसीसर का बीदावत (भागचन्दोत) बीकानेर राज्य की आज्ञाओ की उपेक्षा करते थे इसलिए बख़्तावरसिंह ने उसे भी राज्य के अधीन किया। इसके अतिरिक्त अन्य ठाकुरो से भी दड के रुपये वसूल कर उन्हे महाराजा के अधीन बनाया[2]।

नारणोतों, बीदावतों आदि को अधीन करना

वि० स० १८१३ (ई० स० १७५६) मे मेहता बख़्तावरसिंह को पृथक् कर उसके स्थान मे मेहता पृथ्वीसिंह को गजसिंह ने अपना दीवान नियुक्त किया। उन्ही दिनो सिक्खो ने नोहर म उत्पात मचाना आरम्भ किया, जिसपर दौलतसिंह पृथ्वीराजोत और मेहता माधोराय उधर का प्रबन्ध करने के लिए भेजे गये। अनन्तर गजसिंह स्वय रिणी गया, जहा से उसने पुरोहित जगरूप तथा चौहान रूपराम को भाद्रा के ठाकुर लालसिंह पर भेजा। पीछे शेखावत नवलसिंह आदि भी ४००० सेना के साथ उधर गये और उस(लालसिंह)को राजसेवा स्वीकार करने पर बाध्य किया। महाराजा के अनूपपुर पहुचने पर लालसिंह महाराजा के प्रतिष्ठित सरदारों के साथ उसकी सेवा मे आ रहा था, परन्तु मार्ग मे अपशकुन हो जाने से

विद्रोही लालसिंह को अधीन करना

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६४।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६४।

वह वापस लौट गया। इसपर क्रुद्ध होकर महाराजा ने अपनी सारी सेना एकत्र कर स्वयं उसपर चढ़ाई की और डूंगराणा के गढ़ को तोपों के गोलों से नष्ट कर दिया। उक्त गढ़ में सावतसिंह दौलतरामोत था, जिसके प्रायः सारे सैनिक काम आये और वह स्वयं भी मारा गया तथा उस गढ़ पर गजसिंह का अधिकार हो गया। सावतसिंह के बचे हुए कुटुम्बियों को उसने आदर के साथ भाद्रा पहुंचवा दिया। कालाणा के स्वामी सावतसिंह का बेटा हिन्दूसिंह भी भागकर भाद्रा चला गया, जिस से वहां का बहुतसा अन्न आदि सामान विजेताओं के हाथ लग गया। तब तो लालसिंह को भी चेत हुआ और उसने गजसिंह के डेरे रासलाणे में होने पर शेखावत नवलसिंह की मार्फत उसकी सेवा में उपस्थित हो उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। गजसिंह ने उसका अपराध क्षमाकर उसकी जागीर उसे सौंप दी[1]।

रावतसर पर चढ़ाई

वहां से प्रस्थान करने पर महाराजा गजसिंह ने रावतसर पर घेरा डाला, जहां के स्वामी रावत आनन्दसिंह के अधीनता स्वीकार करने पर उससे दंड के २५००० रुपये वसूल कर उसके अपराध क्षमा कर दिये[2]।

भट्टियों की सहायतार्थ सेना भेजना

फिर भट्टियों पर चढ़ाई की आज्ञा दी गई, जिसकी खबर मिलते ही भट्टी हुसेनमुहम्मद बीकों तथा कांधलोनों की मारफत गजसिंह की सेवा में उपस्थित हो गया। उसके निवेदन करने पर महाराजा ने बख्तावरसिंह, ठाकुर सुरताणसिंह कुशलसिंहोत आदि को फौज देकर उसके साथ कर दिया, जिन्होंने जाकर सोतर पर उसका अधिकार करा दिया[3]।

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८५ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६५ ।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८६ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६६ ।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८६ ।

उन्ही दिनो बादशाह (आलमगीर दूसरा) के सिरसा पहुचने पर घाय का ठाकुर दौलतसिंह तथा भाद्रा का लालसिंह उसकी सेवा मे उपस्थित हुए और उन्होने गजसिंह को भी शाही सेवा मे उपस्थित होने के लिए लिखा, परन्तु वह न गया[1]।

बादशाह का सिरसा में जाना

वि० स० १८१४ (ई० स० १७५७) मे गजसिंह ने नौहर के कोट की नीव रक्खी, जो वि० स० १८१७ (ई० स० १७६०) मे बनकर सम्पूर्ण हुआ[2]।

नौहर के गढ़ का निर्माण

जोधपुर से विजयसिंह के पास से आदमियों ने आकर निवेदन किया कि मरहटो के साथ की पिछली लडाई मे अत्यधिक धन खर्च हो जाने के कारण राज्य की दशा सकटापन्न हो रही है, अतएव हमारे महाराजा ने आपसे धन की सहायता मागी है। गजसिंह ने तत्काल ५०००० रुपये देकर उन्हें विदा किया और कहा कि जोधपुर की सहायता के लिए मेरा प्राण तक हाजिर है[3]।

जोधपुर को आर्थिक सहायता देना

वि० स० १८१६ (ई० स० १७५९) मे गजसिंह बीदासर गया, जहा पहुचकर उसने बीदावतो पर 'भाछ' (एक प्रकार का कर) के छ हजार

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८६ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६६ ।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८६ ।

पाउलेट (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६६) ने, गढ़ का निर्माणकाल वि० स० १८४० से १८७० (ई० स० १७८३ से १८१३) दिया है जो ठीक नहीं हो सकता ।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८६ । वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०६ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६६ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं मिलता ।

बीदावतो पर कर लगाना

रुपये नियत किये[1], एव खारबारा के ठाकुरों ने भाटियो का बहुतसा सामान लूट लिया था वह सेना भेजकर सब वापस दिलवाया[2]।

उधर जोधपुर से महाराजा विजयसिंह ने तीन हजार सेना खीवसर के विद्रोही जोरावरसिंह के ऊपर, जो मरहटों से मिला हुआ था, भेजी थी। जोरावरसिंह ने उस सेना का नाशकर जोधपुर और नागौर का भी बहुत बिगाड किया। तब विजयसिंह ने गजसिंह के पास से सहायता मगवाई।

विजयसिंह की सहायतार्थ खीवसर जाना

गजसिंह के भेजने पर मेहता बख़्तावरसिंह ने समझा बुझाकर जोरावर सिंह को जोधपुर राज्य का बिगाड़ करने से रोक दिया। कुछ ही दिनों बाद उस(जोरावरसिंह)के पुन सिर उठाने पर विजयसिंह ने गजसिंह से स्वय खीवसर आने का आग्रह कर कहलाया कि बिना आपके आये न तो पोकरण अधीन होगा और न जोरावरसिंह ही राह पर आवेगा। तब गजसिंह खीवसर पहुचा, जहा विजयसिंह भी आकर उससे मिल गया। गजसिंह ने जोरावरसिंह को बुलाकर उसके चरणों मे नमा दिया, तब वे दोनों (विजयसिंह और जोरावरसिंह) साथ साथ जोधपुर लौटे[3]।

खीवसर से वापस लौटते समय गाव सवाई मे महाजन के ठाकुर भगवानसिंह एव शिवदानसिंह उसकी सेवा मे उपस्थित हुए। वि० स० १८१५ (ई० स० १७५८) में भीमसिंह की मृत्यु के बाद से अब तक वहा की भूमि का बटवारा नही हुआ

महाजन की जागीर भीम सिंह के पुत्रों में बाटना

(१) ठाकुर बहादुरसिंह लिखित बीदावतों की ख्यात, (जि० १, पृ० २२७) में भी इसका उल्लेख है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६६।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८७ ८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६६।

ठाकुर बहादुरसिंह की 'बीदावतों की ख्यात' (जि० १, पृ० २२७) में भी विजयसिंह की सहायतार्थ गजसिंह का खींवसर जाना लिखा है।

था। सवाई मे रहते समय गजसिंह ने महाजन की जागीर के दो भाग कर दोनों भाइयो मे बाट दिये[1]।

वि० स० १८१६ और १८१७ (ई० स० १७५६ १७६०) के बीच मे भट्टियो तथा जोहियो के उपद्रव मे फिर वृद्धि हुई। हुसेन ने अमीमुहम्मद से भटनेर छीन लिया। इसकी खबर लगते ही महाराजा नौहर गया तथा मेहता बख्तावरसिंह ने साईदासोतो की सेना के साथ उधर प्रस्थान किया। तब हुसेन उससे जा मिला और उसने दोनो का झगडा निबटा दिया[2]।

भट्टी हुसेन पर सेना भेजना

उन्ही दिनो सूचना मिली कि दाउद पुत्रो ने अनूपगढ़ पर अधिकार कर लिया है। इसपर महाराजा ने बीकानेर पहुचकर उनपर आक्रमण करने की तैयारी की। जोधपुर एवं लट्टी के मीर गुलामशाह (मिया गुलाम) की सेनाए भी आकर सम्मिलित हो गई। महाराजा की आज्ञा ले भाटी हिन्दूसिंह खड्ग-सेनोत ने रात्रि के समय ससैन्य मौजगढ़ पर आक्रमण कर वहा के स्वामी मीर हमजा को क़ैद किया तथा गढ को लूटा। हमजा के बीकानेर लाये जाने पर महाराजा ने उसका उचित सत्कार किया और जैमलसर का पट्टा उसके नाम कर दिया। अनन्तर महाराजा ने सेना सहित सुजानसर होते हुए अनूपगढ़ पर चढ़ाई की और विद्रोहियो को मार वहा अपना अधिकार कर लिया। फिर वहा के थाने पर मेहता शिवदानसिंह को नियत कर वह बीकानेर लौट गया। अनन्तर उसने मेहता भीमसिंह को भेजकर पूनियाण का वीरान परगना आबाद कराया[3]।

अनूपगढ तथा मौजगढ पर चढाई

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६७।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८८। पाउलेट, गैज़ेटियर, ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६७।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८८। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६७।

वि० सं० १८१८ (ई० स० १७६१) मे पूगल के रावल ने अपने एक कामदार को मार डाला । इसपर उस(रावल)का पुत्र अमरसिंह उससे अप्रसन्न हो अपने साथ सहित बीकानेर चला गया। अमरसिंह से पेशकशी लेकर गजसिंह ने पूगल की जागीर उसके नाम कर दी । वि० सं० १८१९ (ई० स० १७६२) मे रावत आनन्दसिंह (रावतसर) के देश मे बहुत चोरी चकारी करने पर गजसिंह ने उसके विरुद्ध मेहता बख्तावरसिंह को भेजकर उससे पेशकशी ठहराई[1] ।

पूगल के रावल और रावतसर के रावत को दंड देना

वि० सं० १८२० (ई० स० १७६३) मे मेहता बख्तावरसिंह, जो फिर दीवान बना दिया गया था, उस पद से हटा दिया गया और उसके स्थान मे शाह मूलचद बरडिया की नियुक्ति की। उन्ही दिनो जैसलमेर के रावल मूलराज के भेजे हुए मेहता मानसिंह ने आकर निवेदन किया कि दाउदपुत्रो तथा इख्तियारखा ने नौहर के कोट पर छल से अधिकार कर लिया है, अतएव आप सहायता के लिए पधारिये । गजसिंह ने उसे आश्वासन देकर और चढाई करने के लिए कहकर विदा किया । कुछ ही दिनो बाद समाचार आया कि दाउदपुत्रो तथा इख्तियारखा ने बल्लर मे नगर बसाना आरम्भ कर दिया है। तब शाह मूलचद, साडवे के बीदावत धीरजसिंह[2], भालेरी के राजावत बदनसिंह आदि को बीदावतो की सेना और अपनी १०००० फौज के साथ गजसिंह ने उधर भेजा । उनके अनूपगढ़ पहुचने पर दाउदपुत्रो और जोहियो ने सन्धि की बातचीत की । उनका कहना था कि हम दरबार के चाकर हैं, हम पेशकशी तथा फौज का खर्चा देने के लिए प्रस्तुत हैं, अतएव पट्टा हमारे नाम कर दिया जाय, परन्तु बीकानेर से गये हुए सरदारो ने

जोहियों और दाउद पुत्रो से लड़ाई

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८८ । पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६७ ।

(२) ठा० बहादुरसिंह लिखित 'बीदावतों की ख्यात' में धीरतसिंह नाम दिया है ।

यह स्वीकार न किया। तब जोहिये निराश होकर लौट गये और उन्होंने युद्ध करने का निश्चय किया। बीकानेरवाले उनकी ओर से गाफिल पड़े थे, इसलिए जब दूसरे दिन जोहियों ने तीन हजार फौज के साथ आक्रमण किया तो उन्हें जान बचाकर गढ़ में घुसना पड़ा। इस लड़ाई में धीरजसिंह, वदनसिंह, सरदारसिंह तथा बहुत से दूसरे बीकानेर के सरदार और सैनिक काम आये और उनके खेमे भी जोहियों ने लूट लिये। ऐसी दशा में बाध्य होकर शाह मूलचन्द को उनसे मेल की बात करनी पड़ी। अनन्तर जोहिये गढ से हट गये और मूलचन्द वहां अधिकार कर बीकानेर लौट गया[1]।

वि० सं० १८२१ (ई० स० १७६४) में गजसिंह ने अपनी पौत्री के विवाह के नारियल महाराजा माधोसिंह के कुंवर पृथ्वीसिंह के लिए जयपुर भेजे।

कुछ सरदारों से नाराजगी होना

उसी वर्ष गजसिंह ने बहुत से सरदारों को दरबार में बुला लिया। खुमाण (राव गणेशदास का पोता) तथा सूरसिंह (पूगल का भाटी) में वैर होने से खुमाण ने सूरसिंह को मार डाला और उपर्युक्त सरदारों के यहां जा रहा। बाद में गजसिंह के कहने से सरदारों को उसे दरबार को सौंप देना पड़ा, परन्तु उस कार्य से सरदार उससे अप्रसन्न हो गये। बल्लर के जोहियों ने इस बीच कोई उत्पात न किया और नौ हजार रुपये गजसिंह की सेवा में भेजे तथा अपने पिछले अपराधों के लिए क्षमा याचना करा ली[2]।

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८९। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६७-८। ठाकुर बहादुरसिंह, बीदावतों की ख्यात, जि० १, पृ० २२८।

बीदावतों की ख्यात से पाया जाता है कि अपने पदच्युत किये जाने एवं मूलचंद के अपने स्थान पर दीवान बनाये जाने से बख्तावरसिंह मूलचंद का दुश्मन बन गया था और उसी की साजिश से बीकानेर की इस विशाल सेना की केवल तीन हज़ार सेना के हाथों पराजय हुई।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८९। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८।

बख़्तावरसिंह को पुन दीवान बनाना

वि० स० १८२२ (ई० स० १७६५) में पडिहार दौलतराम तथा पुरोहित जग्गू के बीच मे पड़ने से गजसिंह ने बख़्तावरसिंह को पुन दीवान के पद पर नियुक्त कर दिया[1]।

राजगढ़ बसाने का निश्चय तथा अजीतपुर के ठाकुर को दड देना

जिन दिनो गजसिंह बड़ी लुदी मे ठहरा हुआ था, उसने अपने महाराजकुमार राजसिंह के नाम पर एक नगर 'राजगढ़' बसाने का विचार किया। इस काम के लिए उसने स्वय स्थान का निर्वाचन किया। उन्ही दिनो छानी और अजीतपुरा आदि के झुरड (जाट) चोरी आदि कर वहा का बहुत नुक़सान करते थे। अनूपपुर मे डेरे होने पर गजसिंह ने उन्हे अलग अलग अपने पास बुलाकर उनमे फूट पैदा कर दी, जिससे वे रातो रात उस स्थान को छोडकर चले गये। उन्हे आश्रय देने का सन्देह ठाकुर दीपसिंह पर था, जिससे गजसिंह ने दड का २००० रुपया वसूल किया[2]।

विजयसिंह के जाटों से मिल जाने के कारण माधोसिंह का पक्ष ग्रहण करने का निश्चय

वि० स० १८२४ (ई० स० १७६७) मे जब गजसिंह बीकानेर मे था, महाराजा माधोसिंह (जयपुर) के पास से किशनदत्त ने आकर निवेदन किया कि महाराजा विजयसिंह (जोधपुर) ने पुष्कर मे भरतपुर के राजा जवाहरमल जाट से मेल स्थापित कर लिया है, यदि वह (जवाहरमल) जयपुर की सीमा से गुजरा तो हमारे महाराजा उसे बढ़ने से रोकेगे। इसी समय विजयसिंह के पास से व्यास गुलाबराय ने आकर निवेदन किया कि जोधपुर की भरतपुर के साथ की सन्धि के कारण आमेर (आबेर) वाले लडाई करना चाहते हैं, अतएव आप सहायता करे। इसपर गजसिंह ने यह उत्तर देकर उसे विदा किया कि इतना बडा कार्य करते समय मुझ से

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६८।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ८६-६०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६८।

राय न लेने के कारण मैं माधोसिंह का पक्ष लूगा, परन्तु मैं ऐसा प्रयत्न करूगा, जिससे जोधपुर का भी बिगाड न हो। विजयसिंह ने दूसरी बार फिर आदमी भेजकर आग्रह करवाया, परन्तु गजसिंह ने कुछ ध्यान न दिया[1]।

माधोसिंह की सहायतार्थ सेना भेजना एव उसके स्वर्गवास होने पर मेड़ते जाना

वि० स० १८२३ (ई० स० १७६६) मे राजगढ़ की नीव रखने के पश्चात् जब गजसिंह चूरू मे ठहरा हुआ था तो महाराजा माधोसिंह की तरफ से सहायता की प्रार्थना आई। इसपर उसने फतहपुरी गिरधारीलाल को जयपुर भेजा। फिर भरतपुर के राजा जवाहरमल तथा महाराजा माधोसिंह की मावडे मे बड़ी लडाई हुई, जिसमे भरतपुरवालों को रणक्षेत्र छोडकर भागना पडा। तब विजयसिंह के पास से आदमी पुन सहायता मागने के लिए आये, परतु गजसिंह, उनसे यह कहकर कि बीकानेर जाकर इसपर विचार करेंगे, अपने देश लौट गया। वहा माधोसिंह के आदमी २५००० रुपये मार्ग-व्यय का लेकर उसकी सेवा में उपस्थित हुए। दोनों मे से किसका साथ देना और किसका न देना यह एक जटिल प्रश्न था, इसलिए गजसिंह कुछ दिनो तक टालम टूल करता रहा। इसी बीच फाल्गुन मास में माधोसिंह के स्वर्गवास हो जाने का समाचार उसके पास पहुचा। तब सान्त्वना सूचक बाते जयपुर मे आदमी भेजकर कहलाने के अनन्तर, गजसिंह ने जोधपुर की ओर प्रस्थान किया, परन्तु मेड़ते मे विजयसिंह से मिलकर वह शीघ्र ही वि० स० १८२५ आषाढ सुदि ६ (ई० स० १७६८ तारीख २३ जून) को बीकानेर लौट गया[2]।

उसी वर्ष उसने अमीरमुहम्मद के पुत्र कमरुद्दीन जोहिया को बख्तावरसिंह की मारफत सिरसा और फतेहाबाद का परवाना देकर भेजा।

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६०। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०६। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६८।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६०। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६८ ६।

सिरसा और फतेहाबाद पर सेना भेजना तथा पौत्री का विवाह

उसके साथ मेहता जैतरूप भी गया था, जो वहां उसका अधिकार कराके लौट आया। वि० सं० १८२७ (ई० स० १७७०) में उस (गजसिंह) की एक पौत्री का विवाह जयपुर के महाराजा पृथ्वीसिंह के साथ बड़ी धूम धाम से सम्पन्न हुआ। बरात के साथ अलवर राज्य का संस्थापक माचेड़ी का राव प्रतापसिंह भी था[1]।

गोड़वाड़ के संबंध में गजसिंह का समझौते का प्रयत्न

उदयपुर के महाराणा राजसिंह (दूसरा) की निःसन्तान मृत्यु होने के समय उसकी झाली राणी गर्भवती थी, पर उसने अरिसिंह (महाराणा जगतसिंह द्वितीय का दूसरा पुत्र) के भय से सरदारों के पूछने पर कहला दिया कि उसके गर्भ नहीं है। इसपर सरदारों ने अरिसिंह को ही वि० सं० १८१७ चैत्र वदि १३ (ई० स० १७६१ ता० ३ अप्रेल) को मेवाड़ की गद्दी पर बैठाया। महाराणा अरिसिंह स्वभाव का बहुत तेज और क्रोधी था। उसने गद्दी पर बैठते ही सरदारों का अपमान किया, जिससे वे उसके विरोधी हो गये। इसी बीच झाली राणी के गर्भवती होने का हाल कुछ कुछ प्रकट हो गया था। कुछ समय बाद उसके रत्नसिंह नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी उसके मामा (गोगूंदे के स्वामी) जसवंतसिंह ने परवरिश की। सरदार महाराणा से अप्रसन्न तो थे ही, अब वे उसे पदच्युत कर रत्नसिंह को गद्दी बैठाने का उद्योग करने लगे। महाराणा ने यह अवस्था देखकर दमन नीति से काम किया, पर इसका परिणाम उलटा ही हुआ। बीच में और कई घटनायें ऐसी हुईं, जिनसे सरदारों का विरोध अधिक बढ़ गया और उन्होंने मरहटों से सहायता ली। माधवराव सिंधिया ने विद्रोही सरदारों की सहायता कर चिप्रा नदी के निकट महाराणा के सैन्य को पराजित किया। रत्नसिंह अधिक दिनों तक जीवित न रहा और सात वर्ष की अवस्था में उसका शीतला रोग से देहांत हो गया।

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ९० १। वीरविनोद, भाग २, पृ० ८०६ ७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६६।

इसपर विद्रोही सरदारों ने उसी अवस्था के एक दूसरे बालक को रत्नसिंह घोषित कर महाराणा को पदच्युत करने का अपना प्रयत्न जारी रक्खा। उनके सहायक माधवराव ने उदयपुर को घेर लिया, परन्तु नगर का समुचित प्रबन्ध होने के कारण छ मास तक घेरा रहने पर भी वह वहा अधिकार न कर सका। इधर उदयपुर मे भोजन सामग्री का अभाव होने लगा, जिससे उदयपुरवालो ने सन्धि की चर्चा छेडी। माधवराव भी यही चाहता था। अन्त में ६३½ लाख रुपये लेकर उसने घेरा उठा लिया। इस अवसर पर किये गये शर्तनामे के अनुसार रत्नसिंह का मन्दसोर मे रहना निश्चित होकर महाराणा ने उसके लिए ७५००० रुपये आय की जागीर निकाल दी, पर वह (रत्नसिंह) मन्दसोर मे जाकर न रहा। इसके विपरीत वह तथा विद्रोही सरदार महापुरुषो[1] की फौज के साथ मेवाड में लूट मार करने लगे। महाराणा ने यह खबर पाकर विद्रोहियों को हराकर भगा दिया। एक साल तक शान्त रहने के अनन्तर वे (विद्रोही) पुन उत्पात करने लगे। रत्नसिंह का कुभलगढ पर अधिकार था और वहा रहकर वह मेवाड के गोडवाड़ जिले पर भी अधिकार करने का प्रयत्न करने लगा। इसपर महाराणा ने अपने काका बाघसिंह को दूसरे कई सरदारो और सेना के साथ उधर भेजा। उन्होने विद्रोहियो पर विजय तो प्राप्त की पर कुभलगढ पर रत्नसिंह का ही अधिकार बना रहा।

महाराज बाघसिंह ने गोडवाड से रत्नसिंह का अधिकार उठाकर लौटने पर महाराणा अरिसिंह से निवेदन किया कि गोड़वाड़ पर अधिकार रखने के लिए वहा सदा सेना रखना जरूरी है। इसपर महाराणा ने जोधपुर के राजा विजयसिंह को लिखा कि रत्नसिंह को दबाने के लिए तीन हजार सेना कुछ दिनों के लिए नाथद्वारे मे रख लो और जब तक वह

(१) ये दादूपन्थी साधु थे, जो जयपुर की सेवा में बड़ी सख्या में रहते थे और वहीं से रत्नसिंह के पक्षवाले उन्हें मेवाड़ में लाये थे। इनको महापुरुष भी कहते हैं। अब तक ये जयपुर की सेना में किसी क़दर विद्यमान हैं। ये लोग विवाह नहीं करते।

सेना वहां रहे तब तक उसके वेतन के लिए गोड़वाड़ की आय लेते रहो, परन्तु वहां के सरदार हमारे ही अधीन रहेंगे। इसपर महाराजा ने लिखा कि आमतौर से २०० सवार तथा ५०० सिपाही रहेंगे और लड़ाई के समय ३००० सेना पूरी कर दी जायगी। अनन्तर विजयसिंह ने नाथद्वारे में सेना भेजकर गोड़वाड़ अपने अधिकार मे कर लिया, परन्तु रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालने का प्रयत्न न किया। महाराणा के कई वार लिखने पर भी जब उसने न माना तो उसने उसको गोड़वाड़ का परगना छोड देने के लिए लिखा, परन्तु विजयसिंह ने इसे भी टाल दिया। वि० सं० १८२८ माघ (ई० स० १७७२ फरवरी) में महाराजा विजयसिंह, बीकानेर का महाराजा गजसिंह और कृष्णगढ़ का राजा बहादुरसिंह तीनों नाथद्वारे गये तथा महाराणा भी वहां पहुंचा। गोडवाड की चर्चा छिडने पर महाराजा गजसिंह ने महाराजा विजयसिंह को गोडवाड का परगना छोड देने के लिए समझाया, परन्तु उसने लालच मे आकर अपने वचन के विरुद्ध छोडना स्वीकार न किया। तब अपना समय व्यर्थ गवाना उचित न समझ गजसिंह ने वहां से प्रस्थान करने का निश्चय किया[1]। इस समय विजयसिंह के देश में रीयां का जालिमसिंह बहुत बिगाड़ करता था। विजयसिंह के निवेदन करने पर गजसिंह ने दोनों में समझौता करा दिया और वहां से बीकानेर लौट गया[2]।

बीकानेर पहुंचने पर उसे पता चला कि रावतसर का अमरसिंह उत्पात करने लगा है तब वह (अमरसिंह) क़ैद किया जाकर नेतासर भेज दिया गया, परन्तु थोड़े ही दिन बाद वह वहां से निकल भागा और रावतसर में बिगाड़ करने लगा। इसपर गजसिंह ने स्वयं उधर प्रस्थान किया, परन्तु थानसिंह के पुत्र देवीसिंह आदि बीदावतों के वह काम अपने हाथ में ले

विद्रोही ठाकुरों पर सेना भेजना

(१) मेरा, राजपूताने का इतिहास, जि० २, पृ० ९७०।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ९२३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७०।

लेने पर वह फिर लौट गया[1]। अनन्तर बीकमपुर के राव बाकीदास ने उसकी सेवा में उपस्थित हो निवेदन किया कि बारू तथा टेकरे के स्वामी देश में बड़े उपद्रव कर रहे हैं। इसपर बीदावतों आदि की सेना के साथ गजसिंह ने मेहता बख़्तावरसिंह को उधर भेजा, जिसने टेकरे के गढ़ पर अधिकार कर उसमें निवास करनेवाले साठ लुटेरों को मार डाला[2]। इसी समय बारू के मालदोतों ने उसके पास उपस्थित हो पेशकशी देनी ठहराई[3]।

भट्टियों का फिर विद्रोह करना

वि० सं० १८३० (ई० स० १७७३) में भट्टी पुनः विद्रोही हो गये। गजसिंह ने उनका दमन करने के लिए सेना भेजी, तब भट्टी मुहम्मदहुसेनखां उसकी सेवा में उपस्थित हो गया और ४०००० रुपये पेशकशी एवं प्रतिवर्ष आधी पैदावार दरबार को देने की शर्त पर उसने संधि कर ली। इस सम्बन्ध में देख रेख करने के लिए राजपुरे में राज्य की ओर से एक चौकी स्थापित कर दी गई[4]।

राजसिंह के विद्रोह में बख़्तावरसिंह की गुप्त सहायता

मेहता बख़्तावरसिंह की अपनी स्त्री और पुत्रों से अनबन रहा करती थी, अतएव जब उसने एक कुआँ बनवाया तो उसकी प्रतिष्ठा के समय उसने अपनी स्त्री को साथ लेने से इनकार कर दिया। इसपर उसके पुत्रों ने गजसिंह से इस बात की शिकायत की, जिसके चेतावनी देने पर बाध्य होकर मेहता को अपनी स्त्री को भी इस पुण्यकार्य

(१) ठाकुर बहादुरसिंह लिखित बीदावतों की ख्यात, (पृ० २३६) में भी इसका उल्लेख है।

(२) ठा० बहादुरसिंह, बीदावतों की ख्यात, पृ० २३६-७।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७१।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६३। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७१।

म सम्मिलित करना पड़ा, परन्तु गजसिंह के इस दबाव का परिणाम उलटा ही हुआ। बख्तावरसिंह भीतर ही भीतर उसके विरुद्ध आचरण करने लगा और गुप्त रूप से महाराजकुमार राजसिंह का, जो उन दिनों विद्रोही हो रहा था[1], सहायक बन गया। राजसिंह के इस विद्रोह मे नवलसिंह शेखावत (नवलगढ, शेखावाटी का) चूरू का ठाकुर हरीसिंह, कुछ बीदावत तथा कुछ भाटी आदि उसके पक्ष में थे। इनमें से दूसरो ने तो क्रमश उसका साथ छोड दिया, परन्तु हरीसिंह अन्त तक उसके साथ बना रहा। अत में दोनों विद्रोही देशणोक करणीजी की शरण मे जा रहे, जहा उन्होंने वि० स० १८३२से १८३७ (ई० स० १७७५ से १७८०) तक निवास किया[2]।

बख्तावरसिंह की मृत्यु पर उसके पुत्र का दीवान होना

वि० स० १८३६ (ई० स० १७७९) मे बख्तावरसिंह का देहात होने पर उसका पुत्र मेहता स्वरूपसिंह उसके स्थान मे बीकानेर का दीवान हुआ। कोठारी सावतसिंह से उसका कुछ बैर था, जिससे कोठारी ने गजसिंह के पास झूठी शिकायत की कि स्वरूपसिंह गुप्त रीति से महाराजकुमार राजसिंह की सहायता करता है और देशणोक में उसके पास पूरा पूरा हाल पहुचाता रहता है। स्वरूपसिंह को यह बात ज्ञात होने पर उसने राजसिंह को सूचित किया, जिसने इसका खडन किया और साथ ही असत्य का आश्रय लेनेवाले कोठारी को मौत के घाट उतारने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए उसने अपने चार राजपूतों को नियुक्त किया, जिन्होंने वि० स० १८३७ (ई० स० १७८०) में एक दिन, जब वह दरबार से घर लौट रहा था, उसपर आक्रमण कर उसे मार डाला[3]।

---

(१) वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०७।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ९३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७१।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ९३, ४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७१।

वि० स० १८३८ (ई० स० १७८१) में कुवर राजसिंह देशणोक से जोधपुर चला गया, जहा विजयसिंह ने उसको बडे सत्कार पूर्वक रक्खा[1]।

कुवर राजसिंह का जोधपुर जाकर रहना

• महाराजा सुजानसिंह के समय वि० स० १७६१ (ई० स० १७३४) मे जब नापा के वशज एक साखला ने बीकानेर का गढ बख्तसिंह को दिला देने का षड्यन्त्र रचा था, तब उसके साथ गोवर्धनदास नाम का पुरोहित भी था। षड्यन्त्र विफल होने पर वह (गोवर्धनदास) भागकर नागौर चला गया था, जहा बख्तसिंह ने उसे दो गाव निर्वाह के लिए दे दिये। अब महाराजा विजयसिंह के राज्यकाल म वह नागौर का हाकिम नियुक्त हो गया था। कुवर राजसिंह के जोधपुर निवास के समय मे उसने बीकानेर के महाराजा गजसिंह के पास इस आशय की एक अर्जी लिख भेजी कि यदि मेरे पहले के अपराध क्षमा कर दिये जाव तो मैं ५५५ गावो के साथ नागौर आपको दिला दू। गजसिंह एक धर्मनिष्ठ एव मैत्री को अन्त तक निबाहनेवाला व्यक्ति था, उसने तत्काल यह अर्जी विजयसिंह के पास भेज दी, जिसने गोवर्धनदास को बुलाकर जवाब तलब किया और अन्तत उसे पदच्युत कर दिया[2]।

पुरोहित गोवर्धनदास का नागौर दिलाने के लिए गजसिंह को लिखना

वि० स० १८४२ (ई० स० १७८५) में गजसिंह के पत्र लिखने पर विजयसिंह ने अपने बहुत से सैनिकों को साथ देकुवर राजसिंह को बीकानेर विदा किया। गजसिंह ने स्वय तो उसका स्वागत न किया, परन्तु अपने दूसरे पुत्रों—सुलतानसिंह,

गजसिंह का राजसिंह को बुलाकर क़ैद करवाना

'बीदावतों की ख्यात' (पृ० २३७) में इसका उल्लेख है, परन्तु समय (वि० स० १८३२) गलत दिया है।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२।

अजबसिंह और मोहकमसिंह—को भेजकर सीढ़िया चढ़ते समय उसे क़ैद करवा दिया। जोधपुर से साथ आये हुए सरदारों ने लड़ाई करनी चाही, परन्तु विजयसिंह ने यह कहलाकर उन्हें वापस बुला लिया कि वह गजसिंह का कुंवर है और वह जो चाहे सो उसके साथ करे[1]। इसी वर्ष महाराजा ने बीकानेर के दुर्ग का दक्षिण की तरफ़ का प्राकार (जलेबकोट) नवीन बनवाकर शत्रुओं से और भी उसे सुरक्षित किया।

विवाह और संतति

ख्यातों में गजसिंह के ६ राणिया होना लिखा है, जिनमें से कुछ का उल्लेख ऊपर आ चुका है। उसके अट्ठारह पुत्र—राजसिंह, सूरतसिंह, छत्रसिंह, श्यामसिंह, अजबसिंह, मोहकमसिंह, रामसिंह, गुमानसिंह, सबलसिंह, भोपालसिंह, जगतसिंह, खुमाणसिंह, मोहनसिंह, उदयसिंह, जालिमसिंह, सुलतानसिंह, देवीसिंह और खुशहालसिंह—हुए[2]।

मृत्यु

कुछ ही दिनों बाद महाराजा गजसिंह रोगग्रस्त हो गया। दिन दिन बीमारी बढ़ने के कारण उसने कुंवर राजसिंह को कैद से मुक्तकर अपने समक्ष बुलाया और कहा कि अपने भाइयों को दुःख मत देना तथा अपनी जीवितावस्था में ही अपने सारे सरदारों को बुलाकर राज्य कार्य उसके सुपुर्द कर दिया[3]। इसके ४ दिन बाद वि० सं० १८४४ चैत्र सुदि ६ (ई० स० १७८७ ता० २५ मार्च) रविवार को गजसिंह का देहावसान हो गया[4]।

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७२।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६४। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०७। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७२।

(३) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७२।

(४) अथास्मिन् शुभसंवत्सरे श्रीविक्रमादित्यराज्यात् संवत् १८४४ वर्षे शाके १७०६ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमेमासे चैत्रमासे शुभे शुक्ले पक्षे षष्ठ्या रविवासरे भूमंडलाखंडलः श्रीमन्महा-

महाराजा गजसिंह की योग्यता और चतुरता देखकर ही सरदारों ने, बड़े भाइयों के रहते हुए भी महाराजा जोरावरसिंह के निःसन्तान मरने पर उसे ही बीकानेर का शासक नियत किया। वह वीर, राजनीतिज्ञ, प्रजापालक, मैत्री को निबाहने-वाला, स्पष्टवक्ता, कवि और साहित्यानुरागी[1] था।

महाराजा गजसिंह का व्यक्तित्व

राजाधिराज श्रीगजसिंहजीवर्मा वैकुंठ लोक प्राप्त ।

[गजसिंह की स्मारक छत्री के लेख से]।

दयालदास की ख्यात (जि० २, पत्र ६४), वीरविनोद (भाग २, पृ० ५०७) आदि में भी गजसिंह की मृत्यु का यही समय दिया है।

(१) १—महाराजा गजसिंह के राज्यकाल मे चारण गाडण गोपीनाथ ने 'ग्रन्थराज अथवा महाराजा गजसिंघजी रौ रूपक' नामक काव्यग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ महाराजा गजसिंह की प्रशसा मे लिखा गया था। इसमें उक्त महाराजा तक उसके पूर्वजो की वशावली दी है, जिनमें से कई नरेशों के राज्यकाल की घटनाओं का विशद विवरण है। महाराजा गजसिंह के समय की जोधपुर के साथ की वि० स० १८०७ तक की लड़ाइयो का इसमे हाल है। इस ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार के छन्दो का समावेश है, जो इसके रचयिता की योग्यता प्रकट करते है। इस ग्रन्थ की रचना वि० स० १८०३ मे प्रारम्भ हुई थी (टेसिटोरी, ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्, सेक्शन १, पार्ट २, पृ० ३४ ४० बीकानेर स्टेट,)। दयाल दास की ख्यात से पाया जाता है कि महाराजा गजसिह के रिणी में रहते समय उक्त चारण ने यह ग्रन्थ उसे भेट किया था, जिसने उस(चारण)को दो हज़ार रुपये, हाथी, घोड़ा, सिरोपाव आदि पुरस्कार मे दिये (जि० २, पत्र ७७)।

२—उस(महाराजा गजसिंह)के समय में ही सिंढायच फ़तेराम ने भी 'महा राजा गजसिंघ रौ रूपक' नामक काव्यग्रन्थ की रचना की। इसमें राव सीहा से लगाकर महाराजा गजसिंह तक बीकानेर के नरेशों की वशावली दी है। इसमें गजसिंह के राज्य समय की अन्य घटनाओं के अतिरिक्त वि० स० १८०४ की भडारी रत्नचद की अध्यक्षता में जोधपुर की बीकानेर पर की चढ़ाई का वर्णन है (टेसिटोरी, ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् दि बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्, सेक्शन २, पार्ट १, पृ० ८२ बीकानेर स्टेट)।

३—सिंढायच फ़तेराम ने एक दूसरा काव्यग्रन्थ 'महाराजा गजसिंघजी रा

उसका सम्बन्ध अपने राज्यभक्त सरदारों के साथ बडा अच्छा था। जहा वह वीरो का आदर करने में प्रयत्नशील रहता था, वहा राज्य विरोधी आचरण करनेवाले लोगों के साथ वह बडी बुरी तरह से पेश आता था। उपद्रवी बीदावत सरदारों को उसने जान से मरवाने में जरा भी आनाकानी न की। स्वयं अपने ज्येष्ठ कुंवर राजसिंह के विद्रोही हो जाने पर उसने सन्तान की ममता त्यागकर उसे बन्दीखाने म डलवा दिया। इसके साथ ही उसका हृदय आर्द्र भी कम न था। क्षमाप्रार्थी विद्रोही सरदारों को उसने सदैव क्षमा करके ही अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया। मित्र का क्या कर्तव्य होना चाहिये इससे वह सुपरिचित था और इस पवित्र शब्द को कलंकित करने का उसने कभी कोई कार्य नहीं किया। जोधपुर की उसने धन और जन दोनो से सहायता की। अवसर पडने पर जयपुर को भी उसने सहायता पहुचाई, परन्तु जयपुर के स्वामी माधोसिंह की नीयत जब उसने जोधपुर क विजयसिंह की तरफ साफ न देखी तब वह उसके खिलाफ हो गया।

शाही दरबार में वह स्वय कभी न गया, इतना होने पर भी बादशाह की नजरो में उसका सम्मान ऊचे दरजे का था। उसका मनसब सात हजारी था और उसे बादशाह की तरफ से सर्वप्रथम "श्रीराजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजाशिरोमणि" का खिताब और 'माही मरातिब' का सम्मान भी मिला था।

प्रजा के कष्टों की ओर से वह कभी उदासीन नहीं रहता था। वि० सं० १८१२ (ई० स० १७५५) में भयङ्कर दुर्भिक्ष पडने पर उसने क्षुधात्रस्त लोगों को कार्य देकर सहारा दिया। इस अवसर पर इमारतों आदि के बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया, जिससे बहुतसे लोगों को कार्य मिला। बीकानेर की शहरपनाह भी इसी समय बनी थी।

गीत कवित्त दूहा' नामक भी लिखा था, जो बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है (टेसिटोरी, ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् दि बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स, सेक्शन २, पार्ट १, पृ० ८३ बीकानेर स्टेट)।

उसने उचित करों के द्वारा राज्य की आमदनी बढाने की चेष्टा की और जहा तक सभव हो सका प्रजा को सुख पहुचाते हुए राज्य का शासन किया। राजपूताने के अन्य राज्यो मे उसका बडा सम्मान था और जब कभी कोई झगड़ा होता तो उसको मध्यस्थ बनाकर झगड़ा मिटाने का उद्योग किया जाता था।

मुशी देवीप्रसाद ने उसके सम्बन्ध मे लिखा है—"महाराजा गजसिंह भी कवि थे। भजन खूब बनाते थे और कविता भी करते थे। इनकी कविता का एक गुटका बीकानेर के पुस्तकालय मे है[1]।"

महाराजा राजसिंह

महाराजा राजसिंह का जन्म वि० स० १८०१ कार्तिक वदि २ (ई० स० १७४४ ता० १२ अक्टोबर) को हुआ था और पिता की उत्तर क्रिया आदि समाप्त कर वि० स० १८४४ वैशाख वदि २ (ई० स० १७८७ ता० ४ अप्रेल) को वह बीकानेर की गद्दी पर बैठा[2]।

जन्म तथा गद्दीनशीनी

ख्यातो मे केवल इतना ही लिखा मिलता है कि महाराजा गजसिंह की दग्ध क्रिया हो जाने के बाद देवीकुड से ही उसके भाई सुलतानसिंह[3],

(१) राजरसनामृत; पृ० ५० ।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७१। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०७-८।

(३) दयालदास ने अपनी ख्यात में सुलतानसिंह को महाराजा गजसिंह का पन्द्रहवा पुत्र लिखा है, परन्तु पाउलेट के गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट में, ताज़ीमी राजवी ठाकुर और ख़वासवालों की पुस्तक मे तथा अन्य जगह उसे गजसिंह का दूसरा पुत्र लिखा है। सुलतानसिंह बीकानेर से जोधपुर और वहा से उदयपुर गया था, जहा महाराणा भीमसिंह ने उसे जागीर देकर अपने यहा रक्खा। मेवाड़ मे रहते समय उसने अपनी पुत्री पद्मकुवरी का उक्त महाराणा से विवाह किया था, जिसने पीछोला तालाब के तट पर भीमपद्मेश्वर नामक शिवालय बनवाया। उक्त शिवालय की प्रशस्ति में उसके पितृपक्ष की महाराजा रायसिंह से लगाकर गजसिंह तक की वशावली दी

उसका सम्बन्ध अपने राज्यभक्त सरदारों के साथ बड़ा अच्छा था। जहां वह वीरों का आदर करने में प्रयत्नशील रहता था, वहां राज्य विरोधी आचरण करनेवाले लोगों के साथ वह बड़ी बुरी तरह से पेश आता था। उपद्रवी बीदावत सरदारों को उसने जान से मरवाने में जरा भी आनाकानी न की। स्वयं अपने ज्येष्ठ कुंवर राजसिंह के विद्रोही हो जाने पर उसने सन्तान की ममता त्यागकर उसे बन्दीख़ाने में डलवा दिया। इसके साथ ही उसका हृदय आर्द्र भी कम न था। क्षमाप्रार्थी विद्रोही सरदारों को उसने सदैव क्षमा करके ही अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया। मित्र का क्या कर्तव्य होना चाहिये इससे वह सुपरिचित था और इस पवित्र शब्द को कलंकित करने का उसने कभी कोई कार्य नहीं किया। जोधपुर की उसने धन और जन दोनों से सहायता की। अवसर पड़ने पर जयपुर को भी उसने सहायता पहुंचाई, परन्तु जयपुर के स्वामी माधोसिंह की नीयत जब उसने जोधपुर के विजयसिंह की तरफ साफ़ न देखी तब वह उसके ख़िलाफ़ हो गया।

शाही दरबार में वह स्वयं कभी न गया, इतना होने पर भी बादशाह की नज़रों में उसका सम्मान ऊंचे दरजे का था। उसका मनसब सात हज़ारी था और उसे बादशाह की तरफ़ से सर्वप्रथम "श्रीराजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजाशिरोमणि" का ख़िताब और 'माही मरातिब' का सम्मान भी मिला था।

प्रजा के कष्टों की ओर से वह कभी उदासीन नहीं रहता था। वि० सं० १८१२ (ई० स० १७५५) में भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ने पर उसने क्षुधात्रस्त लोगों को कार्य देकर सहारा दिया। इस अवसर पर इमारतों आदि के बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया, जिससे बहुत से लोगों को कार्य मिला। बीकानेर की शहरपनाह भी इसी समय बनी थी।

गीत कवित्त दूहा' नामक भी लिखा था, जो बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है (टेसिटोरी, ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् दि बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स, सेक्शन २, पार्ट १, पृ० ८३ बीकानेर स्टेट)।

उसने उचित करों के द्वारा राज्य की आमदनी बढाने की चेष्टा की और जहा तक सभव हो सका प्रजा को सुख पहुचाते हुए राज्य का शासन किया। राजपूताने के अन्य राज्यो मे उसका बडा सम्मान था और जब कभी कोई झगड़ा होता तो उसको मध्यस्थ बनाकर झगडा मिटाने का उद्योग किया जाता था।

मुशी देवीप्रसाद ने उसके सम्बन्ध मे लिखा है—"महाराजा गजसिंह भी कवि थे। भजन खूब बनाते थे और कविता भी करते थे। इनकी कविता का एक गुटका बीकानेर के पुस्तकालय मे है[1]।"

महाराजा राजसिंह

महाराजा राजसिंह का जन्म वि० स० १८०१ कार्तिक वदि २ (ई० स० १७४४ ता० १२ अक्टोबर) को हुआ था और पिता की उत्तर क्रिया आदि समाप्त कर वि० स० १८४४ वैशाख वदि २ (ई० स० १७८७ ता० ४ अप्रेल) को वह बीकानेर की गद्दी पर बैठा[2]।

जन्म तथा गद्दीनशीनी

ख्यातो में केवल इतना ही लिखा मिलता है कि महाराजा गजसिंह की दग्ध क्रिया हो जाने के बाद देवीकुड से ही उसके भाई सुलतानसिंह[3],

(१) राजरसनामृत; पृ० ५०।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६४। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२। वीरविनोद, भाग २, पृ० ५०७ ८।

(३) दयालदास ने अपनी ख्यात में सुलतानसिंह को महाराजा गजसिंह का पन्द्रहवा पुत्र लिखा है, परन्तु पाउलेट के गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट में, ताज़ीमी राजवी ठाकुर और ख़वासवालों की पुस्तक मे तथा अन्य जगह उसे गजसिंह का दूसरा पुत्र लिखा है। सुलतानसिंह बीकानेर से जोधपुर और वहा से उदयपुर गया था, जहा महाराणा भीमसिंह ने उसे जागीर देकर अपने यहा रक्खा। मेवाड़ मे रहते समय उसने अपनी पुत्री पद्मकुवरी का उक्त महाराणा से विवाह किया था, जिसने पीछोला तालाब के तट पर भीमपद्मेश्वर नामक शिवालय बनवाया। उक्त शिवालय की प्रशस्ति में उसके पितृपक्ष की महाराजा रायसिंह से लगाकर गजसिंह तक की वशावली दी

महाराजा के भाई सुल्तान-सिंह आदि का बीकानेर छोड़कर जाना

मोहकमसिंह[1] और अजबसिंह[2] जोधपुर चले गये। स्वयं बीमार रहने के कारण महाराजा ने राज्य कार्य मनसुख नाहटा को सौंप दिया था। उस(राजसिंह)के एक भाई सूरतसिंह ने उसकी गिरफ्तारी के समय कोई भाग नहीं लिया था, अतएव वह बीकानेर में ही बराबर राज्य कार्य में भाग लेता रहा।

इक्कीस दिन राज्य करने के पश्चात् वि० सं० १८४४ वैशाख सुदि ८[3]

है, जिसमें उसको सूरतसिंह का कनिष्ठ भाई लिखा है—

तस्माच्छ्रीगजसिंहभूपतिमहाराजान्ववायोभ्यभू-
त्तस्मात्सूरतसिंहइन्द्रविभवो राठौडवंशैकभू ।
तद्भ्राता सुरतानसिंह इति य कनिष्ठो भवत्
तज्जा पद्मकुमारिकेयमतुला श्रीभीमसिंहप्रिया ॥ २४ ॥

सुलतानसिंह के पुत्र गुमानसिंह और अखैसिंह के बीकानेर जाने पर महाराजा रत्नसिंह ने गुमानसिंह को बणेसर और अखैसिंह को आलसर की जागीर दी, जिसके वंशज बीकानेर राज्य के दूसरे दर्जे के राजवियों में हैं और राजवी हवेलीवाले कहलाते हैं।

(१) मोहकमसिंह के वंशजों के पास साईंसर का ठिकाना है और राजवी हवेलीवाले कहलाते हैं। उनकी गणना दूसरे दर्जे के राजवियों में है।

(२) जोधपुर में अजबसिंह के लोहावट की जागीर थी। वहां से वह जयपुर गया, जहां उसे जागीर मिली। अजबसिंह का पुत्र फतेसिंह और उसका दुलहसिंह हुआ। देशदर्पण में लिखा है कि वि० सं० १९१७ में बणेसर के राजवी पन्नेसिंह के एक पुत्र को दुलहसिंह ने निःसंतान होने से दत्तक लिया था।

(३) • अथास्मिन् शुभसंवत्सरे १८४४ वर्षे शाके १७०९ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमे मासे वैशाखमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ अष्टम्यां परतो नवम्यां बुधवासरे महाराजाधिराजमहाराजश्रीराजसिंहजीवर्मा एकेन परिचारकेन सह दिवं प्राप्त •

महाराजा राजसिंह के स्मारक लेख से।

महाराजा का देहांत

(ई० स० १७८७ ता० २५ अप्रेल) को महाराजा राजसिंह का देहांत हो गया[1] ।

---

(१) महाराजा राजसिंह की मृत्यु के विषय मे भिन्न भिन्न प्रकार से लिखा मिलता है—

कर्नल टॉड का कथन है कि उसके भाइ सूरतसिंह की माता ने उसे विष दिया था (टॉड, राजस्थान, जि० २, पृ० ११३८) ।

डा० जेम्स बर्जेस लिखता है—'उस(राजसिंह)की तेईस दिन पीछे ज़हर से मृत्यु हुई (क्रोनोलोजी ऑव् मॉडर्न इंडिया, पृ० २५६) ।

मरहटो (सिंधिया) के जोधपुर के खबरनवीस कृष्णाजी ने अपने स्वामी के नाम के ता० ५ जून ई० स० १७८७ (आषाढ वदि ४ वि० स० १८४४) के पत्र में लिखा है—

राजसिंह के गद्दी बैठने के अनन्तर उसके छोटे भाइयो में से सुलतान सिंह उसे मरवा देने का उद्योग करने लगा। इस कार्य की पूर्ति के लिए उसने मूलचद भडिया (वरड़िया) से मिलकर षड्यन्त्र रचा । मूलचद ने रसोड़े के अफसर के नाम इस आशय का एक पत्र लिखा कि यदि वह विष देकर राजसिंह का अंत करने मे सफल हुआ तो सुलतानसिंह गद्दी बैठने पर उसे पच्चीस हज़ार की जागीर देगा। इसका क़ौल क़रार हो जाने पर वैशाख सुदि ८ को रसोड़े के दारोगा ने राजसिंह के भोजन मे विष मिला दिया। एक पहर बाद विष का प्रभाव ज्ञात होने पर राजसिंह ने मूलचद को कैद करने की आज्ञा दी। रसोड़े का दारोगा भी भागने के प्रयत्न मे था, परन्तु वह पकड़ लिया गया। तब उसने मूलचद के हाथ का पत्र महाराजा के पास पेश कर दिया। इस घटना की जाच हो ही रही थी कि इसी बीच मे राजसिंह का देहांत हो गया। उसकी मृत्यु के बाद सुलतानसिंह प्रधान रामसिंह के पास गया, पर उसने यह कहकर उसे विदा कर दिया कि मैं तेरा मुख देखना नहीं चाहता । तब सुलतानसिंह जोधपुर के स्वामी विजयसिंह के पास गया। राजसिंह को विष देने के अपराध मे मूलचद तो कैद कर क़िले में रख दिया गया तथा रसोड़े का दारोगा तोप से उड़वा दिया गया।

पार्सनिस, इतिहास सग्रह [मराठी], जि० ६, पृ० ११३४ ।

दयालदास, कर्नल पाउलेट, कविराजा श्यामलदास और मेघसिंह आदि महाराजा राजसिंह का देहावसान क्षय रोग से होना लिखते हैं।

ऐसी स्थिति में उपर्युक्त कथनो में कौनसा कथन ठीक है, इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। महाराजा राजसिंह की विष प्रयोग से मृत्यु होना बीकानेर में लोकप्रसिद्ध बात नहीं है।

अपनी अनन्य भक्ति के कारण उसके साथ उसके विश्वासपात्र सेवक मडलावत सग्रामसिंह ने उसकी चिता मे प्रवेशकर अपने प्राणो का विसर्जन कर दिया[1]।

महाराजा प्रतापसिंह

दयालदास की ख्यात मे लिखा है कि राजसिंह के एक पुत्र प्रतापसिंह था, परन्तु वह छ वर्ष की अवस्था म शीतला निकलने से मर गया[2] (गद्दी पर नही बैठा)। इसके विपरीत अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थो से पाया जाता है कि वह राजसिंह की मृत्यु होने पर बीकानेर का स्वामी हुआ था। टॉड लिखता है—

टॉड और प्रतापसिंह

"राजसिंह के दो पुत्र प्रतापसिंह तथा जयसिंह[3] थे। उसकी मृत्यु होने पर सूरतसिंह की सरक्षकता मे प्रतापसिंह बीकानेर की गद्दी पर बैठाया गया। राज्यकार्य सभालने के साथ साथ जब सूरतसिंह का प्रभाव बीकानेर के सरदारो पर जम गया तो उसने राज्य दबा बैठने का अपना विचार उनके सामने प्रकट किया और उनमे से अधिकाश को जागीरे आदि देकर अपने पक्ष में कर लिया। कुछ सरदार उसके विपक्ष मे भी रहे, परन्तु जब उसने नौहर, अजीतपुर, साखू आदि पर आक्रमण किया उस समय वे सब के सब अपने अपने स्थानो मे शात बैठे रहे। अनन्तर उसने बीकानेर के स्वामी प्रतापसिंह का भी अत करने का निश्चय किया, परन्तु इस कार्य में उसकी बडी बहिन बाधक हुई। उसके रहते कृतकार्य होने की

---

(१) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६५। पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७३। महाराजा राजसिंह के स्मारक लेख (देखो ऊपर पृ० ३६२, टिप्पण सख्या ३) में भी एक सेवक के उसके साथ जल मरने का उल्लेख है। सग्रामसिंह के वशजों के अधिकार मे बीकानेर राज्य के अन्तर्गत सीलवे का ठिकाना है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ६५।

(३) जयसिंह का क्या परिणाम हुआ यह पता नही चलता। यदि वास्तव में इस नाम का कोई पुत्र था तो यही कहना पड़ेगा कि सूरतसिंह की प्रबलता के कारण उसने कोई बाधा उपस्थित नहीं की।

सभावना न देख उसने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह नरवर के कछवाहे के साथ कर दिया। उसके बिदा होने के बाद ही प्रतापसिंह महलों मे मरा हुआ पाया गया। कहा जाता है कि सूरतसिंह ने अपने हाथों से उसका गला घोटा था[1]।"

टॉड ने प्रतापसिंह का एक वर्ष तक गद्दी पर रहना लिखा है, परन्तु यह समय अधिक जान पडता है। उसने गजसिंह की मृत्यु वि० स० १८४४ (ई० स० १७८७) के स्थान मे वि० स० १८४३ (ई० स० १७८६) में होना लिखा है। सभव है इसीसे यह गलती हुई हो, पर टॉड का कथन निर्मूल नहीं है, क्योंकि सूरतसिंह के समय मे वह राजपूताने मे विद्यमान था। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणो से भी उसके कथन की पुष्टि होती है[2]।

---

(१) टॉड, राजस्थान, जि० २, पृ० ११३८-४०।

(२) पाउलेट लिखता है कि ख्यात ने तो प्रतापसिंह के सम्बन्ध में मौन धारण किया है, परन्तु वह अपने पिता के पीछे जीवित था और सूरतसिंह के हाथों मारा गया (पाउलेट, गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ७३)।

जोधपुर की ख्यात मे लिखा है कि सूरतसिंह के गद्दी बैठने के कुछ दिनों बाद विजयसिंह ने उससे कहलाया कि तुम राजसिंह के पुत्र (प्रतापसिंह) को गद्दी से हटाकर बीकानेर के स्वामी बने हो, अतएव कुछ रुपये भरो नहीं तो सुख से राज्य करने न पाओगे। तब सूरतसिंह ने कहलाया कि मेरे लिए टीका भेजो (अर्थात् मुझे राजा स्वीकार करो) तो मै तीन लाख रुपये दू। अनन्तर जोधपुर से टीका आने पर सूरतसिंह ने रुपये भेज दिये (जि० २, पृ० २५६)। किन्तु दयालदास की ख्यात तथा अन्य किसी पुस्तक में बीकानेर से रुपये देने का कुछ भी उल्लेख नहीं है।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि प्रतापसिंह अपने पिता के बाद गद्दी पर बैठा था।

ठाकुर बहादुरसिंह लिखित 'बीदावतों की ख्यात' से भी पाया जाता है कि राजसिंह के बाद प्रतापसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बैठा (पृ० २१९)।

इन प्रमाणों के अतिरिक्त कृष्णाजी के उपर्युक्त मराठी पत्र (देखो ऊपर पृ० ३६३ का टिप्पण) मे भी लिखा है कि राजसिंह का क्रिया कर्म हो जाने पर प्रतिष्ठित सरदारों ने सूरतसिंह को राजा बनाना चाहा, परन्तु उसके यह कहने पर कि जिस राज्य के लिए मेरे बड़े भाई की ऐसी दशा हुई वह मुझे नहीं चाहिये, उन्होंने राजसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को गद्दी पर बिठा दिया और शासक की बाल्यावस्था होने के कारण सब राज्य कार्य सूरतसिंह करने लगा।

अतएव यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि प्रतापसिंह राजसिंह के पश्चात् बीकानेर का स्वामी हुआ था और कम से कम पाच महीने उसका राज्य रहा।

कृष्णाजी का पत्र इस घटना के केवल डेढ़ मास बाद का लिखा हुआ होने से इसपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। कृष्णाजी जोधपुर से अपने स्वामी के पास समय-समय पर वहा का हाल लिखा करता था, उसी सिलसिले मे उसने यह घटना भी अपने स्वामी को लिखी थी। सभव है कि पहले तो सूरतसिंह ने कुछ दिनों तक ठीक तौर से राज्य कार्य चलाया हो, पर ऐसा जान पड़ता है कि बाद मे उसकी नीयत बदल गई, जिसमे प्रतापसिंह को मारकर वह स्वय राज्य का अधिकारी बन बैठा, जैसा कि टॉड ने भी लिखा है।

उपर्युक्त प्रमाणों के बलपर यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि प्रतापसिंह अपने पिता के बाद बीकानेर का स्वामी हुआ था, किन्तु दयालदास ने यह सारी की सारी घटना छिपा डाली है। सूरतसिंह के पुत्र का आश्रित होने के कारण उस(दयालदास)का ऐसा करना स्वाभाविक ही है। ऐसा ही राज्य के आश्रित व्यक्तियों के लिखे हुए इतिहास ग्रन्थो मे अब तक पाया जाता है। दयालदास राजसिंह की मृत्यु वि० सवत १८४४ वैशाख सुदि ८ (ई० स० १७८७ ता० २५ अप्रेल) एव सूरतसिंह की गद्दीनशीनी उसी सवत् के आश्विन मास में होना लिखता है। इन दोनो घटनाओं म लगभग पाच मास का अन्तर है। यदि दयालदास का कथन ठीक माना जाय तो यही कहना पड़ेगा कि इस अवधि मे बीकानेर का सिंहासन शासक विहीन पड़ा रहा, पर ऐसा होना सभव नहीं। इसलिए यह मानना पड़ता है कि इस बीच बीकानेर पर प्रतापसिंह का शासन रहा, जैसा कि टॉड और पाउलेट ने लिखा है। प्रतापसिंह के मृत्यु स्मारक के लेख मे उसके मरने का सवत्, मास, पक्ष, तिथि आदि नही है और न उसे महाराजा ही लिखा है। उसमें केवल इतना ही लिखा है—

प्रतापसिंघजी देवलोक प्राप्तः। तस्येय पादुका छत्रिका स्थापिता। सा चिर तिष्ठतु ॥

यह स्मारक सूरतसिंह के समय में ही लगाया गया होने से इसमें संवत्, मास, पक्ष आदि नहीं दिये हैं।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१४	कि	की
८	२७	ई० स० १८७६	ई० स० १६१३
६	१	वि० स० १६३५	वि० स० १६६६
१४	२५	के	की
२१	टि० १, प० ३	ददेरा	दरेरा
२२	१०	द्यह	ह्यह
३८	२७	गद्दी	गद्दी
४२	२५	अन्य	नगर के भीतर
४४	८	तीन सौ	सात सौ
४५	३	रतनविवास	रतननिवास
६२	२२	की	के
६७	१०	गगानहर	गगनहर
७२	२	को	के लिए
,,	,,	लिये	लिखे
,,	५	उपाधी	उपाधि
११३	४	उदयकरण	उदयकरण का पुत्र
१२५	४	वैरसल	वैरसी
१२७	५	,,	,,
१३७	१४	उदयकरण	उदयकरण के पुत्र
१६६	टि० १, पं० ५	लिया और	कर
१६७	टि० १, पं० २	कामरा	हुमायू
१७६	टि० १, प० १५	पृ०	पत्र
१६०	१३	३८	३७

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०१	१०	आश्रय	समय
२११	१०	वशज	पुत्र
२१२	१	का	को
,,	१७	डाडसर	डाडूसर
२३२	२	मुगलों	मुगलो
२५४	५	स्वामी	शासक
२६६	२२	भेजा	भेजा गया
२७५	६	दाराशिकोह	शुजा
२९५	१२	अधिकाश	कतिपय
३००	टि० ३, प० ३	महाराणा	महाराजा
३०४	७	सरदार आदि	व्यक्ति
३११	टि० २, प० २	पृ०	पत्र
३१६	टि० १, प० २	१५२	१५१
३२२	२०	बीकानेर	वही
३३५	टि० १, प० ३	६१	६०
३४३	६	करते थे	करता था
३४८	१	रावल	राव
,,	११	नियुक्ति की	नियुक्ति हुई
३५८	१	कद	क़ैद
३६५	टि० २, प० ६	स्वामी	स्वामी